भारतेंदु के निबंध

डा० केसरीनारायण शुक्ल

भारतेंदु के निबंध

संग्रहकर्ता और संपादक

केसरीनारायण शुक्ल

एम्० ए०, डी० लिट्०

रीडर लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रकाशक

सरस्वती-मंदिर,

जतनबर, बनारस

वक्तव्य

एम० ए० (फाइनल) के विद्यार्थियों को 'विशेष कवि' के रूप में भारतेंदु हरिश्चंद्र का अध्ययन कराते हुए मुझे हरिचंद्र संबंधी सामग्री के अभाव का अनुभव हुआ, यों तो उनके काव्य और नाटकों का संग्रह प्रकाशित हो चुका है फिर भी उनके साहित्यिक कर्तृत्व और व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण अंग छिपा ही रहा। निबंधकार के रूप में उन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य की जो सेवा की, जिस लगन के साथ उन्होंने जन जागृति और चेतना को (प्रबुद्ध कर देश को उन्नति के पथ पर) अग्रसर किया, युगधर्म का जो चित्र उपस्थित किया, और साथ ही अपने अंतस् की जो झलक दिखाई उससे पाठक और विद्यार्थी अपरिचित ही रहे। इस अनभिज्ञता का मुख्य कारण यह था कि ये निबंध आज से सौ वर्ष पहले पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे, और वे पत्र-पत्रिकाएँ अधिकतर नष्ट हो चुकी हैं और जो बची हैं वे दुष्प्राप्य हैं। फिर भी इस सामग्री का आकलन आवश्यक है क्योंकि इसके बिना न तो भारतेंदु युग का मूल्यांकन ही ठीक हो सकता है और न परवर्ती साहित्य के विकास की गतिविधि को ही ठीक ठीक समझा जा सकता है। प्रस्तुत संग्रह के मूल में यही भावना है।

प्रस्तुत संग्रह में भारतेंदु के सभी निबंध नहीं मिलेंगे। विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर इनका चुनाव किया गया है, और इसी लिए इसमें कुछ सामग्री ऐसी भी मिलेगी जिसे हम निबंध नहीं कह सकते। फिर भी उनसे युग की शैली, युगीन साहित्य के कुछ विशेष रूप एवं प्रकार का परिचय और युगनिर्माता के व्यक्तित्व की रोचक झलक मिलेगी। इस संग्रह का उद्देश्य केवल इतना ही है कि विद्यार्थियों को भारतेंदु का सर्वांगीण परिचय प्राप्त हो, उनमें उस युग के प्रति कुछ रुचि जगे और वे आगे चलकर खोज के काम में प्रवृत्त हों।

इस संग्रह की कथा मेरी कृतज्ञताज्ञापन की कथा भी है जिसके कहने में मुझे अत्यंत हर्ष होता है। यदि मुझे कुछ मित्रों और साहित्यप्रेमियों की सहायता न प्राप्त होती तो यह संग्रह प्रस्तुत न हो सकता।

श्री ब्रजरत्नदास जी जिस उत्साह और उदारता से सदा सहायता करते रहे हैं उसका सम्यक् कथन नहीं हो सकता। भारतेंदु-युग की प्राचीन पत्र-पत्रिकाओं को मेरे अध्ययन के लिए प्रस्तुत कर उन्होंने मुझे अनुगृहीत किया है।

साहित्यप्रेमी भारतेंदु हरिश्चंद्र के दौहित्र का ऐसा होना स्वाभाविक ही है। अल्प समय में विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखकर उन्होंने बड़ी कृपा दिखलाई।

इस समय मैं पटना यूनवर्सिटी के भूतपूर्व वाइस चांसलर श्रीशार्ङ्गधर सिंह जी को कदापि नहीं भूल सकता। जब मैं भारतेंदु के 'भक्तसर्वस्व' को न पाकर निराश हो चुका था उस समय मुझे आपके ही सौजन्य से आप खड्ग विलास प्रेस की अकेली प्रति देखने को मिल सकी।

पटना के प्रसिद्ध साहित्यप्रेमी श्रीछविनाथ पांडेय ने मुझे हरिश्चंद्र संबंधी बहुमूल्य सामग्री दिलाकर कृतार्थ किया।

गया कालेज के हिंदी प्रोफेसर श्री बटेकृष्ण एम० ए० ने अपने संग्रह से भारतेंदु की रचनाएँ देकर मेरे इस कार्य में हाथ बँटाया।

अपने विभाग के भारतेंदुवर्ग के विद्यार्थियों का उल्लेख आवश्यक है। सचमुच यह उन्हीं के लिए है और उन्हीं की प्रेरणा का परिणाम है।

इस पुस्तक का प्रकाशन अपने परम मित्र श्रीविश्वनाथप्रसाद मिश्र के सतत परिश्रम से ही संभव हो सका है। इस संबंध में फिर भी वे मुझे कुछ अधिक नहीं कहने देते, और मुझे मौन धारण करना पड़ता है।

लखनऊ
१०-१-१९५२

केसरीनारायण शुक्ल

अनुक्रम

भूमिका

भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र का जन्म भाद्रपद शुक्ल ५ (ऋषिपंचमी) सं० १९०७ (९ सितंबर सन् १८५० ई०) को चंद्रवार के दिन काशी में हुआ था। जब यह पाँच वर्ष के थे तब इनकी माता का और नौ वर्ष के थे तब इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। इसी बीच इतनी अल्पवस्था ही में इन्होंने अपनी चंचल प्रतिभा से अपने पिता जैसे श्रेष्ठ कवि को विस्मित कर उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया था। इनकी शिक्षा का आरंभ गृह पर ही हुआ और हिंदी, उर्दू तथा अंग्रेजी का साधारण ज्ञान हो जाने पर यह क्वींस कालेज में भर्ती हुए। यह शिक्षा-क्रम विशेष नहीं चला और पिता की स्नेह-छाया के अभाव में चार पाँच वर्ष के अनंतर ही इन्होंने स्कूल जाना त्याग दिया पर अपनी तीव्र मेधाशक्ति के कारण पढ़ने में मन न लगाने पर भी यह सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गए। छात्रावस्था ही में यह कविता बनाने लगे थे और अन्य कई भारतीय भाषाओं का ज्ञान भी प्राप्त कर लिया था। इस प्रकार इतनी ही शिक्षा, स्वाध्याय तथा ईश्वरदत्त प्रतिभा और निजी कुशाग्रबुद्धि एवं अद्भुत स्मरणशक्ति को लेकर यह पंद्रह-सोलह वर्ष की अवस्था में मातृभूमि तथा मातृभाषा की सेवा में संलग्न हो गए।

भारतेंदु जी सं० १९४१ के पौष मास में दिवंगत हो गए अतः इनका रचनाकाल प्रायः सं० १९२३ से सं० १९४१ तक अर्थात् अठारह वर्ष का रहा। इस अल्पकाल में यदि उनके निजी दरबारों, राजाओं की दरबारदारी, मित्रों के सत्संग, यात्राओं आदि के समय निकाल दिए जायँ तो वह और भी अल्प हो जाता है पर इतने ही समय में उन्होंने कितनी संस्थाएँ स्थापित कर उनके कार्य चलाए, कई पत्रिकाएँ चलाईं तथा लगभग दो सौ के गद्य-पद्य ग्रंथ एवं स्फुट रचनाएँ प्रस्तुत कीं। अस्तु।

सं० १९२३ में जब भारतेंदु जी ने देश की परिस्थिति पर विचार किया तब उन्होंने देखा कि भारतवर्ष अपने प्राचीन वैभव, स्वातंत्र्य, शक्ति तथा प्रभुता से कितना गिर गया है और उसकी उन्नति की आशा भी दुराशा-सी हो रही है। साथ ही हिंदुओं की सामाजिक तथा धार्मिक अंध रूढ़ियों तथा विश्वासों को भी उन्होंने देखा और शिक्षा का अभाव भी उन्हें खला। अतः उन्होंने अपनी रचनाओं में इन सभी विषयों पर लिखा और स्वदेशवासियों को एक अखिल भारतीय मंच पर एकत्र होकर भारत के उत्कर्ष के उपाय सोचने के लिए आमंत्रित किया। अनेक सभा-समाज संगठित कर उनमें सामाजिक तथा

धार्मिक सुधार करने का प्रयत्न किया और डंके की चोट सभी त्रुटियों को दिखला कर उन्हें दूर करने की घोषणा की।

भारतेंदु जी जिस प्रकार सभी सांसारिक माया-मोह तथा संघर्षों से दूर रहकर स्वदेश सेवा में लगे रहते थे उसी प्रकार वह मातृभाषा की सेवा में भी सदा निरत रहे क्योंकि उन्होंने स्वयं ही कहा है—

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।

आरंभ ही में उन्होंने देखा कि हमारे चिरपोषित साहित्य से हमारे राजनीतिक जीवन का संबंध विच्छिन्न हो रहा है और हमारे देश के शिष्टगण विदेशी राजभाषा के सामयिक प्रवाह में बहने को तत्पर हैं। भारतेंदु जी ने तुरंत अपनी सशक्त लेखनी से साहित्य धारा को उस ओर मोड़ा जिधर इनके देश-वासियों की विचार-धारा जा रही थी और पुनः उन दोनों को मिला दिया। यदि आज तक हमारा साहित्य प्राचीन लीक ही पर चलता रहता तो उसकी इस समय क्या दशा हुई होती और सभ्य संसार हमारे साहित्य तथा हमें न जाने किस दृष्टि से देखता परंतु भारतेंदु जी ने हमें उस अत्यंत भयावह कुपरिणाम से केवल बचा ही नहीं लिया परंतु अपने प्रयत्नों से हिंदी भाषा तथा साहित्य, गद्य तथा पद्य, सभी का ऐसा परिष्करण तथा परिमार्जन किया और ऐसी प्रगतिशीलता दी कि वर्तमान हिंदी साहित्य अपने समय के अनुकूल कुछ बन सका। 'कुछ' शब्द जान बूझकर रखा गया है। भारतेंदु जी ने उपदेश दिया था—

विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देशन सों लै करहु, भाषा माहिं प्रचार॥

क्या कहा जा सकता है कि ऐसा साहित्य हिंदी में भारतेंदु जी की मृत्यु के प्रायः सत्तर वर्ष बीत जाने पर भी प्रस्तुत हो चुका है? परंतु समय बदल गया है, भारत स्वतंत्र हो गया है और पूरी आशा है कि थोड़े ही काल में हमारा हिंदी साहित्य इतना भरा पूरा हो जायगा कि हमें किसी भी विषय की रचनाओं के लिए अन्य भाषाओं का मुखापेक्षी न रहना पड़ेगा।

भारतेंदु जी ने सन् १८७३, सं० १९३० में 'हरिश्चंद्र मैगेजीन' नामक प्रथम हिंदी मासिक पत्रिका निकाली और यही आठ संख्याओं के अनंतर 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' हो गई। इसी में हिंदी गद्य का वह परिष्कृत रूप पहिले-पहिल दिखलाई पड़ा जिसे देश की हिंदीभाषी जनता ने उत्कंठापूर्वक अपनाया। भारतेंदु जी ने स्वरचित कालचक्र में लिखा भी है कि 'हिंदी नई चाल में ढली, सन् १८७३ ई०'। इसी पत्रिका में भारतेंदु जी के अनेक निबंध तथा गद्य ग्रंथों के अंश प्रकाशित हुए जिस से हिंदी की नवीन गद्य-शैली का इसे मूल स्रोत मानने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए।

जिस प्रकार जीर्णोद्धार से नव निर्माण का महत्त्व अधिक है उसी प्रकार परंपरा से चले आते हुए पद्य-साहित्य में नवीन प्रगतिशीलता देने से उसके गद्य-साहित्य का नव निर्माण विशेष महत्त्वपूर्ण है। भारतेंदु जी की रचनाओं में धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक अनेक विषय लिए गए हैं, पर इसी कारण वे उन्हीं में सीमित हैं किन्तु उनके निबंध या उनके ग्रंथों में दिए हुए उपक्रम ऐसे बंधन से रहित हैं। इनमें उनकी रुचि, विचार तथा व्यक्तित्व के प्रदर्शन का पूरा अवकाश रहा है और काव्य की अतिरंजना की कमी के साथ यथार्थता का पुट अधिक है। इनमें भारतेंदु जी के भावप्रकाशन, विचारों के अभिव्यंजन तथा मनमौजीपन का पूरा प्रदर्शन है। ये निबंध तत्कालीन युग की सर्वतोमुखी उन्नति तथा जन-जागति के संवाहक थे। इन्हीं के द्वारा भारतेंदु जी ने हिंदी गद्य को पुष्ट किया था अतः ये भाषाशैली की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं।

भारतेंदु जी ने देश के सभी अभावों तथा त्रुटियों को दृष्टि में रखकर बहुत से निबंध लिखे हैं और वे इस कारण अनेक प्रकार के हो गए हैं। उनकी बहुमुखी प्रतिभा ही से इनके निबंधों में विविधता तथा अनेकरूपता आ गई है और इनमें यदि कहीं धर्म, समाज, राजनीति आदि की गंभीर आलोचना है तो कहीं व्यंगपूर्ण आक्षेप है। शुद्ध अनुरंजन के लेखों में भी ज्ञानवर्धन तथा शिक्षा व्यंग्य के साथ मिला हुआ है और ऐसा इनकी सजीवता तथा सहृदता के कारण हुआ है।

भारतेंदु जी के निबंधों का वर्गीकरण करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि इन्होंने इन्हें पत्र-पत्रिकाओं के लेख के रूप में या ग्रंथों की भूमिका के रूप में अधिकतर लिखा है तथा ये उन्हीं में छापे भी हैं। सामयिक प्रगति, परिस्थिति तथा उद्देश्य का इनके निबंधों के विषयों के चुनाव तथा निरूपण में विशेष प्रभाव पड़ा था अतः वस्तु विषय की दृष्टि से ये गवेषणात्मक, चारित्रिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक तथा धार्मिक आदि कई कोटियों में आते हैं। कथन के ढंग तथा निरूपण एवं भाषा और शैली की दृष्टि से भी इनके भेद किए जा सकते हैं पर वास्तव में वे भेद जिस दृष्टि से किए जाएँगे वे उसी के भेद के अंतर्गत आ जाएँगे।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है भारतेंदु जी ने हिंदी साहित्य के अभावों पर विशेष दृष्टि रखी थी और उसमें इतिहास, पुरातत्त्व तथा जीवनचरित्र का पूर्ण अभाव देखकर उन्होंने इन पर लेख तथा पुस्तक लिखना आरंभ कर दिया। इनमें आधुनिक काल के लिखे गए इतिहास-ग्रंथों के समान विवेचन, शोध, अन्वेषण या जाँच-पड़ताल आदि को खोजना निरर्थक है। इनका महत्त्व अभाव की ओर मार्ग-प्रदर्शन तथा नई परंपरा के प्रवर्तन में है और सुप्त देशवासियों को अतीत के गौरव तथा अर्वाचीन एवं वर्तमान की दुर्दशा दिखलाकर उनमें

वह रुचि तथा उत्सुकता जागरित करने में है जिससे वे अपनी दशा सुधारने का उपाय सोचें। तब भी इन रचनाओं में भारतेंदु जी ने बहुत सा मनोरंजक साधन एकत्र कर दिया है और इनमें शिक्षा के साथ उनकी ऐतिहासिक भावना भी मिली है, जो प्रायः अब तक उसी रूप में है।

जिस समय भारतेंदु जी ने इतिहास-लेखन आरंभ किया था वह समय प्रायः वही था जब मुगल-साम्राज्य के ध्वंस पर स्थापित अनेक हिंदू-मुसलमान राज्यों का आपसी वैर के कारण अंत करते हुए अंग्रेजी राज्य स्थापित हो चुका था। बृटिश साम्राज्य का पूर्ण प्रभुत्व सं० १९१४ से सारे भारत पर मानना चाहिए। भारतेंदु जी ने सं० १९२८ से इतिहास पर लिखना आरंभ किया था अत: वे बृटिश राजनीति का उतने ही समय का अध्ययन कर पाए थे और ज्यों-ज्यों इन की तद्विषयक राय बदलती गई वैसा ही उन्होंने अपने लेखों तथा रचनाओं में क्रमश: स्पष्टीकरण किया है। यह उनके लेखों के परायण से ज्ञात होता है। उनकी जीवनी से भी यह परिलक्षित होता है कि बृटिश सरकार की इन पर आरंभ में जैसी कृपा थी वैसी बाद में नहीं रही और कृपा कोप में बदल गई। इसका कारण भारतेंदु जी की सत्यवादिता ही थी। कुछ लोगों का कटाक्ष भी कभी-कभी होता है कि यह अंग्रेजों की परतंत्रता के पोषक थे पर यदि यह सत्य भी है तो इस पोषण का भी उस समय विशिष्ट कारण था। जैसे आजकल सुशिक्षित शिष्ट समाज कांग्रेस की त्रुटियों को समझते हुए भी उसका पक्षपात इसी कारण करता है कि उसके सिवा अन्य कोई ऐसा दल नहीं है जिसे भारत का कर्णधार बनाया जा सके उसी प्रकार भारतेंदु जी भी अंग्रेजी राज्य के प्रति स्पष्ट रूप से मार्मिक तथा कटु आक्षेप करते हुए भी उनका यहाँ रहना समयानुकूल समझते थे।

भारतेंदु जी ने जीवनचरित्रों का संग्रह चरितावली तथा पंच पवित्रात्मा में है, जो सं० १९२८ से १९४१ के बीच लिखे गए हैं। इनमें भी चरित-नायकों की असाधारणता, घटनाओं के विवरण आदि ही अनेक हैं और उनके हार्दिक वृत्तियों तथा सामयिक परिस्थितियों के प्रभाव का या उनके चरित्र-बल के दिग्दर्शन का प्रयास कम है। इसका कारण भी स्पष्ट है कि उस काल में व्यक्तित्व ही प्रधान माना जाता था और तत्कालीन प्रवृत्तियों तथा परिस्थितियों का जो प्रभाव व्यक्तित्व तथा इतिहास के निर्माण में रहता था उस ओर इतिहास या चरित्र के लेखकों का ध्यान नहीं जाता था। तब भी इन लेखों में साहित्यिकता पूर्ण रूप से मिलती है और मिलती है भावों की विदग्धता तथा शैलियों की विविधता।

भारतेंदु जी ने धर्म-संबंधी रचनाएँ काफी की हैं और अपने धर्म के साथ भारत में प्रचलित अन्य धर्मों पर भी लिखा है। धार्मिक उदारता भी इनमें

थी और इसीसे अनेक धर्मों का ज्ञान रखते हुए तथा अपने धर्म में अडिग श्रद्धा तथा विश्वास के होते हुए भी इन्होंने अन्य धर्मों का उदारता के साथ संक्षिप्त विवरण दिया है। निज धर्म पर तो इन्होंने विस्तृत रूप से कई रचनाएँ लिखी हैं। समाज-सुधार के भी यह पूरे पक्षपाती थे और धार्मिक ढोंग तथा अंधविश्वास के सदा विरोधी रहे। इनमें वह साहस तथा निर्भीकता थी जिससे इन्होंने अपने विचारों को समाज के विरोधी होते भी स्पष्ट कर डाला है।

भारतेंदु जी के कुछ निबंध उपादेयता तथा शिक्षा की दृष्टि से भी लिखे गए हैं। संगीतसार, हिंदी भाषा आदि शिक्षात्मक हैं और कार्तिक कर्मविधि, उत्सवावली आदि उपादेय हैं। बलिया के व्याख्यान में भारत की उन्नति कैसे हो सकती है, इस पर अपने विचार प्रकट किए हैं। साहित्यिकता की दृष्टि से इनके निबंधों में यात्रा-संबंधी तथा हास्य-प्रधान लेख हैं। इन्हीं में भारतेंदु जी की परिहास-प्रियता, सजीवता तथा वर्णनशैली की क्षमता का विशेष रूप से दिग्दर्शन मिलता है। इन्होंने अपना आत्मचरित भी लिखना आरम्भ किया था पर उसे वह पूरा नहीं कर सके। जो अंश प्राप्त है उसमें उनकी विशिष्टता मार्मिक रूप में मिलती है।

परिहासपूर्ण लेखों में शुद्ध हास्य के तो दो ही एक लेख हैं पर अधिकतर में व्यंग्य, आक्षेप तथा आलोचना सभी बड़े मार्मिक ढंग से सम्मिश्रित किए गए हैं, जो कहीं-कहीं अनुकूल अवसरों पर तीव्र तथा कटु भी हो गए हैं। इनकी मीठी चुटकियों तथा व्यंग्य के आधार व्यक्ति, समाज, जनता, सरकारी अफसर आदि सभी रहे हैं पर इनमें जिसके प्रति इनका हार्दिक क्षोभ रहा है उन्हीं के संबंध में कटुता है और अन्य के प्रति केवल परिहासपूर्ण व्यंग्य है। ज्ञातिविवेकिनी सभा, लेवी प्राण-लेवी, कंकड़-स्तोत्र, स्वर्ग में विचारसभा आदि इसी प्रकार के लेख हैं।

भारतेंदु जी के निरूपण का ढंग तथा उनकी भाषाशैली उनके निबंधों के विषयानुकूल ही रही है क्योंकि ये सभी अन्योन्याश्रित हैं। तथ्यातथ्यनिरूपक, शिक्षात्मक तथा उपादेय निबंधों में निबंधकार का ध्यान विषय के स्पष्टीकरण, प्रतिपादन तथा विवेचन की ओर अधिक रहता है और वाणी-विलास की ओर कम। इनकी भाषा अलंकृत या अतिरंजित न होते भी प्रांजल तथा प्रसादपूर्ण है और विशेष संस्कृतगर्भित नहीं है। ऐसे निबंधों में कहीं कहीं विशेष संस्कृतगर्भित शब्दविन्यास मिलते हैं पर वे इनके मनमौजीपन के उदाहरण मात्र समझने चाहिएँ क्योंकि इन्होंने ऐसा बहुत कम किया है। इतने साहित्यिक, वर्णनात्मक तथा परिहासपूर्ण लेखों में इनकी विविध शैलियाँ देखने को मिलती हैं। इनमें कहीं चलती भाषा की छटा है, कहीं मुहाविरों का सुंदर प्रयोग है, कहीं

चमत्कारपूर्ण शब्द-क्रीड़ा है और कहीं उर्दू-अंग्रेजी शब्दों का सार्थक चामत्कारिक प्रयोग है। अन्य देशों की कथा-परंपरा का भी कहीं-कहीं उल्लेख कर दिया है। इन सबका कारण भारतेंदु जी का कवि-हृदय तथा उसकी सजीवता या फारसी भाषा में उनकी जिंदादिली ही है और है उनका कई भाषाओं एवं उसके साहित्यों का ज्ञान। इसीसे एक ही लेख में अनेक प्रकार के पदविन्यास मिलते हैं और एक ही प्रकार की शैली का आद्योपांत पूरे निबंध में निर्वाह नहीं कर पाए हैं।

भारतेंदु जी की सभी गद्य-रचनाओं में समष्टि रूप से देखने पर प्रधानतः दो भाषाशैलियाँ मिलती हैं, एक विशेष संस्कृत गर्भित है तथा दूसरी सरल शुद्ध चलती हिंदी है। एक में प्रांजलता अधिक है तो दूसरे में प्रवाह अधिक है। पहले से दूसरे में माधुर्य, प्रकृत सौंदर्य तथा गति विशेष है और इसका कारण भी है। देशप्रेम के साथ साथ हिंदी को भारत में उसका उपयुक्त स्थान दिलाने का उस समय आंदोलन चल रहा था जिसके अग्रगण्य भारतेंदु जी ही थे और इस लिए हिंदी को उर्दू से स्पष्टतः भिन्न रूप देने के लिए उन्होंने विशेष संस्कृत-समन्वित शुद्ध हिंदी को आदर्श बनाया और अपने बहुत से निबंधों तथा ग्रंथों में इसी हिंदी का रखा। यह अवश्य है कि उन्होंने इसमें जटिलता या दुरूहता नहीं आने दी। कवि-हृदय रखने तथा गद्य के कलाकार होने से भाषा में प्रवाह, चलतापन, मुहाविरों के प्रयोग आदि रखकर उन्होंने अपने निबंधों में एक प्रकार की ऐसी संजीवनी शक्ति दे दी है कि वे सदा पठनीय रहेंगे।

हिंदी गद्य-परपरा का आरंभ कर उसकी भाषा को 'नए चाल में ढालने वाले', संस्कार करनेवाले तथा अनेक विषयों की ओर उसे प्रगति देनेवाले भारतेंदु जी ही थे और इन्हीं के समकालीन इनके मित्रों ने इस कार्य में इनका सहयोग कर इस भाषा को और भी पुष्ट किया। ऐसे महत्त्वपूर्ण निबंधों की ओर हिंदी साहित्यिकों का ध्यान बहुत कम है और उनमें जो अपने को दिग्गज तथा धुरंधर विद्वान् मानते हैं वे अभी तक रीतिकालीन कवियों ही के अनेक प्रकार के सु-संपादित संस्करणों के प्रस्तुत करने में साहित्य की इतिश्री मानते हैं। भारतेंदु जी के निबंध जो छप चुके हैं वे दुष्प्राप्य हो रहे हैं और जो पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे वे उन्हीं में बंद पड़े हैं। ये पत्र पत्रिकाएँ भी अब लुप्त प्राय हो रही हैं और कहीं एकत्र इनका संग्रह भी नहीं मिलता। ऐसी अवस्था में मित्रवर श्रीकेसरीनारायण शुक्ल का भारतेंदु जी के कुछ निबंधों को संगृहीत तथा संकलित कर प्रकाशित कराने का यह प्रयास अत्यंत स्तुत्य है। शुक्ल जी ने यह संग्रह विशेष परिश्रम और खोज से उच्च कक्षा के छात्रों के लिए प्रस्तुत किया है और यह भारतेंदु जी के अध्ययन में बहुत उपयोगी होगा।

—व्रजरत्नदास

प्राक्कथन

भारतेंदु के निबंध

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपनी पुस्तक 'काल-चक्र' में संसारप्रसिद्ध घटनाओं का उल्लेख किया है और उनका समय दिया है जैसे—'हिंदी का प्रथम नाटक (नहुष नाटक)—१८५९'; 'हिंदी का प्रथम समाचारपत्र (सुधाकर)—१८५०'; 'काशी में दो महीने का भूकंप—१८३७'। इन्हीं लौकिक तथा अलौकिक, साहित्यिक और साहित्येतर घटनाओं के उल्लेखों के बीच उन्होंने यह भी लिखा कि 'हिंदी नए चाल में ढली—१८७३'। इससे स्पष्ट है कि भारतेंदु हिंदी के नए रूप को इतने असाधारण महत्त्व का समझते थे कि उसे संसारप्रसिद्ध घटनाओं के समकक्ष रखने में उनको कोई संकोच न था।

'नए चाल में ढली हिंदी' के संबंध में भारतेंदु का जीवन-चरित लिखनेवाले एक विद्वान् का कहना है कि उन्होंने इसके साथ 'हरिश्चंद्री (हिंदी)' शब्द भी लिखा था, पर छापनेवालों की असावधानी से वह छूट गया और न छप सका। यदि यह बात सच है तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि वह अपने को हिंदी की नई शैली का प्रवर्त्तक मानते थे और उनका उपर्युक्त कथन दर्पोक्ति है। किंतु जो उस युग के इतिहास से परिचित हैं उनको इसमें गर्व की गंध नहीं मिलती, प्रत्युत उन्हें भारतेंदु का यह कथन अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है। स्वर्गीय आचार्य रामचंद्र शुक्ल का निम्नलिखित कथन इस बात को और भी स्पष्ट करता है—

"संवत् १९३० (अर्थात् सन् १८७३) में उन्होंने 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन' नाम की मासिक पत्रिका निकाली जिसका नाम ८ संख्याओं के उपरांत 'हरिश्चंद्र-चंद्रिका' हो गया। हिंदी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप पहले-पहल इसी 'चंद्रिका' में प्रकट हुआ। जिस प्यारी हिंदी को देश ने अपनी विभूति समझा, जिसको जनता ने उत्कंठापूर्वक दौड़कर अपनाया, उसका दर्शन इसी पत्रिका में हुआ। भारतेंदु ने नई सुधरी हुई हिंदी का उदय इसी समय से माना है। उन्होंने 'कालचक्र' नाम की अपनी पुस्तक में नोट किया है कि 'हिंदी नई चाल में ढली, सन् १८७३ ई०।' इस हरिश्चंद्री हिंदी के आविर्भाव के साथ ही नए नए लेखक भी तैयार होने लगे।"*

यदि इसके साथ इतना और जोड़ दिया जाता कि नई सुधरी हिंदी

* हिंदी साहित्य का इतिहास, आधुनिक गद्य, प्रथम उत्थान, भारतेंदु प्रकरण।

का उदय और विकास भारतेंदु के निबंधों से हुआ, तो हिंदी की नवीन गद्य-शैली के मूल स्रोत का भी संकेत मिल जाता।

भारतेंदु के निबंधों का महत्त्व उनके काव्य या नाटकों से कम नहीं, प्रत्युत अधिक ही है। हरिश्चंद्र की रुचि, उनके विचार और उनके व्यक्तित्व के अध्ययन में ये निबंध विशेष रूप से सहायक होते हैं, क्योंकि इनमें काव्य की अतिरंजना कम है और यथार्थता का पुट अधिक है और लेखक को बंधन-विहीन निबंधों में भाव-प्रकाशन, विचाराभिव्यक्ति और मन की तरंगों में बहने का पूरा पूरा अवकाश मिला है। ये निबंध उस युग की सर्वतोमुखी उन्नति और जन-जागर्ति के संवाहक थे। अतः इनका सांस्कृतिक महत्त्व भी बहुत अधिक है। हिंदी का गद्य भी इन्हीं निबंधों के द्वारा परिमार्जित और पुष्ट हुआ और उसमें भाव-वाहन की अद्भुत क्षमता आई। इस प्रकार इन निबंधों का भाषाशैली के विकास की दृष्टि से भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है।

हरिश्चंद्र ने बहुत से निबंध लिखे हैं और बहुत प्रकार के लिखे हैं। इन निबंधों की विविधता और अनेकरूपता उनकी बहुमुखी प्रतिभा के अनुरूप ही है। इसी प्रकार उनके लिखने का प्रयोजन भी अनेक-रूपात्मक है। कुछ उपादेयता को दृष्टि में रखकर लिखे गए हैं, कुछ ज्ञानवर्धन और शिक्षा के लिये और कुछ शुद्ध अनुरंजन के लिये। इनके अतिरिक्त कुछ में धर्म, समाज और राजनीति की आलोचना तथा उनपर व्यंग इष्ट है।

इन निबंधों का वर्गीकरण कई दृष्टियों से किया जा सकता है। वस्तु-विषय की दृष्टि से ऐतिहासिक, गवेषणात्मक, चारित्रिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, यात्रा संबंधी, प्रकृति संबंधी, व्यंग तथा हास्यप्रधान एवं आत्मकथा वा आत्मचरित संबंधी निबंधों की कोटियाँ स्थापित की जा सकती हैं। कथन के ढंग तथा निरूपण की दृष्टि से इन्हीं निबंधों को हम तथ्यातथ्यनिरूपक, सूचनात्मक या शिक्षात्मक, कल्पनात्मक और वर्णनात्मक कह सकते हैं। भाषा और शैली की दृष्टि से ये निबंध भारतेंदु की प्रांजल शैली, आलंकारिक शैली, प्रदर्शन शैली, प्रवाह शैली, और वार्तालाप शैली के द्योतक या निदर्शक कहे जा सकते हैं। अधिकांश निबंध पत्र-पत्रिकाओं के लिये लिखे गए थे और उन्हीं में छपे थे। समय की गति तथा सामयिक परिस्थिति और उद्देश्य का इन निबंधों के वस्तु चयन और शैली-निरूपण में बहुत बड़ा हाथ है। इन्हीं दृष्टियों से भारतेंदु के निबंधों की अत्यंत संक्षिप्त आलोचना प्रस्तुत की जा रही है।

भारतेंदु के ऐतिहासिक निबंध इतिहास-समुच्चय के नाम से खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित हुए थे। इनमें 'काश्मीर कुसुम', 'उदयपुरोदय', 'बादशाह दर्पण', 'महाराष्ट्र का इतिहास', 'बूँदी का राजवंश', 'कालचक्र' आदि लेख प्रमुख हैं।

'पुरावृत्त-संग्रह' में भी प्रशस्ति, पुराने शिलालेख आदि की ऐतिहासिक सामग्री का विवेचन किया गया है। इसी में 'अकबर और औरंगजेब' नामक लेख भी है जो बड़ा मनोरंजक है। भारतेंदु की इतिहास-विषयक रुचि के निदर्शन में इन पुस्तकों का नाम प्रायः लिया जाता है।

वास्तव में ये इतिहास-ग्रंथ न होकर इतिहास के ढाँचे हैं जिनमें उसकी स्थूल रूपरेखा मात्र दी गई है। अधिकांश में केवल वंशपरंपरा, राज्यारोहण तथा देहावसान का समयचक्र दिया है। कुछ में राजाओं का वृत्तांत भी है, जिसका आधार परंपरा और जनश्रुति है और जिसका उल्लेख बिना किसी शोध या छानबीन के कर दिया गया है। लेखक में असाधारण तथा आश्चर्यजनक वृत्तांतों के उल्लेख की रुचि विशेष रूप से लक्षित होती है।

ये ऐतिहासिक निबंध न तो अत्यंत विस्तृत हैं और न ये इतिहास-लेखन के उत्कृष्टतम उदाहरण ही कहे जा सकते हैं। फिर भी इनका महत्त्व है, और यह महत्त्व उनकी पूर्णता में न होकर नवीन प्रयास और नई परंपरा के प्रवर्त्तन में है। ये निबंध देश के अतीत के प्रति जनरुचि और उत्सुकता जगाने के लिये लिखे गए थे जिससे देशवासी अपनी प्राचीन गौरव-गाथा का स्मरण कर अपनी वर्तमान दयनीय दशा पर आँसू बहाएँ और अपनी उन्नति का उपाय सोचें। शिक्षात्मक महत्त्व के साथ इनका महत्त्व इस बात में भी है कि इनसे भारतेंदु की ऐतिहासिक भावना का पता लगता है, जो कि उन्नीसवीं शताब्दी की प्रचलित और मान्य ऐतिहासिक भावना के मेल में है।

उन्नीसवीं शताब्दी की ऐतिहासिक भावना आज की भाँति वर्गप्रधान न होकर व्यक्तिप्रधान थी। किसी राजा के जन्म, राजतिलक, उसके युद्ध, जय-पराजय तथा उसके असाधारण कृत्यों और उससे संबंधित घटनाओं के कालक्रमानुसार वर्णन में ही इतिहास की इतिश्री समझी जाती थी। इसी से उस युग के इतिहास-लेखकों की तरह भारतेंदु ने भी राजाओं की वंशावली दी है, उनका राज्यकाल बताया है और कतिपय प्रमुख घटनाओं तक अपने को सीमित रखा है। इन राजनीतिक घटनाओं का सामाजिक अवस्था और युग की अन्य प्रवृत्तियों से क्या संबंध था, इसकी ओर न उस समय के इतिहासकारों का ध्यान था और न भारतेंदु का ही। दूसरे शब्दों में, ऐतिहासिक भावना की जो दुर्बलता या कमी हमें दिखाई पड़ती है वह भारतेंदु की व्यक्तिगत दुर्बलता नहीं है, प्रत्युत उस शताब्दी की सीमित परिधि के परिणामस्वरूप है जिसका अतिक्रमण लेखक न कर सका।

भारतेंदु ने इतिहास को हिंदू की दृष्टि से भी देखा और आँका है, मुसलमानी राज्य के प्रति मार्मिक और कटु व्यंग करने में क़सर नहीं रखी। निम्नलिखित कथन इसका संकेत दे रहा है—

"बागबाँ आया गुलिस्ताँ में कि सैयाद आया।
जो कोई आया मेरी जान को जल्लाद आया॥

किसी ने सच कहा है कि मुसलमानी राज्य हैजे का रोग है और अँग्रेजी क्षयी का···।"

इन उद्‌गारों में भारतेंदु के हृदय की सत्यता, और उनकी मानसिक परिधि की सीमा तथा उनकी शक्ति और दुर्बलता झलक रही है। अप्रिय होने पर भी इतिहास-लेखक की तरह पाठकों को इसे स्वीकार करना चाहिए। भारतेंदु के विचार और व्यक्तित्व की जो झाँकी इनमें मिल रही है वह सुंदर होने के साथ बड़ी उद्बोधक है। इन इतिवृत्तात्मक लेखों (दो एक को छोड़कर) में कोई बड़ी ऊँची साहित्यिक प्रतिभा का आलोक नहीं है, फिर भी अतीत और वर्तमान की आलोचना के द्वारा उन्होंने जनता को जगाने का जो प्रयास किया वह स्तुत्य है।

इन ऐतिहासिक निबंधों के साथ ही भारतेंदु के जीवनचरित-संबंधी लेखों का संक्षिप्त विवेचन समीचीन होगा, क्योंकि दोनों के मूल में एक ही प्रकार की भावना काम कर रही है।। 'चरितावली' और 'पंच पवित्रात्मा' में कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के जीवनचरित संगृहीत हैं। इनके लेखन में भी उन्नीसवीं शती की व्यक्तिवादी भावना काम कर रही है। फिर भी ये लेख चरित्रप्रधान न होकर घटनाप्रधान हैं; इन जीवनवृत्तों में सुनी-सुनाई बातों और घटनाओं का वर्णन अधिक है और हृदय की वृत्तियों के दिग्दर्शन का प्रयास कम। इन जीवनियों के चुनाव का आधार उनका असाधारणत्व या असामान्यता है—चाहे वह असामान्यता आध्यात्मिक हो या धन, ऐश्वर्य, वंश या पद का असाधारणत्व हो। लेखक का मन भी उन कथाओं और घटनाओं के वर्णन में अधिक रमा है जिनमें कोई असाधारणता थी। भारतेंदु ने अपने चरित-नायकों का वर्णन करते हुए कहीं तो नैतिकता का पाठ पढ़ाया है, कहीं अलौकिक चमत्कार से चकित हुए हैं और कहीं वे स्वयं भावुक होकर संसार की क्षण-भंगुरता की दार्शनिक भावधारा में बह गए हैं। किंतु उन्होंने अपने चरित-नायक को युगपरिस्थिति के बीच रखकर उसपर पड़नेवाले प्रभाव का दिग्दर्शन नहीं कराया। इसका कारण भी उन्नीसवीं शताब्दी है जो व्यक्ति को युग की प्रवृत्तियों का प्रतीक न मानकर इतिहास का निर्माता समझती थी। व्यक्ति को इतिहास-निर्माता की पदवी दिलानेवाले कार्यों के पीछे युग की जन-परिस्थिति का कितना बड़ा हाथ छिपा रहता है, इसकी ओर न उन्नीसवीं शती का ध्यान था और न उसमें रहनेवाले भारतेंदु का। इसी से भारतेंदु ने नैपोलियन के बीते वैभव का गान तो किया, किंतु उस समय के प्रगतिशील आंदोलनों के बीच उसका क्या स्थान था, इसका कोई उल्लेख न किया। इसी प्रकार लार्ड मेयो की हत्या करनेवाले शेरअली को उन्होंने व्यक्तिगत हत्यारे के

रूप में ग्रहण किया। इस समय मुसलमानों के बीच सरकार के विरुद्ध जो 'जिहाद' की बात चल रही थी, उसकी ओर उनका ध्यान न गया और उन्होंने उससे शेरअली का संबंध न जोड़ा। शेरअली का यह कृत्य व्यक्ति की हत्या द्वारा सरकार की हत्या (या उसे अपदस्थ करने) का प्रयत्न था।

जीवनचरित संबंधी लेखों में पूरी पूरी रोचकता और साहित्यिकता है। इनमें भावों की विदग्धता और मार्मिकता है। भारतेंदु की विविध शैलियों के दर्शन इन लेखों में मिलते हैं।

भारतेंदु का अपने धर्म से तो पूरा परिचय था ही, अन्य धर्मों से भी वे अपरिचित न थे। ईसाई मत और मुसलमानी मत दोनों का उनको सम्यक् ज्ञान था। 'ईशू खृष्ट और ईश कृष्ण' तथा 'हिंदी कुरान शरीफ' इसी के परिणाम-स्वरूप लिखे गए। आर्यसमाज तथा थियासोफिष्ठ आंदोलन और उनके प्रवर्त्तकों के संपर्क में भी ये रह चुके थे। इस प्रकार तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों से वे पूर्णतया अवगत थे और उनमें उनकी पूरी रुचि थी। अपने धर्म के प्रति अचल विश्वास रखते हुए भी वे अन्य धर्मों के प्रति असहिष्णु न थे। उनमें भाव स्वातन्त्र्य और धार्मिक उदारता दोनों थी। इसके साथ ही वे अपने संप्रदाय की उपासना-पद्धति, रीति-नियम और परंपरा का पूरा पूरा पालन आस्था से करते थे। इसी प्रकार समाज-सुधार के वे पूरे समर्थक थे। अंधविश्वास की हँसी उड़ाने की हिम्मत भी उनमें थी और वे निर्भीकता से अपने विचारों को प्रकट कर सकते थे। 'वैष्णवता और भारतवर्ष' इन सब बातों का बड़ा सुंदर निदर्शन है। भारतेंदु को अपने समय की कितनी सच्ची परख थी और वे प्रगति के पथ पर कितने आगे बढ़े हुए थे, इसका पूरा पूरा पता इस निबंध से लगता है। इस संबंध में इस लेख से एक छोटा सा उद्धरण अनुपयुक्त न होगा—

"विदेशी शिक्षाओं से मनोवृत्ति बदल गई···। जब पेट भर खाने को न मिलेगा तो धर्म कहाँ बाकी रहेगा, इससे जीवमात्र के सहज धर्म उदरपूरण पर अब ध्यान दीजिये। ···अब महाघोर काल उपस्थित है। चारों ओर आग लगी हुई है। दरिद्रता के मारे देश जला जाता है···कदाचित् ब्राह्मण और गोसाईं लोग कहें कि हमको तो मुफ्त का मिलता है, हमको क्या? इसपर हम कहते हैं कि विशेष उन्हीं का रोना है। जो कराल काल चला आता है उसको आँख खोल कर देखो···।"

भारतेंदु की प्रगतिशीलता और उसके स्वरूप के अध्ययन के लिए यह निबंध अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

अब भारतेंदु के उपादेय या शिक्षात्मक निबंधों की संक्षिप्त चर्चा करके उन निबंधों का विवेचन किया जायगा जो शुद्ध साहित्य की कोटि में आते हैं। किंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ये साहित्यिक निबंध उद्देश्यविहीन हैं, या निरर्थक

हैं। 'संगीतसार', 'बलिया का व्याख्यान', (भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है), 'उत्सवावली' आदि लेखों को उपादेय निबंधों की कोटि में रखा जा सकता है। इनका प्रधान उद्देश्य शिक्षा देना और ज्ञानवर्धन है। 'संगीतसार' में भारतीय संगीत का पूरा पूरा निरूपण हुआ है। उत्सवावली में कृष्ण-संप्रदाय के उत्सवों की गिनती गिनाई गई हैं और 'बलिया व्याख्यान' में देशोन्नति के उपायों पर विचार प्रकट किए गए हैं। लेखक की प्रकृति के अनुरूप बीच बीच में व्यंग के छींटे और चुटकुले हैं जो व्याख्या को बड़ा मनोरंजक बना देते हैं और बताते हैं कि भारतेंदु का भाषण बड़ा सफल हुआ होगा।

भारतेंदु के साहित्यिक कोटि में आनेवाली निबंध पर्याप्त संख्या में मिलते हैं, इनमें वस्तुविषय, वर्णन तथा भाषा-शैली की विविधता और अनेकरूपता मिलती है। एक ही लेख में कई प्रकार के वर्णन और भाषा-शैली की छटा दिखाई पड़ती है। भारतेंदु की विदग्धता, मार्मिकता, सजीवता और क्षमता का परिचय इन्हीं लेखों से मिलता है। उनके यात्रा-संबंधी लेख, व्यंग तथा हास्यप्रधान लेख इसी कोटि में आते हैं। भारतेंदु के जीवनचरित्रों की चर्चा पहले की जा चुकी है। उनकी आत्मकथा अपूर्ण है; फिर भी जो अंश प्राप्त है वह अत्यंत मार्मिक है।

भारतेंदु ने अपने जीवनकाल में कई यात्राएँ कीं और उनमें से कुछ का सविस्तर वर्णन लिखा। उनकी उदयपुर की यात्रा, सरयूपार की यात्रा, जनकपुर की यात्रा तथा वैद्यनाथ की यात्रा के लेख प्रसिद्ध हैं। लखनऊ और हरिद्वार की यात्रा का वृत्तांत उन्होंने 'यात्री' के नाम से 'कविवचनसुधा' में छपाया।

इन यात्रा-संबंधी लेखों में भारतेंदु का स्वच्छंद और अकृत्रिम स्वरूप खूब देखने को मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतेंदु सब प्रतिबंधों को हटाकर घूमने निकले हैं, और इसी प्रकार उनकी प्रतिभा और वाणी भी स्वच्छंद विचरण कर रही है। उनकी आँखें सब कुछ देखने को खुली हैं, उनके कान सब कुछ सुन रहे हैं, उनका विवेचनशील मस्तिष्क सतत जागरूक है, और उनका संवेदनशील हृदय उन सब दृश्यों और वस्तुओं को ग्रहण करता है जिनमें वह रम सका है। हृदय की प्रेरणा के अनुरूप ही वे कभी उल्लास से भर जाते हैं, कभी आश्चर्यचकित होते हैं, कभी अतीत की स्मृति में डूब जाते हैं। कभी किसी रीति-नीति का वर्णन करते हैं (और अपना निर्णय देते हैं), कभी कथाएँ और चुटकुले कहते हैं, और कभी प्रकृति के दृश्यों को देखकर मुग्ध होते हैं, और कभी वे व्यंग के हलके-गहरे छींटे उड़ाते चलते हैं। इसी प्रकार उनकी वाणी भी कहीं अकृत्रिम और अलंकृत रूप में प्रकट हुई है, कहीं उसका चलता हुआ प्रतिबंधविहीन और स्वच्छंद प्रवाहपूर्ण रूप सामने आता है, कहीं बड़ी सधी-सधाई और

अलंकृत भाषा देखने को मिलती है । संक्षेप में इन यात्रा-संबंधी लेखों में भाव और भाषा दोनों के विविधात्मक और स्वच्छंद रूप देखने को मिलते हैं ।

यात्रा के लेख अधिकांश में वर्णनात्मक हैं और उनमें 'हरिद्वार' शीर्षक लेख के आरंभ में भारतेंदु चमत्कारी कार्यों का वर्णन बड़े उल्लास के साथ इन शब्दों में करते हैं और आश्चर्य में डूब जाते हैं—

"इस में दो तीन वस्तु देखने योग्य हैं एक तो (कारीगरी) शिल्पविद्या का बड़ा कारखाना जिस में जलचक्की पवनचक्की और भी कई बड़े-बड़े चक्र अनवर्त खचक्र में सूर्य चन्द्र पृथ्वी मंगल आदि ग्रहों की भांति फिरा करते हैं और बड़ी-बड़ी धरन ऐसी सहज में चिर जाती हैं कि देख कर आश्चर्य होता है—यहां सबसे आश्चर्य श्री गंगा जी की नहर है । पुल के ऊपर से तो नहर बहती है और नीचे नदी बहती है । यह एक आश्चर्य का स्थान है—।"*

इसी प्रकार इस लेख के अंत में वे धार्मिक भावना से कुछ भावुक बन जाते हैं—

"मेरा तो चित्त वहाँ जाते ही ऐसा प्रसन्न और निर्म्मल हुआ कि वर्णन के बाहर है यह ऐसी पुण्यभूमि है कि यहां की घास भी ऐसी सुगंधमय है । निदान यहां जो कुछ है अपूर्व्व है और यह भूमि साक्षात् विरागमय साधुओं और विरक्तों के सेवन योग्य है और सम्पादक महाशय मैं चित्त से तो अब तक वहीं निवास करता हूँ और अपने वर्णन द्वारा आप के पाठकों को इस पुण्यभूमि का वृत्तान्त विदित करके मौनावलम्बन करता हूँ···।"†

इसी प्रकार सरयूपार की यात्रा में अयोध्या की स्मृतिमात्र उनको उसके अतीत वैभव के भावलोक में पहुँचा देती है और वे दुख से कह उठते हैं कि—

"···फिर अयोध्या की याद आई कि हा! यह वही अयोध्या है जो भारतवर्ष में सबसे पहिले राजधानी बनाई गई···। संसार में इसी अयोध्या का प्रताप किसी दिन व्याप्त था और सारे संसार के राजा लोग इसी अयोध्या की कृपाण से किसी दिन दबते थे वही अयोध्या अब देखो नहीं जाती···।"‡

यात्रा के बीच मार्ग में खुली प्रकृति के दर्शन अत्यंत स्वाभाविक हैं । भारतेंदु का कवि-हृदय प्रकृति के स्वागत को सदा तैयार रहता था । इसी से उनके इस प्रकार के लेखों में प्रकृति के वर्णन अनेक ढंग के मिलते हैं । भारतेंदु ने प्रकृति पर एक स्वतंत्र लेख भी लिखा है, उसका नाम है 'ग्रीष्म ऋतु' ।

* कविवचनसुधा, ३० अप्रैल सन् १८७१ (खंड ३ नंबर १) पृष्ठ १० ।

† कविवचनसुधा, १४ अक्टूबर १८७१ (खंड ३ नंबर ४) पृष्ठ ३५ ।

‡ हरिश्चंद्र चंद्रिका, फरवरी १८७६, (खंड ६ नंबर ८) पृष्ठ ११—२० ।

'वैद्यनाथ की यात्रा' उन के प्रकृति-प्रेम का अच्छा परिचय देती है और बहुत से विद्वानों के इस कथन का खंडन करती है कि भारतेंदु को प्रकृति से सच्चा प्रेम न था और उनके वर्णन कृत्रिम तथा परंपराग्रस्त एवं रूढ़ होते हैं। भारतेंदु ने प्रकृति का यथातथ्य चित्रात्मक, संविदनात्मक तथा आलंकारिक, सभी प्रकार का वर्णन किया है। स्थानाभाव से यहां पर केवल एक ही उद्धरण दिया जाता है जिससे भारतेंदु का प्रकृति-प्रेम स्पष्ट हो जायगा—

"ठंढी हवा मन की कली खिलाती हुई बहने लगी॰ दूर से धानी और काही रंग के पर्वतों पर सुनहरापन आ चला॰ कहीं आधे पर्वत बादलों से घिरे हुए, कहीं एक साथ वाष्प निकलने से उन की चोटियां छिपी हुई और कहीं चारों ओर से उन पर जलधारा पात से बुक्के की होली खेलते हुए बड़े ही सुहाने मालूम पड़ते थे···।"*

ये यात्रा-विषयक लेख भारतेंदु के उल्लास, हास्य और व्यंग के पुट से सजीव हैं। बीच-बीच में मार्मिक चुटकुलों का समावेश भारतेंदु की विशेषता है। इसी प्रकार वे मीठी चुटकियाँ लेते हुए और व्यंग कसते हुए अपने लेख की मनोरंजकता बराबर बनाए रखते हैं। ट्रेन की शिकायत करते हुए और अँगरेजों की धाँधली पर क्षोभ करते हुए वे कहते हैं कि

"गाड़ी भी ऐसी टूटी फूटी जैसे हिंदुओं की किस्मत और हिम्मत॰···अब तो तपस्या करके गोरी गोरी कोख से जन्म लें तब संसार में सुख मिले॰···।"†

दूसरा व्यंग कुछ अधिक तीव्र और कटु है—

"महाजन एक यहां हैं वह टूटे खपड़े में बैठे थे॰ तारीफ यह सुना कि साल भर में दो बार कैद होते हैं क्योंकि महाजन पर जाल करना फर्ज है और उस को भी छिपाने का शऊर नहीं···।"‡

यों तो व्यंग और हास्य की छटा उनकी अधिकांश गद्य-कृतियों में यत्र-तत्र देखने को मिलती है, फिर भी उनके कुछ लेख हास्य और व्यंग की दृष्टि से ही लिखे गए हैं। इन हास्यप्रधान लेखों का उद्देश्य शुद्ध हास्य का सर्जन, आलोचना, आक्षेप, व्यंग, परिहास सभी कुछ है। व्यक्ति, समाज, राजनीति सभी व्यंग के विषय बनाए गए हैं। भारतेंदु में शुद्ध हास्य अपेक्षाकृत कम है और

* हरिश्चंद्रचंद्रिका और मोहनचद्रिका, खंड ७ संख्या ४, आषाढ़ शुक्ल १ संवत् १९३५।

† वही।

‡ हरिश्चंद्रचंद्रिका, खंड ६ नंबर ८, फरवरी १८७९ पृष्ठ १५।

उनका व्यंग बड़ा मार्मिक और प्रायः बड़ा कटु होता है। उनके इस प्रकार के लेखों में 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन', 'ज्ञातिविवेकिनी सभा', 'लेवी प्राण लेवी', 'पाँचवे पैगंबर', 'कंकड़-स्तोत्र', 'अँगरेज-स्तोत्र' आदि मुख्य हैं। इनमें 'कंकड़-स्तोत्र' शुद्ध हास्य का सर्जन करनेवाला है। उसके मूल में क्षोभ नहीं है। सड़क के बीच और किनारे पड़े हुए कंकड़ों की महिमा भारतेंदु के शब्दों में ही सुनिए—

"कङ्कड़ देव को प्रणाम है० देव नहीं महादेव क्योंकि काशी के कङ्कड़ शिव-शंकर समान हैं।

हे लीलाकारिन्! आप केशी, शकट, वृषभ, खरादि के नाशक हो इससे मानो पूर्वार्द्ध की कथा हो अतएव व्यासों की जीविका हो।

आप बानप्रस्थ हो क्योंकि जंगलों में लुड़कते हो, ब्रह्मचारी हो क्योंकि बटु हो गृहस्थ हो चूना रूप से, संन्यासी हो क्योंकि घुट्टमघुट्ट हो।

आप अंगरेजी राज्य में भी...गणेश चतुर्थी की रात को स्वच्छंद रूप से नगर में भड़ाभड़ लोगों के सिर पर पड़कर रुधिर धारा से नियम और शांति का अस्तित्व बहा देते हो अतएव हे अंगरेजी राज्य में नवाबी स्थापक! तुमको नमस्कार है।"*

'स्वर्ग में विचार-सभा का अधिवेशन' भी इसी प्रकार का कल्पनात्मक लेख है। इसमें भी हास्य प्रधान है और व्यंग दबा हुआ और बड़ा सूक्ष्म तथा हलका है। केशवचंद्र सेन और स्वामी दयानंद के स्वर्ग जाने से वहाँ बड़ा आंदोलन उठ खड़ा हुआ। कोई इनसे घृणा करता और कोई इनकी प्रशंसा करता। स्वर्ग में भी तो दलबंदी है; इसका हाल भारतेंदु के शब्दों में सुनिए—

"स्वर्ग में कंसरवेटिव और लिबरल दो दल हैं, जो पुराने जमाने के ऋषी मुनी यज्ञ कर करके...या कर्म में पच पचकर स्वर्ग गए हैं उनके आत्मा का दल कंसरवेटिव है, और जो अपनी आत्मा ही को उन्नति से वा अन्य किसी सार्वजनिक भाव उच्च भाव संपादन करने से...स्वर्ग में गए हैं वे लिबरल दल भक्त हैं...बिचारे बूढ़े व्यासदेव को दोनों दल के लोग पकड़ पकड़ कर ले जाते और अपनी अपनी सभा का 'चेयरमैन' बनाते और बिचारे व्यासजी भी अपने अव्यवस्थित स्वभाव और शील के कारण जिसकी सभा में जाते थे वैसी ही वक्तृता कर देते थे...।"

निदान एक डेपुटेशन ईश्वर के पास गया। ईश्वर अत्यंत कुपित है। उसकी झल्लाहट में जो सूक्ष्म व्यंग छिपा हुआ है उसपर ध्यान दीजिए—

* कंकड़स्तोत्र, पृष्ठ ८-११।

"बाबा अब तो तुम लोगों को 'सेल्फ गवर्नमेंट' है। अब कौन हमको पूछता है।...हम तो केवल अदालत या व्यवहार या स्त्रियों के शपथ खाने को ही मिलाए जाते हैं। किसी को हमारी डर है।...भूत प्रेत ताजिया के इतना भी तो हमारा दर्जा नहीं बचा...क्या हम अपने बिचारे जय विजय को फिर राक्षस बनवावें कि किसी का रोक टोक करें...तुम जानो स्वर्ग जाने...।"*

'ज्ञातिविवेकिनी सभा' में सामाजिक व्यंग है। बालशास्त्री ने कायस्थों के बारे में व्यवस्था देकर उनको उच्च वर्ण का बताया था इसी से भारतेंदु ने यह व्यंगपूर्ण लेख लिखा। इसमें श्रीविपिनराम शास्त्री काशी के पंडितों से गड़रियों को क्षत्रिय बनने की व्यवस्था देने की बात कह रहे हैं। व्यंग बड़ा कटु और स्पष्ट है—

"...अरे भाइयो यह बड़े सोच की बात है कि हमारे जीते जी यह हमारे जन्म के यजमान जो सब प्रकार से हमें मानते दानते हैं नीच के नीच बने रहें तो हमारी जिन्दगी को धिक्कार है कोई वर्ष ऐसा नहीं होता कि इन विचारों से दस-बीस भेड़ा, बकरा और कमरी आसंनादि वस्तु और सीधा पैसा न मिलता होय।...हमको आशा है कि आप सब हमारी सम्मति से मेल करेंगे, क्योंकि आज की हमारी कल की तुम्हारी।...रह गई पाण्डित्य सो उसे आजकल कौन पूछता है गिनती में नाम अधिक होने चाहिएँ।" ×

'लेवी प्राण लेवी' में राजनीतिक आक्षेप है और रईसों पर व्यंग है जो लार्ड मेयो के दरबार में आए थे। उनकी अव्यवस्था और भीरुता पर कटाक्ष है। अंत के वाक्य में उनका उद्देश्य बिलकुल स्पष्ट हो गया है —

"लार्ड साहिब को "लेवी" समझकर कपड़े भी सब लोग अच्छे अच्छे पहिन आए थे पर वे सब उस गरमी में बड़े दुखदाई हो गए। जामे वाले गरमी के मारे जामे के बाहर हुए जाते थे, पगड़ीवालों की पगड़ी सिर की बोझ सी हो रही थी और दुशाले और कमखाब की चपकनवालों को गरमी ने अच्छी भांति जीत रक्खा था...

...सब लोग उस बंदीगृह से छूट छूट कर अपने घर आए। रईसों के नंबर की यह दशा थी कि आगे के पीछे पीछे के आगे अंधेर नगरी हो रही थी बनारस-वालों को न इस बात का ध्यान कभी रहा है और न रहेगा ये बिचारे तो मोम की नाव हैं चाहे जिधर फेर दो। राम—पश्चिमोत्तर देशवासी कब कायरपन छोड़ैंगे और कब इनकी उन्नति होगी...।‡

* स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन।

× कविवचनसुधा, खंड ८ संख्या १६; ११ दिसंबर १८७६।

‡ कविवचनसुधा, खंड २ नंबर ५, कार्तिक शुक्ल १५ संवत् १९२७।

'पाँचवाँ पैगंबर' में उस समय की स्थिति पर व्यंग है। अंगरेजियत के बढ़ते हुए रंग और कट्टरपन, अंधविश्वास तथा कुरीतियों पर छींटे कसे गए हैं। इसमें व्यंग विद्रूप हो गया है और एक स्थान पर अश्लीलता की झलक आ गई है। इसमें जो भविष्यवाणी की गई है उसमें अत्यधिक कटुता और घोर निराशा भरी है। कहीं कहीं पर यह भी नहीं स्पष्ट होता है किभारतेंदु स्वयं क्या चाहते हैं—

"देखो शराब पियो, विधवा विवाह करो, बाल पाठशाला करो, आगे से लेने जाओ, बाल्य विवाह उठाओ, जाति भेद मिटाओ, कुलीन का कुल सत्यानाश में मिलाओ, होटल में लव करना सीखो, स्पीच दो, क्रिकेट खेलो, शादी में खर्च कम करो, मेंबर बनो, दरबारदारी करो, पूजापत्री करो, चुस्त चालाक बनो, हम नहीं जानते को हम नहीं जानता कहो···नाच बाल थियेटर अंटा गुड़गुड़ बंक प्रिवी सिवी में जाओ···।"

इस उद्धरण से यह स्पष्ट नहीं होता कि क्या स्वीकार किया जाय और क्या छोड़ा जाय।

हास्य और व्यंग के साथ भारतेंदु के लेखों में एक प्रकार की सजीवता और जिंदादिली है जो उद्धरणों से नहीं स्पष्ट की जा सकती। शरीर में आत्मा की तरह वह उल्लास और सजीवता इनके सभी लेखों में व्याप्त है और उसका अनुभव पूरे लेख को पढ़ने से ही हो सकता है।

भारतेंदु के आत्मचरित-संबंधी लेख का उदाहरण उनकी आत्मकथा का अपूर्ण अंश है। यदि उनकी आत्मकथा 'एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती' पूरी हो जाती तो हिंदी साहित्य को आत्मकथा का सुंदर निदर्शन प्राप्त हो जाता। इसका 'प्रथम खेल' ही लिखा जा सका। इसमें भारतेंदु ने अपने चारों ओर के वातावरण का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है और अपनी पैनी दृष्टि और परख का परिचय दिया है। मानव-प्रकृति को पहचानने में वे कितने पटु थे और उसकी अभिव्यक्ति में कितने कुशल थे इसका उत्कृष्टतम उदाहरण उनकी आत्मकथा है। 'रसकाई' में मस्त भारतेंदु अपने चारों ओर के वातावरण का (छोटे छोटे शब्द और शब्दसमूह के द्वारा) समा बांध रहे हैं और अपना हृदय खोलकर सामने रख रहे हैं। निम्नलिखित शब्दों में उनका 'कनफेशन' है—

"सं० १९३० में जब मैं तेईस वर्ष का था, एक दिन खिड़की पर बैठा था, बसन्त ऋतु हवा ठंढी चलती थी। सांझ फूली हुई, आकाश में एक ओर चंद्रमा दूसरी ओर सूर्य, पर दोनों लाल लाल, अजब समां बंधा हुआ। कसेरू गंडेरी और फूल बेचनेवाले सड़क पर पुकार रहे थे। मैं भी जवानी के उमंगों में चूर, जमाने के ऊँच नीच से बेखबर, अपनी रसकाई के नसे में मस्त, दुनियां के मुफ्त-

खोरे सिफारशियों से घिरा हुआ अपनी तारीफ सुन रहा था, पर इस छोटी अवस्था में भी प्रेम को भली भांति पहचानता था ।"*

अब नौकरों की प्रकृति और स्वभाव का चित्रण देखिए--

"यह तो दीवानखाने का हाल हुआ अब सीढ़ी का तमाशा देखिए।···हाय रुपया सबकी जबान पर···कोई रंडी के भड़ुए से लड़ता है, रुपये में दो आना न दोगे तो सरकार से ऐसी बुराई करेंगे कि फिर बीबी का इस दरबार में दरशन भी दुर्लभ हो जायगा, कोई बजाज से कहता है कि वह काली बनात हमें न ओढ़ाओगे तो बरसों पड़े भूलोगे रुपये के नाम खाक भी न मिलेगी। कोई दलाल से अलग सट्टा बट्टा लगा रहा है, कोई इस बात पर चूर है कि मालिक का हमसे बढ़कर कोई भेदी नहीं···।"†

भारतेंदु के जीवन का तह अधूरा पृष्ठ न जाने कितनी बातें बता रहा है। उनके व्यक्तित्व, उनके अतरंग जीवन और उनके चारों ओर के वातावरण की जो झाँकी इतने सहज और अकृत्रिम शब्दों में मिल रही है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इस कारण भारतेंदु की आत्मकथा के इस 'प्रथम खेल' का भाषा, भाव आदि सभी दृष्टियों से महत्त्व है।

भारतेंदु की भाषा-शैली के विषय में कुछ लिखने के पूर्व उनके एक विचारात्मक लेखकी चर्चा आवश्यक है। इसकी लिपि तो नागरी है, किंतु भाषा उर्दू है। लेख का शीर्षक है 'खुशी'। इसमें भारतेंदु ने खुशी के स्वरूप, भेद आदि का विवेचन विस्तार के साथ क्लिष्ट उर्दू में किया है। फारसी के शब्दों की भरमार है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके द्वारा भारतेंदु अपने उर्दू-ज्ञान का प्रदर्शन करना चाहते थे। इसके स्वरूप आदि का विवेचन करते हुए उन्होंने उन कारणों की छानबीन का प्रयत्न भी किया है जिनके कारण हिंदू खुशी से वंचित हैं और संसार के उन्नतिशील देशों की खुशी का प्याला लबालब भरा है। देश-चिंता ने यहाँ भी भारतेंदु का पीछा न छोड़ा। भाषा और भाव के परिचय के लिए एक छोटा सा उद्धरण दिया जा रहा है—

"हर दिल ख्वाह आसूदगी को खुशी कह सकते हैं याने जो हमारे दिल की ख्वाहिश हो वह कोशिश करने या इत्तिफ़ाक़ियः बग़ैर कोशिश किए बर आवे तो हमको खुशी हासिल होती है···।

* 'एक कहानी आप बीती जग बीती'—कविवचनसुधा, भाग ८ संख्या २२ वैशाख कृष्ण ४ संवत् १९३३।

† वही।

अब हम इस बात पर ग़ौर किया चाहते हैं कि वह असली ख़ुशी हिंदुओं को क्यों नहीं हासिल होती क्योंकि जब हम इसी ख़ुशी के अपनी पूरी बलंदी की हद पर सूरत से कामिल देखना चाहते तो हमेशः ग़ैर क़ौमों में पाते हैं'''।*"

भारतेंदु के निबंधों के भेद, स्वरूप और उनके भावपक्ष का विवेचन करने के बाद उनके निरूपण के ढंग और उनकी भाषा-शैली का संक्षिप्त पर्यालोचन भी आवश्यक है। यह पहले कहा जा चुका है कि निरूपण के ढंग के अनुसार उनके निबंधों की तथ्यातथ्यनिरूपक,शिक्षात्मक, विचारात्मक, वर्णनात्मक और कल्पनात्मक कोटियाँ बनाई जा सकती हैं। निरूपण के ढंग का निबंधों की भाषा शैली-पर भी प्रभाव पड़ा है। जैसे तथ्यातथ्यनिरूपक, शिक्षात्मक तथा उपादेय लेखों की भाषा-शैली में लेखक का ध्यान वस्तु-विषय के स्पष्टीकरण और प्रतिपादन की ओर अधिक है और वाणी की वक्रता या वाणी के विलास की ओर कम है। इसी से भारतेंदु के इस प्रकार के लेखों में (जैसे ऐतिहासिक, 'संगीतसार', गवेषणात्मक) भाषा संस्कृत या तत्सम पदावली से समन्वित तो अवश्य है, किंतु उसमें अतिरंजना या अलंकरण नहीं है। इन लेखों को हम भारतेंदु की प्रांजल या प्रसादपूर्ण शैली का उदाहरण कह सकते हैं, इनमें अलंकरण या अतिरंजना या भाषा की मार्मिकता उन्हीं कतिपय स्थलों पर देखने को मिलती है जहाँ लेखक किसी प्रबल भाव से आक्रांत होकर भावुक बन जाता है।

भारतेंदु की शैलियों के संबंध में उनकी 'प्रदर्शन शैली' का नाम लिया जा चुका है। जहाँ बिना किसी प्रयोजन के, या किसी गूढ़ भाव या क्लिष्ट विचार की अभिव्यक्ति की विवशता उपस्थित हुए बिना ही, जानबूझकर भाषा के चलते रूप को छोड़कर अत्यधिक तत्समप्रधान पदावली का प्रयोग हुआ है, वहाँ स्पष्ट प्रतीत होता है कि भारतेंदु अपने भाषाधिकार का प्रदर्शन करना चाहते हैं। इस प्रकार की भाषा या पदविन्यास को 'प्रदर्शन शैली' नाम दिया गया है। 'उदयपुरोदय' नामक निबंध से दो उद्धरण इस शैली को स्पष्ट करने के लिये दिए जा रहे हैं—

"जन समागम से जोगी का ध्यान भंग हुआ, बाप्पा का परिचय जिज्ञासा करने से बाप्पा ने आत्म-वृत्तांत जहाँ तक अवगत थे विदित किया, योगी के आशीर्वाद ग्रहणान्तर उस दिन गृह में प्रत्यागत भए। अतः पर बाप्पा प्रत्यह एक बार योगी के निकट गमन करके उनका पाद प्रक्षालन, पानार्थ पयःप्रदान और शिवप्रीतिकाम होकर धतूरा अर्क प्रभृति शिव-प्रिय वन-पुष्प-समूह चयन किया करते थे।"†

* 'ख़ुशी', खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर पटना।
† उदयपुरोदय, पृष्ठ २७।

"समर में विपक्षगण ने पराजित होकर पलायन किया। बाप्पा ने सरदारगण के साथ चित्तौर में प्रत्यागत न होकर स्वीय पैत्रिक राजधानी गाजनी नगर में गमन किया।...बाप्पा ने सलीम को दूरीभूत करके वहाँ का सिंहासन जनैक चौर वंशीय राजपूत को दिया...जातरोष सरदारगण ने चित्तौर राजा के साथ बैर निर्यातन में कृत संकल्प होकर सबने एक वाक्य होकर नगर परित्याग करके अन्यत्र गमन किया, राजा ने उन लोगों के साथ संधि करने के मानस से बारंबार दूत प्रेरण किया, किंतु किसी प्रकार सरदारगण का क्रोध शांत नहीं हुआ...। *"

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि न तो इसी लेख में सर्वत्र इस 'प्रदर्शन शैली' का व्यवहार हुआ है और न अन्यत्र ही इसका बाहुल्य है। इसे उनके मन की मौज ही कहना चाहिए, यद्यपि तथ्यनिरूपक लेखों में ही अधिकतर इसके दर्शन होते हैं।

भारतेंदु की शैलियों के विविध प्रयोग उनके वर्णनात्मक और व्यंगात्मक निबंधों में देखने को मिलते हैं। उनकी आलंकारिक शैली और प्रवाह शैली के दर्शन भी यहीं होते हैं। प्रत्येक परिस्थिति, पात्र और भाव के अनुरूप अभिव्यंजन की क्षमता उनमें पूरी पूरी थी इसी से उनके निबंधों में कहीं चलती भाषा की छटा दिखाई पड़ती है, कहीं मुहावरों की बंदिश है और कहीं शब्दक्रीड़ा या चमत्कार की प्रवृत्ति है।

इन वर्णनात्मक लेखों में भी दो प्रकार का पदविन्यास देखने को मिलता है। कहीं पर तो संस्कृत की तत्सम पदावली अधिक प्रयुक्त हुई है और कहीं पर उर्दू का शब्दसमूह अपने चलते और अलंकृत दोनों रूपों में प्रयुक्त हुआ है। हरिद्वार के निम्नलिखित वर्णन की आलंकारिक शैली का पदविन्यास संस्कृत-समन्वित है—

"यह भूमि तीन ओर सुंदर हरे हरे पर्वतों से घिरी है जिन पर्वतों पर अनेक प्रकार की वल्ली हरी-भरी सज्जनों के शुभ मनोरथों की भाँति फैलकर लहलहा रही है और बड़े बड़े वृक्ष भी ऐसे खड़े हैं मानो एक पैर से खड़े तपस्या करते हैं... अहा! इनके जन्म भी धन्य हैं जिनसे अर्थी विमुख जाते ही नहीं...एक ओर त्रिभुवनपावनी श्री गंगाजी की पवित्र धार बहती है जो राजा भगीरथ के उज्ज्वल कीर्त्ति की लता सी दिखाई देती है...।"†

* वही, पृष्ठ ३१

† 'हरिद्वार'।

अब उनकी उर्दू मिश्रित पदावली की छटा निम्नलिखित उद्धरण में देखिए—

"चारों ओर हरी हरी घास का फर्श० ऊपर रंग रंग के बादल गड़हों में पानी भरा हुआ० सब कुछ सुंदर'''सांझ को बक्सर पहुँचे० बक्सर के आगे बड़ा भारी मैदान पर सब्ज काशानी मखमल से मढ़ा हुआ'''झपकी का आना था कि बौछारों ने छेड़-छाड़ करनी शुरू की० राह में बाज पेड़ों में इतने जुगनू लिपटे हुए थे कि पेड़ सचमुच 'सर्वे चिरागां' बन रहे थे''''''।"*

इस उद्धरण में उर्दू पदावली का संमिश्रण अवश्य हुआ है, किंतु किसी प्रकार की जटिलता नहीं आने पाई है।

अब उनकी 'प्रवाह' शैली का एक नमूना देखिए। इसके वाक्य छोटे होते हैं और पदसमूह में उर्दू, अंग्रेजी सभी के शब्द व्यवहृत होते हैं। उनके दो चार व्यंगात्मक लेखों में भी इसके दर्शन होते हैं। निम्नलिखित उद्धरण की उर्दू पदावली पर फारसी का रंग कुछ अधिक है—

"कल सांझ को चिराग जले रेल पर सवार हुए० यह गए वह गए० राह में स्टेशनों पर बड़ी भीड़० न जानैं क्यौं? और मजा यह कि पानी कहीं नहीं मिलता था० यह कंपनी मजीद के खांदान की मालूम होती है कि ईमानदारों को पानी तक नहीं देती० या सिप्रस का टापू सर्कार के हाथ में आने से और शाम में सर्कार का बंदोबस्त होने से यहाँ भी शामत का मारा शामी तरीका अखतियार किया गया कि शाम तक किसी को पानी न मिलै।" †

इसी प्रकार 'स्वर्ग-सभा' में सिलेक्ट कमेटी का वर्णन करते हुए अँगरेजी के शब्दों का प्रयोग हुआ है।

निबंधों के बीच में कभी कभी भारतेंदु की शब्दक्रीड़ा या शाब्दिक चमत्कार की प्रवृत्ति भी सजग हो जाती है (पर अधिक नहीं)। इसके भी एक दो उदाहरण देखिए—

"मिठाई हरैया की तारीफ के लायक है० बालूसाही सचमुच बालूसाही है भीतर काठ के टुकड़े भरे हुए० लड्डू 'भूर' के बरफी अहा हा हा! गुड़ से भी बुरी० खैर लाचार होकर चने पर गुजर की० गुजर गई गुजरान क्या झोंपड़ी क्या मैदान०'''।

* वैद्यनाथ की यात्रा।

† सरयूपार की यात्रा।

"...वाह रे बस्ती० झख मारने को बसती है अगर बस्ती इसी को कहते हैं तो उजाड़ किसको कहैंगे० सारी बस्ती में कोई भी पंडित बस्तीरामजी ऐसा पंडित नहीं है० खैर अब तो एक दिन यहाँ बसति होगी० ।"*

भारतेंदु की वार्तालाप शैली उनकी आत्मकथा में देखने को मिलती है। बिलकुल बोलचाल की भाषा और अत्यंत विश्वसनीय वातावरण। शब्दसमूह सभी प्रकार के, किंतु चलते हुए मुहावरों की छटा इसकी विशेषता है। इसमें भारतेंदु पाठकों से बातचीत करते मालूम होते हैं। निम्नलिखित उद्धरण में खुशामदियों की दरबारी, उनकी बातचीत और उनकी मनोवृत्ति का जीता जागता और बोलता हुआ शब्दचित्र है—

"कोई कहता था आप से सुंदर संसार में नहीं है, कोई कसमें खाता था, आप-सा पंडित मैंने नहीं देखा, कोई पैगाम देता था चमेलीजान आप पर मरती हैं, आप के देखे बिना तड़प रही हैं, कोई बोला हाय! आपका फलाना कवित्त पढ़कर रातभर रोते रहे...चौथा बोला आपकी अँगूठी का पन्ना क्या है काँच का टुकड़ा है या कोई ताजी तोड़ी हुई पत्ती है। एक मीर साहब चिड़ियावाले ने चोंच खोली, बेपर की उड़ाई बोले कि आपके कबूतर किससे कम हैं वल्लाह कबूतर नहीं परीज़ाद हैं, खिलौने हैं तस्वीर हैं...।"†

भारतेंदु के निबंधों की सजीवता उनके मुहावरों के प्रयोग पर बहुत कुछ निर्भर है। उनके स्वतंत्र उदाहरण की कोई आवश्यकता नहीं है, उपर्युक्त उद्धरणों में ही इनके प्रयोग भरे पड़े हैं। भारतेंदु के कदाचित् एक ही दो लेख ऐसे मिलें जिनमें मुहावरों का अभाव हो।

शैलियों के विवेचन को समाप्त करने के पूर्व ही भारतेंदु के भाषा-शैथिल्य की ओर आकृष्ट करना आवश्यक है। यद्यपि भारतेंदु ने गद्य की परंपरा का प्रवर्त्तन किया, फिर भी उनकी भाषा में व्याकरण की दृष्टि से चिंतनीय प्रयोग मिल ही जाते हैं। इसी प्रकार शब्दों के स्थानीय रूपों तथा स्थानीय और अल्पप्रचलित 'शब्दों का प्रयोग किया है। इसे स्पष्ट करने के लिये किसी लंबे उद्धरण की आवश्यकता नहीं है, ये इधर उधर स्वतः देखने को मिल जाते हैं, फिर भी दो एक उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं—

गिरैंगे, मरैंगे, बिछुड़ैंगे, बेर, बातैं, पुस्तकैं, आदि रूप प्रांतीय या स्थानिक हैं। इसी प्रकार इन वाक्यों के प्रयोग भी चिंत्य हैं—'सूरतसिंह को जोरावर सिंह और

* २०—वही।

† 'एक कहानी आप बीती जग बीती'

मियां मोरा सिंह दो पुत्र थे'; 'उसी वर्ष मक्का जाती समय'; 'यह बिल्कुल सफर उन्होंने पांच दिन में किया'; 'वहां की हिंदुस्तान से राह से सिंधु देकर थी'; 'चिमचा कांटा आदि भी उस समय होता था और बड़ी शोभा से खाना बुना जाता था'; श्रीमद् बुल्लर साहब का धन्यवाद करना चाहिए'; 'इस आशय को सुनकर चार विद्वानों ने विचारांश किया'; 'किसी प्रकार स्वामी के प्राण हरण किए चाहिए'।

भारतेंदु के निबंधों में पाई जानेवाली विविध शैलियों के विषय में इतना कह देना आवश्यक है कि ऊपर जिन शैलियों का विवेचन किया गया है उनका किसी लेख में आद्योपांत निर्वाह नहीं हुआ है, एक ही निबंध में कई प्रकार के पदविन्यास देखने को मिल जाते हैं। एक जगह संस्कृत पदावली है तो दूसरी जगह उर्दू की छटा और तीसरी जगह मुहावरों के छींटे। उमंगों की तरंगों में बहते हुए भारतेंदु ने अपने मनोनुकूल भाषा को सँवारा और सजाया है।

फिर भी समष्टि रूप से देखने पर भारतेंदु की दो मुख्य शैलियाँ प्रतीत होती हैं। यों तो प्रचलित सामान्य संस्कृत पदसमूह उनके सभी लेखों की भाषा का आधार है, फिर भी उनकी एक शैली तत्समप्रधान और संस्कृत-समन्वित है। इसकी भाषा में प्रांजलता तो है किंतु प्रवाह कम है। भाषा का चलतापन उनकी दूसरी शैली में देखने को मिलता है। इसमें भाषा का नैसर्गिक सौंदर्य, उसकी मिठास और उसकी अपनी प्रकृत गति है।

भारतेंदु की प्रांजल शैली के पीछे इतिहास छिपा पड़ा है। उनके समय में हिंदी भाषा को आदरपूर्ण स्थान दिलाने का आंदोलन चल रहा था और स्वयं भारतेंदु उसके नेता थे। उर्दू से हिंदी को स्पष्ट करने के लिये उन लोगों ने संस्कृत-समन्वित हिंदी को अपना आदर्श बनाया और भारतेंदु ने इसका पूरा पूरा समर्थन किया। इसी से उनके बहुत से निबंधों की भाषा शुद्ध हिंदी है।

भारतेंदु शुद्ध हिंदी के पक्षपाती भले ही रहे हों, किंतु वे क्लिष्ट हिंदी, जटिल हिंदी, अस्पष्ट हिंदी, निर्जीव हिंदी और भाराक्रांत हिंदी के समर्थक कभी नहीं थे। वे कवि थे और गद्य के कलाकार थे। वे शब्दों की आत्मा को पहचानते थे। वे जानते थे कि भाषा की संजीवनी-शक्ति उसके चलतेपन में है, उसके मुहावरों में है; उधार ली हुई संस्कृत पदावली में नहीं है, जैसा कि भ्रमवश वर्तमान युग के कुछ कलाकार समझ बैठे हैं। इसी से उन्होंने अपने साहित्यिक लेखों का आधार तो संस्कृत पदावली को बनाया, किंतु मुहावरेदानी का साथ न छोड़ा और इसी कारण वे सफल निबंध-लेखक भी बन सके।

भारतेंदुयुग में प्रांजल शैली और प्रवाह शैली दोनों की आवश्यकता थी और इसी से दोनों का महत्त्व है। भारतेंदुयुग के लेखकों को भाषा को व्यवहारोपयोगी भी बनाना था और साहित्योपयोगी भी। व्यवहारोपयोगी भाषा प्रांजल शैली में

निखरी। यही संस्कृतसमन्वित व्यवहारोपयोगी भाषा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा परिष्कृत हुई और आज राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन है। भारतेंदु की प्रांजल शैली का महत्त्व इतने ही से स्पष्ट हो जायगा।

साहित्योपयोगी भाषा में भावों की मार्मिकता और उनकी छटा दिखाने के लिये भारतेंदु ने प्रवाह शैली को माँजा। प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि उनके समकालीनों ने भी इसी मुहावरेदार प्रवाह शैली को अपनाकर भाषा की अभिव्यंजन शक्ति को बढ़ाया।

इस प्रकार भारतेंदु के निबंधों का ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्त्व स्पष्ट है। निबंधों के द्वारा ही परंपरा का प्रवर्त्तन हुआ, निबंधों द्वारा ही जन-जागर्ति फैली और निबंधों के द्वारा ही भाषा की, व्यंजकता बढ़ी। इसका सबसे अधिक श्रेय भारतेंदु को ही है।

भारतेंदु का महत्त्व इसलिये और भी बढ़ जाता है कि उस समय तक गद्य की कोई परंपरा नहीं थी। भारतेंदु को संचालक और संस्कारकर्त्ता दोनों बनना पड़ा। आज जब हम बीते युग के इतिहास पर दृष्टि डालते हैं और आज की भाषा-समृद्धि का उस युग से संबंध जोड़ते हैं तो समझ में आता है कि भारतेंदु की हिंदी ने कितना महत्त्वपूर्ण काम किया है, और भारतेंदु ने अपने 'कालचक्र' में उसे नोट कर अपनी दर्पोक्ति का नहीं, प्रत्युत दूरदर्शिता का परिचय दिया है। भारतेंदु के निबंधों के द्वारा सचमुच 'हिंदी नए चाल में ढली'।

भारतेंदु की भाषा-शैली

भारतेंदु-युग में भाषा का प्रश्न बड़ा महत्त्वपूर्ण बन गया था और भारतेंदु की शैली में कुछ ऐसी निजी विशेषताएँ थीं जो परवर्ती युगों में न दिखाई दीं। भारतेंदु ने हिंदी उर्दू के इस विवाद में बड़ा हिस्सा लिया और उनकी गद्यशैली से उनके सहयोगियों को बड़ी प्रेरणा मिली और वे बहुत प्रभावित हुए। इस प्रकार भारतेंदु-युग की जो विशिष्ट शैली विकसित हुई उसके निर्माण में भारतेंदु का बड़ा हाथ था। भाषा और शैली का प्रश्न आज भी जटिल ही है। भारतेंदु ने इस दिशा में भी काम किया, उससे हम आज भी बहुत कुछ सीख सकते हैं।

भारतेंदु-युग में भाषा का जो वादविवाद छिड़ा उससे 'आमफहम' और 'खास-पसंद' के अगुआ राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद थे। 'आमफहम' और 'खासपसंद'

का नारा लगाते हुए भी उनकी हिंदी में फारसी के शब्दों की खास बहुतायत थी। जिसके कारण न इसको सब हिंदीभाषी ही समझ सकते थे और न विशिष्ट जन पसंद ही करते थे। उनके विरुद्ध हरिश्चंद्र का दल था जिसकी भाषा का आधार संस्कृतनिष्ठ था। इस प्रकार एक ओर तो उर्दू या फारसी को आधार बनाया जा रहा था; दूसरी ओर लेखक संस्कृत के शब्दों का सहारा ले रहे थे। भारतेंदु ने इस संबंध में राजा शिवप्रसाद पर आरोप भी बहुत किए। कविवचन-सुधा जिल्द २ कार्तिक कृष्ण ३० सं० १९२७ वाराणसी नं० ४ में हिंदी भाषा शीर्षक से एक संपादकीय लेख (या टिप्पणी) छपा है जो दलों की स्थिति और तत्कालीन मतमतांतरों को स्पष्ट कर रहा है, और साथ ही राजा साहब पर जो आरोप है वह भी झलक जाता है।

"एक महाशय लिखते हैं कि यवन लोगों के आगमन के पूर्व उस देश में प्राकृत भाषा प्रचलित थी परंतु उसके अनंतर उस भाषा में विशेष करके अरबी और फारसी शब्द मिश्रित हो गए। अब उस नवीन भाषा को चाहे हिंदी कहो, हिंदुस्तानी कहो, बृजभाषा कहो, खड़ी बोली कहो, उर्दू कहो, परंतु वही यह भी कहते हैं कि मुसलमानों ने अपने आगमनांतर अपनी फारसी अर्थात् फारस देश की भाषा प्राकृत का नाम हिंदी अथवा हिंदी की भाषा रक्खा। प्राचीन रीत्यानुसार चलने वाले इसी को हिंदी भाषा कहते हैं और इसी की वृद्धि चाहते हैं। पर उक्त महाशय एक स्थान पर और कहते हैं कि भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसे संपूर्ण लोग बेप्रयास समझ सकें और आप ही ऐसे क्लिष्ट शब्द लिखते हैं कि फारसी रवाजों के व्यतिरिक्त और लोगों को यूनानी भाषा जान पड़े। कितने लोग कहते हैं कि हिंदी उस भाषा का नाम है जिसमें संस्कृत के शब्द विशेष रूप से रहें उर्दू वह भाषा है जिसमें फारसी और अरबी शब्दावली की बहुलता हो। हम लोग इसी वर्ग के हैं और सदा हिंदी की उन्नति चाहते हैं।"

उपर्युक्त उद्धरण में भारतेंदु हरिश्चंद्र और भारतेंदु-मंडल के विचारों की पूर्ण अभिव्यक्ति है। इसमें दो तीन बातें झलकती हैं। पहली बात यह है कि भारतेंदु-युग के लेखक उस युग की भाषा को अपना आधार बनाना चाहते थे जिसकी शब्दावली संस्कृत-प्राकृत से विकसित होती हुई उसको प्राप्त हुई है। दूसरी बात यह है कि इनकी भावना में उर्दू भाषा का स्वरूप उर्दू और फारसी विशिष्ट है, और हिंदी की संस्कृतमय। तीसरी बात यह है कि हिंदी की उन्नति चाहनेवालों की रचनाओं में संस्कृत के शब्द विशेष रहें।

ऊपरी दृष्टि से तो यह उद्धरण यह संकेत दे रहा है कि भारतेंदु तथा उनके पक्षपाती संस्कृतगर्भित तत्समपदावली के पक्षपाती थे और उर्दू फारसी के शब्दों

का बहिष्कार करनेवाले थे। किंतु बात ऐसी नहीं है। उनके मंडल ने संस्कृत को अपनी भाषा का आधार मानते हुए भी भावव्यंजक फारसी शब्दों का बहिष्कार कभी भी न किया और संस्कृत को अपना आधार बताते हुए भी उनकी भाषा इतनी संस्कृतगर्भित न हुई जितनी छायावादी युग में हमें देखने को मिलती है। भारतेंदु के युग में 'संस्कृत विशेष' का जो नारा लगाया गया उसके कुछ ऐतिहासिक कारण हैं। प्रथम कारण यह है कि हिंदी भाषा जिस संस्कृत प्राकृत आदि का विकसित रूप है उसमें संस्कृत के शब्दों की अधिकता अनिवार्य है। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि जब भारतेंदु-युग के लेखक 'संस्कृत' शब्द का प्रयोग करते हैं तो उनका संकेत हिंदी के प्राचीन तथा 'ऐतिहासिक' उद्गम संस्कृत की ओर है, उनका अभिप्राय तत्समपदावली से नहीं है। दूसरी बात यह है कि वाद-विवाद के बीच हिंदी के अस्तित्व की रक्षा के लिए उनको यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि हिंदी भाषा का स्वरूप और व्यक्तित्व स्पष्ट किया जाय। जिस प्रकार उर्दू वालों ने अरबी-फारसी के तत्सम शब्दों के द्वारा उर्दू के अलग व्यक्तित्व का आभास दिया उसी प्रकार हिंदी के स्वरूप को विशिष्टता और स्पष्टता देने के लिये उन्होंने संस्कृत के प्रति झुकाव और आग्रह दिखलाया। उसके साथ साथ यह तो मानना ही पड़ेगा कि किसी भी वादविवाद में थोड़ा अतिवाद या आग्रह तो आ ही जाता है और भारतेंदु के युग के लेखक भी इस दोष से न बच सके। फिर भी इस बात को दुहराने में पुनरुक्ति का दोष न माना जायगा कि इस युग के अधिकांश लेखक अधिकतर परिस्थितियों में न तो उर्दू पदावली का बहिष्कार ही करते और न वे तत्समपदावली के पक्षपाती ही थे। अधिकतर परिस्थितियों से अभिप्राय वस्तु-विषय और वातावरण की परिस्थिति से है। यदि हम हरिश्चंद की गद्यरचनाओं की भाषा-शैली का अध्ययन करें तो उपर्युक्त कथन की सत्यता स्पष्ट हो जाती है। भारतेंदु हरिश्चंद ने अपने एक लेख 'हिंदी भाषा' (खड्गविलास प्रेस सन् १८९० प्रथम संस्करण कदाचित् सन् १८८३) में अपने विचार प्रकट किए हैं। उनके विचारानुसार भाषा के तीन प्रकार होते हैं—(१) घर में बोलने की भाषा, (२) लिखने की भाषा, (३) कविता की भाषा। लिखने की भाषा से उनका तात्पर्य गद्य की भाषा से है। भारतेंदु के समय तक भाषा का वादविवाद शांत न हुआ था। विवादमयी परिस्थिति का इन शब्दों में स्पष्ट उल्लेख है। "भाषा का तीसरा अंग लिखने की भाषा है। इसमें बड़ा झगड़ा है। कोई कहता है कि संस्कृत शब्द होने चाहिए और अपनी अपनी रुचि अनुसार सभी लिखते हैं और कोई भी भाषा अभी निश्चित नहीं हो पायी है।"

यद्यपि उनके विचारानुसार भाषा निश्चित नहीं थी फिर भी उन्होंने तत्कालीन प्रचलित सभी शैलियों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं और अंत में उन्होंने जिस

शैली के प्रति अपनी रुचि दिखलाई है और दूसरों को लिखने की राय दी है इससे स्पष्ट हो जाता है कि **सरल सजीव चलती हुई मुहाविरेदार भाषा-शैली के समर्थक वे थे** ।

भारतेंदु में सभी प्रकार की परिस्थिति और वातावरण के अभिव्यंजन की अपूर्व क्षमता थी और उन्होंने 'वर्षावर्णन' और 'कलकत्ते की शोभा' के संबंध में कई प्रकार के पदविन्यास से युक्त १२ शैलियों के उदाहरण दिये हैं। जिनमें उन्होंने बतलाया है कि संस्कृतप्रधान फारसीप्रधान संस्कृत तथा अंग्रेजी मिश्रित तथा शुद्ध हिंदी का क्या स्वरूप है। अङ्गरेजों की हिंदी, बंगालियों की हिंदी, पुरबियों की बोली, दक्षिण के लोगों की हिंदी, रेलवे के लोगों की भाषा और काशी के अर्धशिक्षित लोगों की भाषा किस प्रकार की है। उनमें से कुछ प्रासंगिक उदाहरण दिए जा रहे हैं। इन उदाहरणों में भाषा से भारतेंदु का तात्पर्य पदविन्यास या शैली से है।

वर्षावर्णन नं० १—जिसमें संस्कृत के बहुत शब्द हैं, "अहा यह कैसी अपूर्व विचित्र वर्षा ऋतु सम्प्राप्त हुई है अनवर्त आकाश मेघाछन्न रहता है और चतुर्दिक कुज्झटिकापात से नेत्र की गति स्तंम्भित हो गयी है प्रतिक्षण अभ्र में चंचला पुंश्चली स्त्री की भांति नर्तन करती है और बगावली उड्डीयमाना होकर इतस्ततः भ्रमण कर रही है। मयूर आदि पक्षिगण प्रफुल्लचित्त से रव कर रहे हैं, और वैसे ही दादुरगण भी पंकाभिषेक कुकवियों की भांति कर्णवेधक ढक्का झंकारते भयानक शब्द करते हैं।"

२—जिसमें संस्कृत के शब्द थोड़े हैं, "सब विदेशी लोग घर फिर आये और व्यापारियों ने नौका लादना छोड़ दिया। पुल टूट गये, बांध खुल गये, पंक से पृथ्वी भर गयी, पहाड़ी नदियों ने अपने बल दिखाये। बहुत वृक्ष फूल समेत तोड़ गिराये, सर्प बिलों से बाहर निकले, महानदियों ने मर्यादा भंग कर दी और स्वतंत्रता स्त्रियों की भांति उमड़ चली।"

३—जो शुद्ध हिंदी है, "पर मेरे प्रियतम घर न आये, क्या उस देश में बरसात नहीं होती या किसी सौत के फंद में पड़ गये कि इधर की सुधि ही भूल गये, कहां तो वे प्यार की बातें कि एक साथ ऐसा भूल जाना कि चिट्ठी भी न भिजवाना? मैं कहां जाऊँ कैसी करूँ? मेरे तो कोई ऐसी मुहबोली सहेली भी नहीं है कि उससे दुखड़ा सुनाऊँ और इधर उधर की बातों से जी बहलाऊँ।"

४—जिसमें किसी भाषा की मिलावट का नाम नहीं है, "ऐसी तो अंधेरी रात उसमें तो अकेले रहना कोई हाल पूछने वाला भी नहीं है, रह २ कर जी घबड़ाता है कोई खबर लेने भी नहीं आता और न कोई इस विपत्ति में सहाय होकर जान बचाता।"

५—जिसमें फारसी शब्द विशेष हैं। "खुदा इस आफत से जी बचाये, प्यारे का मुँह जल्द दिखलाये कि जान में जान आये फिर वही ऐश की घड़ियां आयें, शबोरोज दिलवर की मुहब्बत रहे, रंजोगम दूर हो, दिल मसरूर हो।"

६—जिसमें अंग्रेजी शब्द हिंदी में ही मिल गए हैं।

"वहां हौसों में हजारों बक्स माल रक्खे हैं, कंपनियों के सैकड़ों बक्स कुली लोग इधर से उधर लिये फिरते हैं, लालटेन में गिलास चारों ओर बल रहे हैं, सड़क की लैन सीधी और चौड़ी है, रेलवे के स्टेशनों पर टिकट बट रहा है, ट्रेन को इंजन इधर से उधर खींच कर ले जा रहा है, कोई कोट पहने कोई बूट पहने कोई पिाकेट में नोट भरे है···डाक दौड़ती है बोट तैरते हैं, पादरी लोग गिरजों में क्रस्तानों को बैबिल सुनाते हैं, पंप में पानी दौड़ता है कंप में लंप रोशन हो रही है।"

भारतेंदु युग में भाषा पर पड़नेवाले विभिन्न प्रभावों एवं प्रवृत्तियों की बड़ी सुंदर व्यंजना कर रहे हैं। भाषा का स्वरूप किस प्रकार सक्रांति-काल से गुजर रहा था इसका एक ही स्थान पर निदर्शन मिल जाता है। फारसी और संस्कृत की कशमकश के बीच भारतेंदु-युग के लेखकों ने भषा का जो सजीव एवं चलता रूप विकसित किया उसके लिये जितना श्रेय इन लेखकों को दिया जाय थोड़ा है। इन उदाहरणों को प्रस्तुत करने के पश्चात् भारतेंदु ने जो अपनी संमति दी है वह ध्यान देने योग्य है—

"हम इस स्थान पर वाद नहीं किया चाहते कि कौन भाषा उत्तम है और कौन भाषा लिखनी चाहिए पर यदि कोई मुझसे अनुमति पूछे तो कहूँगा कि न० २ और न० ३ लिखने के योग्य है।"

भाषा-शैली के संबध में इससे स्पष्ट उत्तर और क्या हो सकता है, भारतेंदु न संस्कृत की तत्सम शब्दावली के समर्थक थे न फारसी के पक्ष में, इसी लिए वे ऐसी शैली को लिखने योग्य समझते हैं और दूसरों को यह बताते हैं जिसमें थोड़े संस्कृत शब्द हैं और जो शुद्ध हिंदी के हैं दूसरे शब्द में वे हिंदी के सरल नैसर्गिक और स्वाभाविक विकास के पक्षपाती हैं।

फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि आजकल के कतिपय लेखकों के समान वे शुद्धतावादी हैं। क्योंकि उसके लेख हिंदी, उर्दू-फारसी सभी के संमिश्रण हैं। यह बात अवश्य है कि उन्होंने इस सामश्रण में सम्यक् सतुलन का ध्यान अवश्य रक्खा है। इससे उनका पदविन्यास उनकी भाषा के विकास में सहायक ही हुआ है। जहाँ पर भाषाधिकार के प्रदर्शन का लाभ संवरण नहीं कर सके हैं वहाँ पर संस्कृत फारसी की तत्सम पदावली की भरमार से चमत्कार का आवश्यक आनंद तो जरूर मिलता है किंतु भाषा के प्रवाह में शिथिलता आ जाती है।

और कृत्रिमता दिखलाई पड़ती है। सामान्यतः एक ओर संस्कृत की सरल प्रचलित लोकप्रिय पदावली को अपनाया दूसरी ओर फारसी और अरबी की अभिव्यंजनपूर्ण लोकोक्तियों, मुहाविरों और पदसमूहों को स्थान दिया। इस प्रकार उन्होंने उसकी अभिव्यंजनशक्ति को बढ़ाया और हिंदी के शब्द-भांडार को समृद्ध बनाया। हिंदी भाषा तथा शैली संबंधित उनके मुख्य तथा मूल विचारों से अवगत हो जाने के पश्चात् भारतेंदु की शैली का परिचय वांछनीय है। शैली पर लिखने से पूर्व उनके व्यक्तित्व के संबंध में लिखना आवश्यक है। क्योंकि शैली का व्यक्तित्व से घनिष्ठ संबंध हुआ करता है। भारतेंदु की शैली के ऊपर दो चार उदाहरण दिए गए हैं उनसे भारतेंदु की लेखनक्षमता और उसकी विविधता का आभास मिल जाता है। फिर भी इतने से ही इन शैलियों के लेखक की अपूर्वता, अनेकरूपता तथा विविधता का पूरा पूरा चित्र सामने नहीं आता।

भारतेंदु पत्रकार, निबंधकार, नाटककार, उपाख्यानलेखक, आचार्य और कवि थे। राजनीति से उन्हें रुचि थी तथा वे इतिहासलेखक भी थे उनमें सामाजिक रीतिनीति, आचार विचार, व्यवहार आदि के अध्ययन और पर्यवेक्षण की अपूर्व शक्ति थी। समाजशास्त्री न होते हुए भी उन्हें सामाजिक गतिविधि का पूरा ज्ञान था। उनकी जानकारी काफी बढ़ी चढ़ी थी। उसे वे बढ़ाते भी रहते थे और विनोदप्रिय होते हुए भी समाज के प्रति गंभीर सहानुभूति थी। संक्षेप में वे यदि सभी कुछ नहीं थे तब भी बहुत कुछ थे। उस युग की जटिल परिस्थिति में भारतेंदु हरिश्चंद्र जैसा सुरुचिपूर्ण और संपन्न व्यक्तित्व ही भाषा-शैली के जटिल प्रश्न को सुलझा कर पथ-प्रदर्शन कर सकता था।

समय और परिस्थितियों की माँग को पूरा करते हुए भारतेंदु की लेखनी ने अनेक प्रकार की शैलियों को जन्म दिया। इन विविधात्मक शैलियों के पदविन्यास का अध्ययन लेखनसंबंधी चातुरी और प्रभाव के रहस्य का उद्घाटन करता है। पत्रकार की हैसियत से उन्हें जनता के शिक्षण, मनोरंजन और जागरण लिए सामाजिक विषयों पर लेख, टिप्पणियाँ और संपादकीय लिखने पड़ते थे। ये विषय रोज बदलते रहते थे और उन्हें इतना अवकाश न था कि कलाकार इनको सजा सँवार सके। नित्यप्रति की समस्याओं से उलझते हुए इन लेखों ने हिंदी भाषा की व्यावहारिक शैली को विकसित किया जिसका उद्देश्य था सीधी सीधी भाषा में पाठक को वस्तुस्थिति का ज्ञान कराना।

भारतेंदु-युग के पत्रों ने इस प्रकार की व्यावहारिक भाषा को जन्म दिया। आगे चलकर इसी व्यावहारिक भाषा को स्वर्गीय महावीरप्रसाद द्विवेदी ने टकसाली रूप प्रदान किया। भारतेंदु की इस व्यावहारिक शैली की भाषा भावुकता और

आवेश से युक्त और अत्यंत संयमित है। इस शैली में जो कुछ भी कहा गया है वह अत्यंत नपे तुले शब्दों में कहा गया है। इस शैली में हम उन लेखों को भी ले सकते हैं जिनका उद्देश्य सूचना, शिक्षा या ज्ञानवर्धन है, जैसे संगीतशास्त्र, इसको हम सूचनात्मक और शिक्षात्मक शैली भी कह सकते हैं। वाक्य छोटे छोटे और विश्लेषणात्मक हैं।

पत्रों में ऐसे भी विषय होते थे जो उनके हृदय से स्पंदित होते थे, जिनका संबंधसूत्र उनके प्रेम से जुड़ा रहता था। इन लेखों में भारतेंदु का आवेश और उनकी भावुकता झलकती है। भाव कोमल, भाषा भावानुगामिनी, अत्यंत कवित्वपूर्ण और मर्मस्पर्शिणी है, शब्दचयन प्रचलित परिचित और लोकप्रिय तथा मुहाविरेदार। हिंदी का अपना रूप उनका आवेश या प्रलाप शैली को देखने से मिलता है।

भारतेंदु भावुक होते हुए भी विनोदप्रिय और व्यंगप्रिय थे। मौका आने पर चुटकियाँ लेने में बाज नहीं आते थे। ये चुटकियाँ अपने दूसरे सभी पर होती थीं। व्यक्ति, समाज, नई रोशनी के अधकचरे नवयुक, प्राचीनतावादी, अंग्रेज अफसर, सरकार, सभी उनकी चुटकियों के शिकार थे। व्यंग करारे होते थे और लोग उनकी चुटकियों से तिलमिला उठते थे। व्यंग शैली की यह भाषा पंचमेल है, पर चलती हुई है। हिंदी अंग्रेजी फारसी सभी के उछलते हुए छींटे चल रहे हैं। भाषा चलती हुई है और सजीव हैं। शब्दचयन हास्योद्रेक को ध्यान में रखकर किया गया है। शब्दों का क्रीड़ा-कौतुक, बाजीगरी आदि की छटा इनके व्यंग के लेखों में पढ़ने को मिल सकती है। वे एक ओर जहां समाज का संस्कार कर रहे हैं वहाँ भाषा के संस्कार में भी योग दे रहे हैं।

इस प्रकार की शैली उनके यात्रा या भ्रमणसंबंधी लेखों में मिलती है। इन लेखों में जहाँ उनकी पर्यवेक्षण शक्ति का पता लगता है वहाँ उनके फक्कड़पन, सजीवता एवं जिंदादिली का भी पता लगता है। ये लेख स्वच्छंद शैली में लिखे गए हैं। एक ओर लेखक का हृदय स्वच्छंद विचरण कर रहा है दूसरी ओर भाषा बंधनरहित और मुक्त है। हृदय और भाषा का तादात्म्य देखने को मिल सकता है। मन की मौज के अनुरूप कहीं कहीं छोटे सरल सरस वाक्यखंड, कहीं कहीं लंबी बंदिशें, उपमा-रूपक की छटा, कहीं अलंकरण का प्रदर्शन और कहीं मुहाविरों, लोकोक्तियों, चुटकुलों आदि का चमत्कार ! इनमें संस्कृत की माधुरी, हिंदी की मिठास, उर्दू फारसी की चाशनी है। निबंध-लेखन की दृष्टि से भारतेंदु के ये स्वच्छंद शैली के लेख सबसे अधिक सफल माने जाएँगे।

वस्तुप्रधान और विचारप्रधान लेखों के अरिरिक्त भारतेंदु के कुछ निबंध ऐसे भी हैं जिन्हें वातावरणप्रधान कहा जा सकता है। इन लेखों का उद्देश्य

वातावरण का चित्रण है। वातावरण के अनुसार इनकी शैली गंभीर संयत या चलती हुई है।

भारतेंदु के कुछ लेख ऐसे भी हैं जिनके लिए कहा जा सकता है कि उनका उद्देश्य लेखक के भाषाधिकार का प्रदर्शन है। इन लेखों का शब्दचयन तत्सम पदावली से भाराक्रांत है और उसमें कृत्रिमता कूट-कूट कर भरी है। उनसे पाठक चाहे चमत्कृत भले ही हो जायँ किंतु वे उनको पढ़कर हँसे बिना नहीं रह सकते। उदय-पुरोदय में संस्कृत की पदावली का आधिक्य है और खुशी में फारसी के क्लिष्ट शब्द कूट-कूट कर भरे हैं।

भारतेंदु की भाषा-शैली का जो वर्गीकरण ऊपर किया गया है वह अत्यंत संक्षिप्त और अपूर्ण है। जो कोटियाँ निर्धारित की गई हैं वे भी निश्चित एवं स्थिर नहीं हैं। प्रत्युत्पन्नमति आलोचक और विचारक इनके और भी सूक्ष्म, वैज्ञानिक, विश्लेषण और वर्गीकरण प्रस्तुत कर सकते हैं। फिर भी इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र अत्यंत सफल और सरस हृदय कवि थे और वे कविमर्मज्ञ भी थे। वे हृदय और भाषा दोनों के पारखी थे। वे शब्दों की आत्मा पहचानते थे। इसी से उनका शब्दचयन क्या काव्य क्या गद्य सभी जगह अत्यंत मार्मिक और सफल हुआ है और वह अशक्तता, जटिलता, दुरूहता, अस्पष्टता और शिथिलता से कोसों दूर है। वस्तुस्थिति और कल्पना दोनों का उसमें योग था। इसी से उन्होंने इस देश की प्राचीन शब्दसंपत्ति संस्कृत को हिंदी का आधार बनाया। हिंदी की स्वाभाविक मिठास को विकसित किया और उर्दू फारसी के सक्षम शब्दों को अपनाए रखा। ऐसा केवल भारतेंदु ने ही किया हो यह बात नहीं; भारतेंदु-युग के किसी प्रमुख लेखक ने उर्दू की मुहाविरेदार पदावली का बहिष्कार नहीं किया। इस प्रकार भाषा-शैली का चलतापन, सरलता और उसकी सरसता पूरे भारतेंदु-युग की विशिष्टता बन गई। भारतेंदु इस युग के निर्माता और पथप्रदर्शक हैं। इसी-लिये इसका बहुत कुछ श्रेय उनको है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इस प्रकार अपने युग की भाषा-शली की विषम समस्या को अपने ढंग से सुलझाकर हिंदी के विकास के मार्ग को प्रशस्त किया। उनका और उनके युग का यही संदेश है कि भाषा-शैली का निखार उसके सरल स्वाभाविक विकास में है, उसकी सजीवता में, उसके चलतेपन में है, उसकी मुहाविरेदानी और संयत प्रयोगों में है। तत्सम पदावली का अतिरेक चाहे लेखक की विद्वत्ता की धाक जमा दे किंतु वह भाषा के विकास में कदापि सहायक नहीं हो सकता। भारतेंदु की भाषा-शैली आज के लेखकों को बहुत कुछ सिखा सकती है।

—केसरीनारायण शुक्ल

भारतेंदु के निबंध

पुरातत्त्व

[भारतेंदु के पास पुरातत्त्व-संबंधी सामग्री का बड़ा अच्छा संग्रह था। 'पुरातत्त्व-संग्रह' में उन्होंने बहुत से शिलालेख और दानपत्रादि की प्रतिलिपि दी है। प्रस्तुत निबंध इसी संग्रह से चुने गए हैं।

'रामायण का समय' सांस्कृतिक महत्ता का लेख है। इसमें लेखक ने तत्कालीन प्रचलित जीवन का चित्र अंकित किया है।

'अकबर और औरंगज़ेब' में इन दो शासकों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। लेखक ने अपने विचारों की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए युक्तियाँ दी हैं। जसवंतसिंह के पत्र के उद्धरण से इस लेख की मनोरंजता और भी बढ़ जाती है।

'मणिकर्णिका' और 'काशी' में इन दोनों के ऐतिहासिक विकास की कथा कही गई है। इसमें भक्तों की श्रद्धालु दृष्टि न रखकर विवेचकों की आलोचनात्मक दृष्टि से काम लिया गया है।]

रामायण का समय।

(रामायण बनने के समय की कौन कौन बातें विचार करने के योग्य हैं)

पुराने समय की बातों को जब सोचिये और विचार कीजिये तो उनका ठीक-ठीक पता एक ही बेर नहीं लगता, जितने नये-नये ग्रन्थ देखते जाइये उतनी ही नई नई बातें प्रकट होती जाती हैं। इस विद्या के विषय में बुद्धिमानों के आज कल दो मत हैं। एक तो वह जो बिना अच्छी तरह सोचे विचारे, पुराने अंग्रेज़ी विद्वानों की चाल पर चलते हैं और उसी के अनुसार लिखते पढ़ते भी हैं और दूसरे वे लोग जिन को किसी बात का हठ नहीं है, जो बातें नई जाहिर होती गईं उन को मानते गये। दूसरा मत बहुत दुरुस्त और ठीक तो है, पर पहिला मत माननेवालों को ऐंटिक्वेरियन (Antiquarian) बनने का बड़ा सुभीता रहता है। दो चार ऐसी बंधी बातें हैं जिन्हें कहने ही से वे ऐंटिक्वेरियन हो जाते हैं। जो मूर्त्तियाँ मिलैं वह जैनों की हैं, हिन्दू लोग तातार से वा और कहीं पच्छिम से आये होंगे। आगे यहां मूर्त्तिपूजा नहीं होती थी, इत्यादि, कई बातें बहुत मामूली हैं, जिन के कहने ही से आदमी ऐंटिक्वेरियन हो सकता है। जो कुछ हो, इस बात को लेकर हम हुज्जत नहीं करते, हम सिर्फ़ यहां वाल्मीकीय रामायण में से ऐसी थोड़ी सी बातें चुन कर दिखाते हैं जो बहुत से विद्वानों की जानकारी में आज तक नहीं आई हैं।

रामायण बनने का समय बहुत पुराना है, यह सब मानते हैं। इस से उस में जो बातें मिलती हैं वे उस जमाने में हिन्दुस्तान में बरती जाती थीं, यह निश्चय हुआ। इससे यहां वे ही बातें दिखाई जाती हैं जो वास्तव में पुरानी हैं पर अब तक नई मानी जाती हैं और विदेशी लोग जिन को अपनी कह कर अभिमान करते हैं।

रामायण कैसा सुन्दर ग्रन्थ है और इस की कविता कैसी सहज और मीठी है। इस से जिन लोगों ने इसकी सैर की है वे अच्छी तरह जानते हैं, कहने की आवश्यकता नहीं। और इस में धर्म्मनीति कैसी अच्छी चाल पर कही है, यह भी सब पर प्रकट ही है। इस से हम यहां पर और बातों को छोड़ कर केवल वही बातें दिखाना चाहते हैं जो प्राचीन विद्या (ऐंटीक्वेटी) से सम्बन्ध रखती हैं।

बालकाण्ड—अयोध्या के वर्णन में किले की छत पर यंत्र रखना लिखा है। यंत्र का अर्थ कल है* इस से यह स्पष्ट होता है कि उस जमाने में किले

---

* यन्त्र उसको कहते हैं जिससे कुछ चलाया जाय। श्रीगीता जी में लिखा है

की बचावट के हेतु किसी तरह की कल अवश्य काम में लाई जाती थी, चाहे वे तोप हों या और किसी तरह की चीज़ (या यंत्र से दूरबीन मतलब हो)।

शतघ्नी* यह उस चीज़ को कहते हैं जिस से सैकड़ों आदमी एक साथ मारे जा सकें। कोषों में इस शब्द के अर्थ यह दिए हैं कि शतघ्नी उस प्रकार की कल का नाम है जिससे पत्थर और लोहे के टुकड़े छूट कर बहुत से आदमियों के प्राण लेते हैं और इसी का दूसरा नाम वृश्चिकाली है। (सर राजा राधाकान्त देव का शब्दकल्पद्रुम देखो।) इस से मालूम होता है कि उस समय में तोप या ठीक उसी प्रकार का कोई दूसरा शस्त्र अवश्य था।

अयोध्या के वर्णन में उस की गलियों में जैन फ़कीरों का फिरना लिखा है, इस से प्रकट है कि रामायण के बनने से पहिले जैनियों का मत था।

"ईश्वरः सर्व्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्व्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया"। ईश्वर प्राणियों के हृदय में रहता है और वह भूत मात्र को जो (मानो) कल पर बैठे हैं माया से घुमाता है। तो इस से स्पष्ट प्रकट होता है कि यन्त्र से इस श्लोक में किसी ऐसी चीज़ से मतलब है जो चरखे की तरह घूमती जाय। कल शब्द भी हिन्दी है "कल गतौ" से बना हो वा "कल प्रेरणे" से निकला होगा (कवि कल्पद्रुम कोष देखो) दोनों अर्थ से उस चीज़ को कहैंगे जो आप चलै वा दूसरे को चलावै।

* शतघ्नी को यन्त्र करके लिखा है। शतघ्नी कौन चीज़ है इस का निश्चय नहीं होता। तीन चीज़ में इस का सन्देह हो सकता है, एक तोप, दूसरे मतवाले— तीसरे जम्हीरे में। इस के वर्णन में जो २ लक्षण लिखे हैं उन से तोप का तो ठीक सन्देह होता है, पर यह मुझे अब तक कहीं नहीं मिला कि ये शतघ्नियाँ आग के बल से चलाई जाती थीं, इसी से उन के तोप होने में कुछ सन्देह हो सकता है। मतवाले से शतघ्नी के लक्षण कुछ नहीं मिलतें, क्योंकि मतवाले तो पहाड़ों वा किलों पर से कोल्हू की तरह लुड़काये जाते हैं और इसके लक्षणों से मालूम होता है कि शतघ्नी वह वस्तु है जिस से पत्थर छूटैं। जहमीरा वा जम्हीरा एक चीज़ है, उस से पत्थर छुट छुट कर दुश्मन की जान लेते हैं (हिन्दुस्तान की तवारीख में मुहम्मद कासिम की लड़ाई देखो) इससे शतघ्नी के लक्षण बहुत मिलते हैं। पर रामायण में लिखा है कि लोहे की शतघ्नी होती थीं और फिर सुंदरकाण्ड में टूटे हुए वृक्षों की उपमा शतघ्नी की दी है। इस से फिर सन्देह होता है कि हो न हो यह तोप ही हो। रामायण के सिवा और पुराणों में भी किले पर शतघ्नी लगाना लिखा है। (मत्स्यपुराण में राजधर्म्म वर्णन में) दुर्गे यन्त्राः प्रकर्त्तव्याः नाना प्रहरणान्विताः। सहस्रघातिनो राजंस्तैस्तु रक्षा विधीयते ॥१॥

जिस समय राजा दशरथ ने अश्वमेध यज्ञ किया उस समय का वर्णन है कि रानी कौशिल्या ने अपने हाथ से घोड़े को तलवार से काटा। इस बात से प्रगट होता है कि आगे की स्त्रियों को इतनी शिक्षा दी जाती थी कि वह शस्त्रविद्या में भी अति निपुणता रखती थीं।

अभी एशियाटिक सोसाइटी के जरनल में पंडित प्राणनाथ एम० ए० ने इस का खण्डन किया है कि बराहमिहर के काल में श्रीकृष्ण की पूजा ईश्वर समझ के नहीं करते थे और बराहमिहर के श्लोकों ही से श्रीकृष्ण की पूजा और देवतापन का सबूत भी दिया है। और भी बहुत से विद्वान इस बात में झगड़ा करते हैं। और योरोप के विद्वानों में बहुतों का यह मत है कि श्रीकृष्ण की पूजा चले थोड़े ही दिन हुए, पर ४० सर्ग के दूसरे श्लोक में नारायण के वास्ते दूसरा शब्द वासुदेव लिखा है और फिर पचीसवें श्लोक में कपिलदेव जी को वासुदेव का अवतार लिखा है; इस से स्पष्ट प्रगट है कि उस काल से श्रीकृष्ण को लोक नारायण कर के जानते और मानते हैं *।

अयोध्याकाण्ड—२०वें सर्ग के २६ श्लोक में रानी कैकेयी ने राम जी को बन जाते समय आज्ञा दिया कि मुनियों की तरह तुम भी मांस न खाना, केवल कंद मूल पर अपनी गुजरान करना इस से प्रगट है कि उस समय मुनि लोग मांस नहीं खाते थे।†

३०वें सर्ग के २६ श्लोक में गोलोक का वर्णन है। प्रायः नये विद्वानों का मत है कि गोलोक इत्यादि पुराणों के बनने के समय के पीछे निकाले गए हैं और इसी से सब पुराणों में इन का वर्णन नहीं मिलता। किन्तु इस वर्णन से यह बात बहुत स्पष्ट हो गई कि गोलोक का होना हिन्दू लोग उस काल से मानते हैं जब कि रामायण बनी।‡

दुर्गञ्च परिखोपेतं वप्राट्टालसंयुतं। शतघ्नीयन्त्रमुख्यैश्च शतशश्च समावृतं ॥२॥

इस में ऊपर के श्लोक में शतघ्नी के बदले सहस्रघाती शब्द है (यहां शत और सहस्र शब्दों से मुराद अनगिनत से है)। तोप की भांति सुरंग उड़ाना भी यहां के लोग अति प्राचीन काल से जानते हैं। आदि पर्व का ३७८ श्लोक देखो। सुरंग शब्द ही भारत में लिखा है।

* भारत के भी आदि पर्व का २४७ से २५३ श्लोक तक और २४२७ से २४३२ श्लोक तक देखो। श्रीकृष्ण को परब्रह्म लिखा है। और भी भारत में सभी स्थानों में हैं उदाहरण के हेतु एक पर्व मात्र लिखा।

† यहां मांस से बिना यज्ञ के मांस से मुराद होगी।

‡ वेद में ब्रह्म के धाम के वर्णन में लिखा है कि वहां अनेक सींगों की गऊ हैं।

३२वें सर्ग में तैत्तिरीय शाखा और कठकालाप शाखा का नाम है। इस से प्रगट होता है कि वेद उस काल तक बहुत से हिस्सों में बँट चुके थे।

रामजी के बन जाने की राह इस तरह बयान की गई है। अयोध्या से चल कर तमसा अर्थात् टोंस नदी के पार उतरे। फिर वेदश्रुति*, गोमती, स्यन्दिका† और गंगा पार होते हुए प्रयाग आये। और वहां से चित्रकूट (जो कि रामायण के अनुसार १० कोस है)‡ गए। यह बिल्कुल सफर उन्हों ने पांच दिन में किया। और सुमन्त उन को पहुंचा कर शृंगवेरपुर अर्थात् सिंगरामऊ से दो दिन में अयोध्या पहुंचा। पहली बात से प्रकट हुआ कि पुराने जमाने के कोस बड़े होते थे। और दूसरी बात से विदित हुआ कि सड़क उस समय में भी बनाई जाती थी, नहीं तो इतनी दूर की यात्रा का पांच दिन में तै करना कठिन था।

भरत जी जब अपने नाना के पास से, जो कि कैकेय अर्थात् गक्कर देश का राजा था, आने लगे तो उस ने कई बहुत बड़े और बलवान कुत्ते दिये और तेज़ दौड़नेवाले गदहों (खच्चर) के रथ पर उन को बिदा किया। वे सिन्धु और पंजाब होते हुए इक्षुमती को पार कर अयोध्या आये। इस से दो बात प्रकट हुई; एक तो यह कि उस काल में कैकेय देश में गदहे और कुत्ते अच्छे होते थे, दूसरे यह कि वहां की हिन्दुस्तान से राह सिन्धु देकर थी।

७७वें सर्ग में मूर्त्तियों का वर्णन है, इस से दयानन्द सरस्वती इत्यादि का यह कहना कि रामायण में कहीं मूर्त्तिपूजन का नाम नहीं है अप्रमाण होता है।

इसी स्थान में निषाद का लड़ाई की नौकाओं के तैयार करने का वर्णन है, जिस से यह बात प्रमाणित होती है कि उस काल के लोग स्थल की भांति पानी पर भी लड़ सकते थे।

दक्षिण के लोगों की सिर में फूल गूंधने की बड़ी प्रशंसा लिखी है। इस से यह बात झलकती है कि उत्तर के देश में फूल गूंधने का विशेष रिवाज नहीं था।

* वेदसा नाम की एक छोटी नदी गोमती में मिलती है, शायद उसी का नाम वेदश्रुति लिखा है।

† जिस को अब सई कहते हैं।

‡ यह बड़े सन्देह की बात है कि अब जो चित्रकूट माना जाता है वह प्रयाग से तीन चार मंजिल है पर यहां दस कोस लिखा है। इस दस कोस से यह आशय है कि वहां से उस पर्वत की श्रेणी (लाइन) आरम्भ होती है, पर जहां डेरा किया था वह स्थान दूर होगा।

१०८ सर्ग में जावालि मुनि ने चार्वाक का मत वर्णन किया है। और फिर १०९ सर्ग में बुध का नाम और उन के मत का वर्णन है। इस से प्रकट है कि ये दोनों वेद के विरुद्ध मत उस समय में भी हिन्दुस्तान में फैले हुए थे। अभी हम ऊपर बालकाण्ड में जैनियों के उस काल में रहने का जिक्र कर चुके हैं तो अब ये सब बातें रामायण के बनने के समय, बुध के जन्म का और बौद्ध और जैन मत अलग होने के समय की विवेचना में कितनी हलचल डालेंगी, प्रगट है।

आरण्यकाण्ड—चौथे सर्ग के २२ श्लोक में लिखा है कि असुरों की यह पुरानी चाल है कि वे अपने मुर्दे गाड़ते हैं। इस से प्रगट है कि वेद के विरुद्ध मत माननेवालों में यह रीति सदा से चली आती है।

किष्किन्धाकाण्ड—१३वें सर्ग के १६ श्लोक में कलम अर्थात् जोंधरी के खेत का बयान है, और कोष में "लेखनी कलम इत्यपि" लिखा है इस वाक्य से प्रगट होता है कि क़लम लिखने की चीज़ का नाम संस्कृत में भी है और वह और चीज़ों के साथ जोंधरी का भी होता था; और इसी से यह भी साफ़ हो जाता है कि सिवा ताड़ के पत्र के काग़ज़ पर भी आगे के लोग लिखते थे, क्योंकि ताड़ पर मिटने के डर से सिर्फ़ लोहे की क़लम से लिखा जा सकता है जैसा कि अब तक बंगाले और ओड़ीसे में रिवाज है।*

६२ वें सर्ग के ३ श्लोक में पुराणों का वर्णन है, जिस से नई तबियत और नई तलाश (लाइट) के लोगों का यह कहना कि पुराण सब बहुत नए हैं कहां तक ठीक है आप लोगों पर आप से आप विदित होगा।

इस कांड में और बातों की भांति यह भी ध्यान करने के योग्य है कि रामजी ने बालि से मनु के २ श्लोक कहे हैं और यह भी कहा है कि मनु भी इसको प्रमाण मानते हैं। इस से प्रगट हुआ कि मनु की संहिता उस काल में भी बड़ी प्रामाणिक और प्रतिष्ठित समझी जाती थी।†

सुन्दरकाण्ड—तीसरे सर्ग के १८ श्लोक में क़िले के शस्त्रालय (सिलहगाह) के वर्णन में लिखा है कि जिस तरह से स्त्री गहनों से सजी रहती है वैसे ही बुर्ज यंत्रों से सजे हुए थे। इस से स्पष्ट प्रगट होता है कि तोप या और किसी प्रकार का ऐसा हथियार जिससे कि दूर से गोले की भांति कोई वस्तु छूट कर जान लें, उस समय में अवश्य था।

* इस विषय के लिये "सज्जनबिलास" देखो।

† भारत में भी कई स्थान पर मनु का नाम है। उदाहरण के हेतु आदि पर्व का १७२२ श्लोक देखो।

चौथे सर्ग के १८ श्लोक में फिर क़िले पर शतघ्नी रखने का वर्णन है।

५वें सर्ग के पहिले श्लोक में लिखा है कि चन्द्रमा सूर्य्य के प्रकाश से चमकता है। इस से स्पष्ट प्रकट होता है कि उस समय में ज्योतिषविद्या की बड़ी उन्नति थी।

९वें सर्ग के १३ श्लोक में लिखा है कि पुष्पक-विमान के चारों ओर सोने के हुंडार बने थे और खाने पीने की सब वस्तु उस में रक्खी रहा करती थीं और वह बहुत से लोगों को बिठला कर एक स्थान से दूसरी स्थान पर ले जाता था। इस से सोचा जाता है कि यह विमान निस्सन्देह कोई बेलून की भांति की वस्तु होगी। और हुंडार उस में पहचान के हेतु लगाये गये होंगे।

९वें सर्ग के २५ और २६ श्लोकों में वर्णन है कि लंका में जो गलीचे बिछे थे उनमें घर, नदी, जंगल इत्यादि बुने हुए थे। अब यदि विलायत का कोई ग़लीचा आता है, जिस में मकान, उद्यान इत्यादि बने रहते हैं तो देख कर हम लोग कैसा आश्चर्य्य करते हैं। कैसे सोच की बात है कि हम लोग नहीं जानते कि हमारे हिन्दुस्तान में भी इस प्रकार की चीज़ें पहिले बनती थीं। यहीं पर जब हनुमान जी ने रावण के मन्दिरों को जा कर देखा है तो उस में भोजन के अनेक प्रकार के धातुओं के मणियों के और कांच के पात्रों को भी देखा है। चिमचा कांटा आदि भी उस समय होता था और बड़ी शोभा से खाना बुना जाता था। और भी अंगरेजी चाल के पात्र और गहने भुवनेश्वर के मन्दिर में भी बहुत प्राचीन काल के बने हैं। बाबू राजेन्द्रलाल मित्र का उड़ीसा प्रथम भाग देखो।

इसी स्थान में अशोक बन में जानकी जी के शिंशिपा के दरख्त के नीचे रहने का वर्णन है।

हिन्दुस्तान के बहुत से पण्डितों का निश्चय है कि शिंशिपा शीशम वृक्ष को कहते हैं। किन्तु हमारी बुद्धि में शिंशिपा सीताफल अर्थात् शरीफ़े के वृक्ष को कहते हैं। इस के दो बड़े भारी सबूत हैं। प्रथम तो यह कि यदि जानकी जी से शरीफ़े से कुछ संबंध नहीं तो सारा हिन्दुस्तान उसको सीताफल क्यों कहता है। दूसरे यह कि महाभारत के आदि पर्व में राजा जन्मेजय की सर्पयज्ञ की कथा में एक श्लोक है जिसका अर्थ यह है कि आस्तीक की दोहाई सुन कर जो सांप न हट जायगा उसका सिर शिंश वृक्ष के फल की तरह सौ टुकड़े हो जायगा * शिंश

* आस्तीकवचनं श्रुत्वा यः सर्प्पो न निवर्त्तते
शतधा भिद्यते मूर्धा शिंशिवृक्षफलं यथा॥

और शिंशपा दोनों एक ही वृक्ष के नाम हैं यह कोषों से और नामों के सम्बन्ध से स्पष्ट है। शीशम के वृक्ष में ऐसा कोई फल नहीं होता जिस में कि बहुत से टुकड़े हों। और शरीफ़े का फल ठीक ऐसा ही होता है जैसा कि श्लोक में लिखा है। इससे लोग निश्चय करैं कि सीता जी शरीफ़े ही के वृक्ष के नीचे थीं।

१८वें सर्ग के १२ श्लोक में गुलाब पाश का वर्णन है। इसलिए हमारे भाई लोग यह न समझैं कि यह निधि हम को मुसल्मानों से मिली है, यह हिन्दुस्तान ही की पुरानी वस्तु है।

३०वें सर्ग के १८ श्लोक में लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य प्रायः संस्कृत बोलते थे, किन्तु जब छोटे लोगों से बात करते थे तो ये संस्कृत से नीच भाषा में बोलते थे। इस से बहुत लोगों का यह कहना कि संस्कृत कभी बोली ही नहीं जाती थी खंडित होता है। हाँ, इस में कोई सन्देह नहीं, सब इस को काम में नहीं लाते थे।

६४वें सर्ग के २४ श्लोक में लिखा है कि हनुमान जी राक्षसों के सिर इस तरह से तोड़ २ कर फेकते थे जैसे यंत्र से ढेले छूटैं इस से ऊपर जहां हम यंत्रों का वर्णन कर आए हैं उससे लोग समझैं कि वह निस्सन्देह कोई ऐसी वस्तु थी जिस से गोली या कंकड़ पत्थर छोड़े जाते थे।

लंकाकाण्ड—(३ सर्ग १२ श्लोक) (३ सर्ग १३ श्लोक) (३ सर्ग १६ श्लोक) (३ सर्ग १७ श्लोक) (४ सर्ग २३ श्लोक) (२१ सर्ग श्लोक अन्त का) (३६ सर्ग २६ श्लोक) (६० सर्ग ५४ श्लोक) (६१ सर्ग ३२ श्लोक) (७६ सर्ग ६८ श्लोक) (८६ सर्ग २२ श्लोक) इन श्लोकों में यंत्र और शतघ्नी का वर्णन है।

यन्त्र और शतघ्नी ये रामायण में किस २ प्रकार से वर्णन की गई हैं यह ऊपर के श्लोकों के देखने से प्रगट होगा। इन दोनों के विषय में हमें कुछ विशेष कहना नहीं है, क्योंकि हमारे पाठकों पर आप से आप यह प्रगट होगा कि यंत्र और शतघ्नी का कोई रूप रामायण से हम ठीक नहीं कर सकते।

पत्थर ढोने की कल किसी चाल की बाल्मीकि जी के समय में अवश्य रही होगी। और किवाड़ भी किसी चाल की कल से बंद किये जाते होंगे।

यंत्र बहुत ऊँचे २ भी होते थे, जैसा कि कुम्भकर्ण की उपमा में कहा गया है। शतघ्नी फ़ौलाद की बनती थी और वृक्षों की तरह लम्बी होती थी और केवल क़िले ही पर नहीं रहती थी, परन्तु लड़ाई में भी लाई जाती थी। इन

बातों से हमारा यह कहना तो ठीक ज्ञात होता है कि आगे कल* अवश्य थी पर शतघ्नी किस चाल का हथियार था यह हम नहीं कह सकते। †

११५ सर्ग ४२ श्लोक में राजा भोज के बेटे के नाम से जो सिंह और रीछ की कहानी प्रसिद्ध है वह ठीक २ यहां कही गई है।

(१५ सर्ग २७ श्लोक) राम जी से ब्रह्मा ने कहा है कि सीता लक्ष्मी हैं और आप कृष्ण हैं। (इस से हमारा वासुदेव शब्द वाला पहिला प्रमाण और भी दृढ़ होता है)। ‡

(१२६ सर्ग ३ श्लोक) पुराणों का वर्णन है।

(१३० सर्ग) जब राजा लोग राज पर बैठते थे तब नज़र खिलअत इत्यादि आगे भी ली और दी जाती थीं। इसी सर्ग में लिखा है कि रामायण बाल्मीकि जी ने जो पहिले से बनाया है वह जो सुनता है सो सब पापों से छूट जाता है। इसमें (पुराकृतं) पद से जैसे मनु का शास्त्र भृगु ने एकत्र किया वैसे ही बाल्मीकि जी की कविता भी किसी ने एकत्र किया है यह संदेह होता है। इसी सर्ग के १२० श्लोक में लिखा है कि जो रामायण लिखते हैं उनको भी पुण्य होता है। इस से उस काल में पोथियां लिखी जाती थीं, यह भी स्पष्ट है।

उत्तरकाण्ड—उत्तरकाण्ड में बहुत सी बातें अपूर्व और कहने सुनने के योग्य हैं, पर अंगरेज़ विद्वानों ने उस के बनने का काल रामायण से पीछे माना है, इस से हमारा उन बातों के लिखने का उत्साह जाता रहा तब भी जो बातें विशेष दृष्टि देने के योग्य हैं यहां लिखी जाती हैं।

* महाभारत की टीका में युद्ध में नीलकंठ चतुर्धर ने यंत्र का अर्थ अग्नि यंत्र लिखा है, पर राजा राधाकान्त ने अग्नियंत्र और अग्न्यस्त्र इन दोनों शब्दों का अर्थ बन्दूक किया है ("कामान बन्दूक इति भाषा") और दारुयंत्र का अर्थ कल लिखा है। महाभारत में एक जगह और लिखा है "यंत्रस्य गुणदोषौ न विचार्य्यौ मधुसूदन। अहं यंत्रो भवान् यंत्री न मे दोषो न मे गुणः"।

† विजयरक्षित ग्रन्थ में लिखा है "अयः कंटकसंछन्ना शतघ्नी महती शिला" अर्थात् लोहे के कांटों से छिपाई हुई शिला का नाम शतघ्नी है। मेदिनीकोष में करंज भी इस का नाम है।

‡ पाणिनि के सूत्रों में भी वासुदेव आदि शब्द मिले हैं। इस विषय का विस्तार हमारे प्रबन्ध वैष्णवता और भारतवर्ष में देखो।

(४४ सर्ग श्लोक ४२।४३) रावण शिव जी की पूजा करता था * इस से दयानन्द स्वामी का यह कहना कि रामायण में मूर्तिपूजा नहीं है खंडित होता है। हाँ, यदि वे भी यह कह दें कि यह कांड क्षेपक है या नया बना है तो इस का उत्तर नहीं।

(५३ सर्ग श्लोक २०,२१,२२) श्रीकृष्णावतार का वर्णन है † विदित हो कि तीसरे सर्ग के १२ श्लोक में भी एक जगह विष्णु का नाम गोविन्द कहा है "गोविन्दकरनिस्सृता" और गोविन्द श्रीकृष्ण का नाम तब पड़ा है जब गोबर्द्धन उठाया है, यह विष्णुपुराणादिक से सिद्ध है, यथा "गोविन्द इति चाभ्यधात्" तो इससे भी हमारी बालकांड वाली युक्ति सिद्ध हुई।

(६४ सर्ग श्लोक ८) छन्दोविदः पुराणज्ञान इस वाक्य में पुराणों का वर्णन किया है। पुराणज्ञैश्च महात्मभिः इत्यादि वाक्यों में और भी कई स्थानों पर पुराणों का वर्णन है और पुराणों की अनेक कथा भी इस काण्ड में मिलती हैं। इस से यह निश्चय होता है कि उत्तरकाण्ड के बनने के पहले पुराण सब बन चुके थे।

पुराणों के विषय की बहुत सी शंकाएं काल क्रम से मिट गईं। जिन पुराणों को विलायती विद्वानों ने चार पांच सौ बरस का बना बतलाया था उनकी सात सात सौ बरस की प्राचीन पुस्तकें मिलीं। लोग भागवत ही को बोपदेव का बनाया कहते थे, किन्तु चन्द के रायसे में भागवत का वर्णन मिलने से और प्राचीन पुस्तकों से यह सब बातें खंडित हो गईं।

उत्तरकाण्ड से मालूम होता है कि अयोध्या, काशी और प्रयाग ये तीनों राज्य उस समय अलग थे और उस समय हिन्दुस्तान में तीन सौ राज्य अलग २ थे।

इसी काण्ड के चौरानबे सर्ग में यह लिखा है कि उत्तरकाण्ड भार्गव ऋषि ने बनाया है। यह भी एक आश्चर्य्य की बात है। इस वाक्य से तो अंगरेज़ी विद्वानों का सन्देह सिद्ध होता है।

*यत्र यत्र स्म यातीह रावणो राक्षसेश्वरः जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते॥४२॥
वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः अर्चयमास गन्धैश्च पुष्पैश्चामृतगन्धिभिः॥४३॥

† उत्पत्स्यते हि लोकेऽस्मिन् यदूनां कीर्तिवर्द्धनः।
वासुदेव इति ख्यातो विष्णुः पुरुषविग्रहः ॥२०॥
सते मोक्षयिता शापात् राजंस्तस्माद्भविष्यसि।
कृता च तेन कालेन निष्कृतिस्ते भविष्यति ॥२१॥
भारावतरणार्थं हि नरनारायणावुभौ।
उत्पत्स्येते महावीर्यौ कलौ युग उपस्थिते ॥२२॥

अकबर और औरंगज़ेब।

मैं ने बादशाहदर्पण नामक अपने छोटे इतिहास में अकबर और औरंगज़ेब की बुद्धि और स्वभाव का तारतम्य दिखलाया है। अब पूर्वोक्त राजा साहब की अङ्गरेज़ी किताबों में सन् १७८२ से लेकर १८०२ तक के जो पुराने एशियाटिक रिसर्चेज़ के नम्बर मिले हैं उन में जोधपुर के राजा जसवन्त सिंह का वह पत्र भी मिला है जो उन्हों ने औरंगज़ेब को लिखा था और श्रीयुक्त राजा शिवप्रसाद सी० एस० आई० ने भी अपने इतिहास में जिस का कुछ वर्णन किया है। तथा मेरे मित्र पण्डित गणेशराम जी व्यास ने मुझ को कुछ पुस्तकें प्राचीन दी हैं, उन में महा कवि कालिदास के बनाए सेतुबन्ध काव्य की टीका मिली है, जिस में कुछ अकबर का वर्णन है। इन दोनों को हम यहां प्रकाश करते हैं, जिस से पूर्वोक्त दोनों बादशाहों का स्पष्ट चित्त और विचार (Policy) प्रकट हो जायगी।

यह टीका राजा रामदास कछवाहे की बनाई है। अपना वंश उस ने यों लिखा है। कुलदेव को क्षेमराज उन के पुत्र माणिक्यराय फिर क्रम से मोकलराय-धीरराय, नापाराय, (उनके पौत्र) पातलराय; खानाराय, चन्दाराय और उदयराज हुए। इन्हीं उदयराज का पुत्र रामदास हुआ, जो सर्व भाव से अकबर का सेवक है। अकबर के विषय में वह लिखता है:—

श्लोक

आमेरोरासमुद्रादवति वसुमतीं यः प्रतापेन तावत्।
दूरे गाः पाति मृत्योरपि करममुचन्तीर्थवाणिज्यवृत्त्योः।
अप्यश्रौषीत् पुराणं जपति च दिनकृन्नाम योगं विधत्ते।
गङ्गाम्भोभिन्नमम्भो न च पिबति जयत्येष जल्लालुदीन्द्रः ॥३॥
अङ्ग वङ्ग कलिङ्ग-सिलिहट-तिपुरा-कामता कामरूपा
नान्ध्रं कर्णाट-लाट द्राविड़-मरहट द्वारका-चोल-पाण्ड्यान्।
भोटान्नं मारूवारोत्कलमलयखुरासानखान्धारजाम्बू ॥
काशी-काश्मीर ढक्का बलक बदखशा-काबिलान् यः प्रशास्ति ॥४॥
कलियुगमहिमाऽपचीयमानश्रुतिसुरभिद्विजधर्मरक्षणाच्च।
धृतसगुणतनुं तमप्रमेयं पुरुषमकव्वरशाहमानतोस्मि ॥५॥

अर्थ—जो समुद्र से मेरू तक पृथ्वी को पालता है, जो मृत्यु से गऊवों की रक्षा करता है, जिस ने तीर्थ और व्यापार के कर छुड़ा दिए, जिस ने पुरान सुने, जो

सूर्य्य का नाम जपता, जो योग धारण करता है और गंगाजल छोड़ कर और पानी नहीं पीता उस जलालुद्दीन की जय ।।३।।

अंग वंग कलिंग सिलहट तिपुरा कामता (कामटी ?) कामरूप अंध कर्णाटक लाट द्रविड़ महाराष्ट्र द्वारका चोल पांड्य भोट मारवाड़ उड़ीसा मलय खुरासान कंदहार जम्बू काशी ढाका बलख बदखशा और काबुल को जो शासन करता है ।।४।।

कलियुग की महिमा से घटते हुए वेद गऊ द्विज और धर्म की रक्षा को सगुण शरीर जिस ने धारण किया है उस अप्रमेय पुरुष अकबरशाह को हम नमस्कार करते हैं ।।५।।

पाठक गण ! अकबर की महिमा सुनी, यह किसी भाट की बनाई नहीं है एक कट्टर कछवाहे क्षत्रिय महाराज की बनाई है। इसी से इस पर कौन न विश्वास करैगा। उस ने गो-वध बंद कर दिया था यह कविपरम्परा द्वारा तो श्रुत था अब प्रमाण भी मिल गया। हिन्दूशास्त्रों को वह सुना करता था। यह तो और इतिहासों में लिखा है कि वह आदित्यवार को पवित्र समझता है। देखिए उस के इस कार्य से गायत्री के देवता सूर्य के आदर से हिन्दू मात्र उस से कैसे प्रसन्न हुए होंगे। मैं समझता हूं कि उस समय सूर्यवंशी राजा बहुत थे और सूर्य को यह सम्मान दिखा कर अकबर ने सहज उन लोगों का चित्त वश कर लिया था। योग साधने से हिन्दुओं की प्रसन्नता और शरीर की रक्षा दोनों काम हुए। विशेष यह बात जानी गई कि वह गंगाजल छोड़ कर और पानी नहीं पीता था। यह उसकी सब क्रिया हिन्दुओं के वश करने को एक महामोहनास्त्र थीं। इसी से उस को परमेश्वर का अवतार तक कहने में हिन्दुओं ने संकोच न किया। उस को लोग जगद्गुरु पुकारते थे। यह आगे वाले महाराज जसवन्त सिंह के पत्र से प्रकट होगा। इस के विरुद्ध औरंगज़ेब से हिन्दुओं का जी कैसा दुःखी था और उस समय राज्य की भी कैसी अवनति थी यह भी इस पत्र हीं से प्रकट हो जायगा हम विशेष क्या लिखें।

विदित हो कि इस पत्र के लेखक महाराज जसवन्त सिंह जोधपुर के महाराज गज सिंह के द्वितीय पुत्र थे। सन् १६३८ में गज सिंह युद्ध में मारे गए। अपने बड़े पुत्र अमर सिंह को अति क्रूर और प्रजापीड़क समझ कर गज सिंह ने त्याग कर दिया। यही अमर सिंह फिर शाहजहान के दरबार में रहा और वहां भी अपनी उद्धतता से एक दिन काम पर हाजिर नहीं हुआ। इस पर शाहजहां ने उस पर जुर्माना किया। जुर्माना अदा करने को सलावत खां खजानची को भेजा। उस का भी अमर सिंह ने निरादर किया। इस पर बादशाह ने उस को दरबार में बुला

भेजा । यह अति क्रोधावेश में एक कटार लिए हुए दर्बार में निर्भय चला गया । बादशाह को क्रोधित देख कर रोषानल और भी भड़का । पहले सलावत का प्राण संहार किया फिर वही शस्त्र बादशाह पर चलाया । खम्भे में लग कर कटार गिर पड़ी, किंतु उस आघात में बल इतना था कि खम्भे का दो अंगुल पत्थर टूट गया* दर्बार में चारों ओर हाहाकार हो गया । पांच बड़े बड़े मोगल सर्दारों को अमर ने और मारा । अंत में उस को उस का साला अर्जुन गोरा (बूंदी का राजकुमार) पकड़ने चला, तो उस से भी लड़ा और उसी की तलवार से गिरा भी । अब तक तख्त पर लहू की छींट और टूटा हुआ खम्भा उस के इस वीर दर्प का चिन्ह आगरे के क़िले में विद्यमान है । लाल क़िले का दरवाजा जिस से अमर सिंह आया था बुखारा दरवाजा कहलाता था; उस दिन से अमर फाटक कहलाता है । उस के सरदार चंपावत गोती और कंपावत गोती भी दरबार में अपनी निज सैन्य ले कर घुस आए और बहुत से मुगलों को मार कर मारे गए । अमर सिंह की स्त्री बूंदी की राजकुमारी पति का देह लेने को उसी हल्ले में अपने योद्धाओं को लिये क़िले में चली आई और देह ले गई और डेरे में जा कर सती हो गई । इस घटना के वर्णन में राजपुताने में कई ग्रन्थ ख्याल आदि बने हैं और अब तक इस लीला को नट सुथरे-साही जोगी भवैये गवैये गाया करते हैं ।

अथ पत्र ।

" सब प्रकार की स्तुति सर्व शक्तिमान जगदीश्वर को उचित हैं और आप की महिमा भी स्तुति करने के योग्य हैं जो चन्द्र और सूर्य की भांति चमकती हैं । यद्यपि मैं ने आज कल अपने को आप के हाथ से अलग कर लिया है किन्तु आप की जो सेवा हो उस को मैं सदा चित्त से करने को उद्यत हूं । मेरी सदा इच्छा रहती है कि हिन्दुस्तान के बादशाह रईस मिर्जा राजे और राय लोग तथा ईरान तूरान रूम और शाम के सरदार लोग और सातो बादशाहत के निवासी और वे सब यात्री जो जल या थल के मार्ग से यात्रा करते हैं मेरी सेवा से उपकार लाभ करैं ।

यह इच्छा मेरी ऐसी उत्तम है कि जिस में आप कोई दोष नहीं देख सकते । मैं ने पूर्व काल में जो कुछ आप की सेवा की है, उस पर ध्यान करके मुझ को

---

* आनि के सलावत खां जोर कै जनाई बात तोरि धर पंजर करेजे जाय करकी ।
दिल्लीपति नाह के चलन चलबे को भए गाज्यो राज सिंह को सुनी है बात बरकी ।।
कहै बनवारी बादशाह के तखत पास फरकि फरकि लोथ लोथन सी अरकी ।
हिन्दुन की हद्द सद्द राखी तैं अमर सिंह कर की बड़ाई कै बड़ाई जमधर की ।।

अति उचित जान पड़ता है कि मैं नीचे लिखी हुई बातों पर आप का ध्यान दिलाऊं जिस में राजा और प्रजा दोनों की भलाई है। मुझ को यह समाचार मिला है कि आप ने मुझ शुभचिंतक के विरुद्ध एक सैना नियत की है और मैं ने यह भी सुना है कि ऐसी सैनाओं के नियत होने से आप का खजाना जो खाली हो गया है उस को पूरा करने को आप ने नाना प्रकार के कर भी लगाए हैं।

आप के परदादा महम्मद जलालुउद्दीन अकबर ने जिन का सिंहासन अब स्वर्ग में है इस बड़े राज्य को ५२ बरस तक ऐसी सावधानी और उत्तमता से चलाया कि सब जाति के लोगों ने उस्से सुख और आनन्द उठाया। क्या ईसाई, क्या मूसाई, क्या दाऊदी, क्या मुसल्मान, क्या ब्राह्मण, क्या नास्तिक, सब ने उन के राज्य में समान भाग से राजा का न्याय और राज्य का सुख भोग किया। और यही कारण है कि सब लोगों ने एक मुंह हो कर उन को जगत्गुरु की पदवी दिया था।

शाहनशाह मुहम्मदनूरुद्दीन जहांगीर ने जो अब नन्दनबन में बिहार करते हैं उसी प्रकार २२ बरस राज्य किया और अपनी रक्षा की छाया से सब प्रजा को शीतल रक्खा। और अपने आश्रित या सीमास्थित राजवर्ग को भी प्रसन्न रक्खा और अपने बाहु बल से शत्रुओं का दमन किया।

वैसे ही परम प्रतापी शाहजहां ने बत्तीस बरस राज्य करके अपना शुभ नाम अपने गुनों से विख्यात किया।

आप के पूर्व पुरुषों की कीर्ति है। उन के विचार ऐसे उदार और महत् थे कि जहां उन्हों ने चरन रक्खा विजय लक्ष्मी को हाथ जोड़े अपने सामने पाया और बहुत से देश और द्रव्य को अपने अधिकार में किया। किन्तु आप के राज्य में वे देश अब अधिकार से बाहर होते जाते हैं और जो लक्षण दिखलाई पड़ते हैं उस से निश्चय होता है कि दिन-दिन राज्य का क्षय ही होगा। आप की प्रजा अति दुःखी है और सब देश दुर्बल पड़ गये हैं। चारो ओर से बस्तियों के उजड़ जाने की और अनेक प्रकार की दुःख ही की बातें सुनने में आती हैं। जब बादशाह और शाहजादों के देश की यह दशा है तब और रईसों की कौन कहे। शूरता तो केवल जिह्वा में आ रही है। व्यापारी लोग चारों ओर रोते हैं। मुसल्मान अव्यवस्थित हो रहे हैं। हिन्दू महा दुःखी हैं, यहां तक कि प्रजा को सन्ध्या को खाने को भी नहीं मिलता और दिन को सब मारे दुःख के अपना सिर पीटा करते हैं।

ऐसे बादशाह का राज्य कै दिन स्थिर रह सकता है, जिस ने भारी कर से अपने प्रजा की ऐसी दुर्दशा कर डाली है? पूरब से पच्छिम तक सब लोग यही कहते हैं कि हिन्दुस्तान का बादशाह हिन्दुओं का ऐसा द्वेषी है कि वह ब्राह्मण से बड़ा योगी, वैरागी और संन्यासी पर भी कर लगाता है और अपने उत्तम तैमूरी वंश को इन धनहीन उदासीन लोगों को दुःख देकर कलंकित करता है। अगर आप को उस

किताब पर विश्वास है जिस को आप ईश्वर का वाक्य कहते हैं तो उस में देखिए ईश्वर को मनुष्य मात्र का स्वामी लिखा है केवल मुसल्मानों का नहीं। उसके सामने गबर और मुसल्मान दोनों समान हैं। नाना रंग के मनुष्य उसी ने अपने इच्छा से उत्पन्न किये हैं। आप के मसजिदों में उस का नाम लेकर चिल्लाते हैं और हिन्दुओं के यहां मन्दिरों में घंटा बजाते हैं, किन्तु सब उसी को स्मरण करते हैं। इस से किसी जाति को दुःख देना परमेश्वर को अप्रसन्न करना है। हम लोग जब कोई चित्र देखते हैं उस के चितेरे को स्मरण करते हैं और कवि की उक्ति के अनुसार जब कोई फूल सूंघते हैं उस के बनानेवाले को ध्यान करते हैं।

सिद्धान्त यह है कि हिन्दुओं पर जो आप ने कर लगाना चाहा है वह न्याय के परम विरुद्ध है। राज्य के प्रबन्ध को नाश करनेवाला है और बल को शिथिल करनेवाला है तथा हिन्दुस्तान के नीत रीत के अति विरुद्ध है। यदि आप को अपने मत का ऐसा आग्रह हो कि आप इस बात से बाज न आवैं, तो पहले राम सिंह से, जो हिन्दुओं में मुख्य हैं, यह कर लीजिए और फिर अपने इस शुभ-चिन्तक को बुलाइए, किन्तु यों प्रजापीड़न वा रण भंग वीर धर्म्म और उदार चित्त के बिरुद्ध है। बड़े आश्चर्य की बात है कि आप के मंत्रियों ने आप को ऐसे हानिकर विषय में कोई उत्तम मन्त्र नहीं दिया।"

———

मणिकर्णिका।

अहा! संसार का भी कैसा स्वरूप है और नित्य यह कुछ से कुछ हुआ जाता है, पर लोग इस को नहीं समझते और इसी में मग्न रहते हैं। जहां लाखों रुपये के बड़े बड़े और दृढ़ मन्दिर बने थे वहां अब कुछ भी नहीं है और जो लाखों रुपये अपने हाथ से उपार्जन और व्यय करते थे उन के वंशवाले भीख मांगते फिरते हैं नित्य नित्य नए नए स्थान बनते जाते हैं वैसे ही नए नए लोग होते जाते हैं।

यह मणिकर्णिका तीर्थ सब स्थानों में प्रसिद्ध है और हिन्दू धर्म्मवालों को इस का आग्रह सर्व्वदा से रहा है। इसी कारण जो बड़े बड़े राजा हुए उन सबों ने इस स्थान पर कीर्त्ति करनी चाही और एक के नाम को मिटा कर दूसरा अपना नाम करता रहा। इस स्थान पर तीर्थ दो हैं, एक तो गंगाजी दूसरा चक्रपुष्करिणी तीर्थ और इन दोनों पर लोगों की सदा दृष्टि रही। घाट के नीचे ब्रह्मनाल और नीलकंठ तक अनेक घाटों के बनने के चिन्ह मिलते हैं। थोड़े दिन हुए कि मणिकर्णिका पर एक पुराना छत्ता था जिस को लोग राजा कीचक का छत्ता कहते थे, पर न जानै यह कीचक किस वंश में और किस समय में उत्पन्न हुआ था। ऐसा ही राजा मान का एक जनाना घाट है जो गली की भांति ऊपर से पटा है, पर अब इस के ऊपर ब्रह्मनाल की सड़क चलती है। निश्चय है कि यों ही घाटों के नीचे अनेक राजाओं के बनाए घाटों के चिन्ह मिलेंगे। हम आजकल में मणिकर्णिका पर से एक प्राचीन पत्थर उठा लाए हैं जिस्से उस समय का कुछ वृत्तान्त मिलता है। यह पत्थर संवत् १३५९ तेरह से उनसठ का लिखा है जो ईसवी सन् १३०२ के समय का होता है। इस के अक्षर प्राचीन काल के हैं और मात्रा पड़ हैं। पर सोच का विषय है कि पूरा नहीं है, कुछ भाग इस का टूट गया है, इस्से नाम का पता नहीं लगता कि किस राजा का है। जो कुछ वृत्त उस्से जाना गया वह यह है—"उक्त समय में क्षत्रिय राजा दो भाई बड़े विष्णुभक्त और ज्ञानवान हुए और इन की कीर्त्ति परम प्रगट थी, उन लोगों ने मणिकर्णिका घाट बनवाया। उस घाट के निर्माण का विस्तार वीरेश्वर से विश्वेश्वर तक था और मध्य में मणिकर्णिकेश्वर का बड़ा लंबा चौड़ा और ऊंचा मन्दिर बनाया और बीच में बड़ी बड़ी वेदिका बनाई (वेदिका चबूतरे को कहते हैं) यह राजा बड़ा गुणज्ञ था" इत्यादि। इस्से निश्चय है कि उस की बनाई कोई वस्तु शेष नहीं रही। अब जो मणिकर्णिकेश्वर हैं वह एक गहिरे नीचे सङ्कीर्ण स्थान में हैं और

विश्वेश्वर और वीरेश्वर भी नए नए स्थानों में हैं। ऐसा अनुमान होता है कि गङ्गाजी आगे ब्रह्मनाल की ओर बहुत दब के बहती थीं, क्योंकि अद्यापि वहां नीचे घाट मिलते हैं। निश्चय है कि इस राजा के पीछे भी अनेक बार घाट बने होंगे, परन्तु अब जो कुछ टूटा फूटा घाट बचा है वह अहल्याबाई साहब का बनाया है।

मणिकर्णिका कुण्ड की सीढ़ियां जो वर्त्तमान हैं वह दो सै उनचास २४६ वर्ष की बनी हुई हैं और इन को नारायणदास नामक वैश्य ने (जिस का पुकारने का नाम नरैनू था) बनवाई है। यह सोमवंशी राजा वासुदेव का मन्त्री था और रावत इस के पिता का नाम था। यह बात इन श्लोकों से प्रकट होती है जो वहां एक पत्थर पर खुदे मिले हैं।

व्योमाष्टषट् चन्द्रमिते शुभेब्दौ मासे शुचौ विष्णुतिथौ शिवायां।
चकार नारायणदासगुप्तः सोपानमेतन्मणिकर्णिकायाः॥ १॥

जातः क्षितौ वासवतुल्यतेजाः सोमान्वये भूपति वासुदेवः।
तस्यानुवर्त्ती मणिकर्णिकायाश्चकार सोपानततिर्नरेणुः॥ २॥

वासुदेवाग्रसचिवो नरेणुरावतात्मजः।
चक्रपुष्करणीतीर्थजीर्णोद्धारमचीकरत्॥ ३॥

———

काशी।

मैं इस में काशी के तीन भाग का वर्णन करूंगा यथा प्रथम भाग में पंचक्रोश का, दूसरे में गोसाइयों के काल का, तीसरे कुछ अन्य स्फुट वर्णन। मैं पंचक्रोशी का वर्णन ऐसा नहीं करना चाहता कि जिसे देख कर लोग पंचक्रोशी की यात्रा करने चले जायं वरंच मैं भगवान काल के उस परम प्रबल फेर फार रूपी शक्ति को दिखाता हूं जिस से धैर्य्यवानों का धैर्य्य और अज्ञानों का मोह बढ़ता है। आहा! उस की क्या महिमा है और कैसी अचिन्त्य शक्ति है? अतएव मैं मुक्तकंठ से कह सकता हूं कि ईश्वर भी काल का एक नामान्तर है। क्योंकि इस संसार की उत्पत्ति प्रलय केवल इसी पर अंटकी है। जिस विजयी और विख्यात सिकन्दर ने संसार को जीता उसकी अस्थि क हां गड़ी है और जिस कालिदास की कविता संसार पढ़ता है वह किस काल में और किस स्थान पर हुआ? यह किस्का प्रभाव है कि अब उस का खोज भी नहीं मिलता? काल का अतएव यदि हम प्राचीनों से प्राचीन, नवीनों से नवीन, बलवानों से बलवान, उत्पत्ति, पालन, नाशकर्त्ता और सर्व्व तन्त्र स्वतन्त्रादि विशेषणों से विशिष्ट ईश्वर को काल ही का एक नामान्तर कहैं तो क्या दोष है।

इस पंचक्रोशी के मार्ग और मन्दिर और सरोवरों में से दो सौ वा तीन सौ वर्ष से प्राचीन कोई चिन्ह नहीं है और इस बात का कोई निश्चायक नहीं कि पंचक्रोश का मार्ग यही है, केवल एक कर्मदेश्वर का मन्दिर मात्र बहुत प्राचीन है और इस के बौद्धों के काल का वा इस के पीछे के काल का कहैं, तो अयोग्य न होगा। इस मन्दिर के अतिरिक्त और कोई प्राचीन चिन्ह नहीं, पर हां, पद पद पर पुराने बौद्ध वा जैन मूर्त्तिखंड, पुराने जैन मन्दिरों के शिखर, दासे, खम्भे और चौखटैं टूटी फूटी पड़ी हैं। क्यों भाई हिन्दुओ! काशी तो तुम्हारा तीर्थ न है? और तुम्हारा वेद मत तो परम प्राचीन है? तो अब क्यों नहीं कोई चिन्ह दिखाते जिस से निश्चय हो कि काशी के मुख्य देव विश्वेश्वर और बिन्दुमाधव यहां पर थे और यह उन का चिन्ह शेष है और इतना बड़ा काशी का क्षेत्र है और यह उस की सीमा और यह मार्ग है और यह पंचक्रोश के देवता हैं। बस इतना ही कहो भगवते कालाय नमः। हमारे गुरु राजा शिवप्रसाद तो लिखते हैं कि "केवल काशी और कन्नौज में वेदधर्म्म बच गया था" पर मैं यह कैसे कहूं, बरंच यह कह सकता हूं कि काशी में सब नगरों से विशेष जैन मत था और यहीं के लोग दृढ़ जैनी थे, भवतु काल जो न करै सब आश्चर्य्य है। क्या यह सम्भावना नहीं हो

सकती कि प्राचीन काल में जो हिन्दुओं की मूर्त्तियां और मन्दिर थे उन्हीं में जैनों ने अपने काल में अपनी मूर्त्तियां बिठा दीं? क्यों नहीं। केवल कुछ क्षण दिल्ली के सिंहासन पर एक हिन्दू बनियां बैठ गया था उतने ही समय में मसजिदों में हिन्दुओं ने सिन्दूर के भैरव बना दिये और कुरान पढ़ने की चौकियों पर व्यासों ने कथा बांची, तो यह क्या असम्भावित है।

कर्दमेश्वर का मन्दिर बहुत ही प्राचीन है और उस के शिखर पर बहुत से चित्र बने हैं जिन में कई एक तो हिन्दुओं के देवताओं के हैं, पर अनेक ऐसे विचित्र देव और देवी बनी हैं जिन का ध्यान हिन्दू शास्त्र में कहीं नहीं मिलता अतएव कर्दमेश्वर महादेव जी का राज्य उस मन्दिर पर कब से हुआ यह निश्चय नहीं और पलथी मारे हुए जो कर्दम जी की श्री मूर्त्ति है वह तो निस्सन्देह **** कुछ और ही है और इस के निश्चय के हेतु उस मन्दिर के आस पास के जैन खंड प्रमाण हैं और उसी गांव में आगे कूप के पास दहिने हाथ एक चौतरा है उस पर वैसी ही ठीक किसी जैनाचार्य्य की मूर्त्ति पलथी मारे खंडित रक्खी है देख लीजिए और उस के लम्बे कान उस का जैनत्व प्रमाण करते हैं। अब कहिए वह तो कर्दम ऋषि हैं ये कौन हैं कपिलदेव जी हैं? ऐसे ही पंचक्रोशी के सारे मार्ग में बरंच काशी के आस पास के अनेक गांव में सुन्दर सुन्दर शिल्पविद्या से विरचित जैन खंड पृथ्वी के नीचे और ऊपर पड़े हैं। कर्दमेश्वर का सरोवर श्रीमती रानी भवानी का बनाया है और उस पर यह श्लोक लिखा है।

> "शाके गोत्रतुरंगभूपतिमिते श्रीमत्भवानीनृपा
> गौड़ाख्यानमहीमहेन्द्रवनिता निष्कर्द्दमं कार्द्दमं।
> कुंडं ग्रावसुखंडमंडिततटं काश्यां व्यधादादरात्
> श्रीतारातनया पुरांतकपरप्रीत्यै विमुक्त्यै नृणां"॥

अर्थ—शाके १६७७ में अपनी कन्या श्रीतारा देवी के स्मरणार्थ यह कर्दम कुंड बंगाले की महारानी श्रीभवानी ने बनाया इन महारानी की कीर्त्ति ऐसी ही सब स्थानों में उज्ज्वल और प्रसिद्ध है और राजा चन्द्रनाथ राय (उनके प्रपौत्र) मानो उस पुन्य के फल हैं। भीमचंडी के मार्ग में भी ऐसे ही अनेक चिन्ह हैं और भद्राक्षी नामक ग्राम में एक बड़ा पुराना कोट उलटा हुआ पड़ा है और पंचक्रोशी करानेवाले उस के नीचे उसी के ईंटों से छोटे २ घर बनाते हैं और इस में पुन्य समझते हैं। सम्भावना है कि यहां कोई छोटी राजसी रही हो, क्योंकि काशी के चारो ओर ऐसी छोटी छोटी कई राजसियां थीं जैसा आशापुर। काशीखंड में आशापुर को एक

बड़ा नगर कर के लिखा है पर अब तो गांव मात्र बच गया है। भीमचंडी का कुंड भी श्रीमती रानी भवानी का बनाया है और उस में यह श्लोक लिखा हुआ है।

शाके कालाद्रिभूपे गतविलकमलं गौड़राजेन्द्रपत्नी
गन्धर्व्वाम्भोधिमम्भोनिधिसमखननं स्वर्गसोपानजुष्टम्।
चक्रे राज्ञी भवानी सुकृतिमतिकृतिर्भीमचंडीसकाशे
काश्यामस्यास्सुकीर्त्तिस्सुरपतिसमितौ गीयते नारदाद्यैः ॥

अर्थात् शाके १६७६ में रानी भवानी ने यह सरोवर बनाया तो इस लेख से ११८ का प्राचीन यह सरोवर है। इस से प्राचीन भी कुछ चिन्ह हैं, पर अत्यन्त प्राचीन नहीं। देहली विनायक जो मुख्य काशी की सीमा हैं वही ठीक नहीं है, क्योंकि वहां कोई भी प्राचीन चिन्ह शेष नहीं है। वहां के मन्दिर और सरोवर सब एक नागर के बनाए हुए हैं जिसे अभी केवल सत्तर अस्सी बरस हुए। पर इतने ही समय में वह बहुत टूट गए हैं। काशी के कतिपय पंडित कहते हैं कि प्राचीन देहली विनायक वहां से कोसों दूर हैं। अतएव पंचक्रोशी का प्रचलित मार्ग ही अशुद्ध है और यह सम्भावना भी है क्योंकि सिन्धुसागर तीर्थ का बहुत सा भाग इस मार्ग में बाम भाग पड़ता है, पर प्राचीन मार्ग की सड़क खेतवालों ने सम्पूर्ण नष्ट कर डाली। रामेश्वर में श्री रानी भवानी की धर्म्मशाला और उद्यान है, परन्तु रामेश्वर के कोस भर उधर बीच मार्ग ही में एक बड़ा प्राचीन मन्दिर खंड पड़ा है। बीच में शिवपुर एक विश्राम है और वहां पांचो पांडव हैं, परन्तु यह विश्राम इत्यादि कोई काशीखंड लिखित नहीं हैं। सब साहो गोपाल दास के भाई भवानी दास साहो के बनाए हुए हैं और अब वह एक ऐसा विश्राम हो गया है कि सब काशी के बन्धु वही पंचक्रोशी वालों से मिलने जाते हैं। कपिलधारा मानों जैनों की राजधानी है। कारण ऐसा अनुमान होता है कि प्राचीन काल में काशी उधर ही बसती थी, क्योंकि सारनाथ वहां से पास ही है और मैं वहां से कई जैन मूर्त्ति के सिर उठा लाया हूं। ऐसी भी जनश्रुति है कि महादेवभट्ट नामक कोई ब्राह्मण था, उसी ने पंचक्रोशी का उद्धार किया है।

मुझे शिव मूर्त्ति अनेक प्रकार की मिली हैं १ पंचमुख दशभुज २ एक मुख द्विभुज ३ एक मुख चतुर्भुज ४ पद्म पर से पैर लटकाए हुए बैठे और पार्व्वती गोद में बैठी ५ पालथी मारे ६ पार्व्वती को आलिंगन किए हुए इत्यादि तो इस अनेक प्रकार की शिवमूर्त्तियों की प्राप्ति से शंका होती है कि आगे लिंग पूजन का आग्रह नहीं था।

काशी में किसी समय में दश नामी गोसाइयों का बड़ा प्राबल्य था और इन महात्माओं ने अनेक कोटि मुद्रा पृथ्वी के नीचे दबा रक्खी है अतएव अनेक ताम्र पत्र पर बीजक लिखे हुए मिलते हैं, पर वे द्रव्य कहां हैं इसका पता नहीं। इन गोसाइयों ने अनेक बड़े बड़े मठ बनवाए थे और वे सब ऐसे दृढ़ बने हैं कि कभी हिल भी नहीं सकते। इन गोसाइयों में पीछे मद्यपान की चाल फैली और इसी से इन का तेजोनाश हुआ और परस्पर की उन्मत्तता और अदालत की कृपा से इन का सब धन नाश हो गया, पर अद्यापि वे बड़े बड़े मठ खड़े हैं। इन गोसाइयों के समय में भैरव की पूजा विशेष फैली थी। कालिज में एक विस्तीर्ण पत्थर पड़ा है उस पर एक गोसाइयों के बनाए मठ और शिवाले और उस्की विभूति का सविस्तर वर्णन है मैं उस को ज्यों का त्यों आगे प्रकाश करूंगा जिस्से वह समय स्पष्ट हो जायगा।

यहां जिस मुहल्ले में मैं रहता हूं उस के एक भाग का नाम चौखम्भा है। इस का कारण यह है वहां एक मसजिद कई सै बरस की परम प्राचीन है उसका कुतबा कालबल से नाश हो गया है पर लोग अनुमान करते हैं कि ६६४ बरस की बनी है और मसजिदे चिहल सुतून, यही उस की 'तारीख' पर यह दृढ़ प्रमाणी भूत नहीं है। इस मसजिद में गोल गोल एक पंक्ति में पुराने चाल के चार खम्भे बने हैं अतएव यह नाम प्रसिद्ध हो गया है। यही व्यवस्था ढाई कनगूरे के मसजिद की है, यह मसजिद भी बड़ी पुरानी है। अनुमान होता है कि मुगलों के काल के पूर्व्व की है इस की निर्मिति का काल १०५६ ई० में बतलाते हैं। इस से निश्चय होता है इस मुहल्ले में आगे अब सा हिन्दुओं का प्राबल्य नहीं था, पर यह मुहल्ला प्राचीन समय से बसा है।

मैंने जो अनेक स्थलों पर लिखा है कि जैन मूर्त्ति बहुत मिलती हैं इससे यह निश्चय नहीं कि काशी में जैन के पूर्व्व हिन्दूधर्म्म नहीं था, क्योंकि जैन काल के पूर्व्व की और सम काल की हिन्दुओं की अनेक मूर्त्ति अद्यापि उपलब्ध होती हैं। कालिज में एक प्रस्तर खंड पड़ा है और उस की लिपि परम प्राचीन है। पंडित शीतलाप्रसाद जी का अनुमान है कि यह लिपि पाली के भी पूर्व्व की है। इस पत्थर पर एक काली के मन्दिर की प्रतिष्ठा का समाचार है और इस का काल अनेक सहस्र वर्ष पूर्व्व है और उसमें ये श्लोक लिखे हैं।

१

ख्याता वाराणसीयत्रिभुवनभवने भोगचौरीति दूरात्।
सेवन्ते यां विरक्ताः जननमरणयो मोक्षमेकैकरक्ता ॥

यत्र देवोऽविमुक्तः यो दृष्ट्या ब्रह्माहाऽपि च्युतकलिकलुषो जायते शुद्धभावः।
अस्यामुत्तुङ्गशृङ्गस्फुटशशिकिरिणा ॥

३

प्रतुलिविविधजनपदश्रीविलासाऽभिरामं विद्यावेदान्ततत्त्वव्रतजपनियमव्यग्रच्छद्रा-
भिजुष्टं। श्रीमत्स्थानसुसेव्य ॥

४

तत्राऽभूत् सार्थनामा शिशुरपि विनयव्यापदो भद्रमूर्त्तिः त्यागी धीरः कृतज्ञः
परिलघविभवोप्यात्मवृत्त्याभिजीवी।

५

वर्णा चंडनरोत्तमांगरचितव्यालम्बिमालोत्कटा।
सर्प्पत्सर्प्पविवेष्टिताङ्गरपशुव्याविद्धशुष्कामिषा लीलानृत्यरुचिर्विलोत्प

६

यस्यापि न तस्य तुष्टिरभवत् यावत् भवानीग्रहं शुश्लिष्टाऽमलसन्धिबन्धघटितं
घंटानिनादोज्ज्वलं। रम्यं दृष्टिहरं शिलोच्च्याय ॥

ध्वजचामरं सुकृतिना श्रेयोऽर्थिना कारितं।

सांस्कृतिक निबंध

१. तदीय सर्वस्व (भूमिका)

२. वैष्णवता और भारतवर्ष

३. भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है

४. ईशू खृष्ट और ईश कृष्ण

[इन सांस्कृतिक लेखों से तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक विचारधाराओं का भी आभास मिलता है और भारतेंदु की निजी मनोदृष्टि की भी झलक मिलती है।

'तदीय सर्वस्व' में भारतेंदु की धार्मिक भावना सुरक्षित है, इसकी भूमिका में उन्होंने धार्मिक अवनति पर क्षोभ प्रकट किया है और इस क्षेत्र में उदारता बरतने की बात चलाई है।

'वैष्णवता और भारतवर्ष' में उन्होंने धार्मिक सुधार की बात बड़े स्पष्ट और ज़ोरदार शब्दों में कही है। तत्कालीन दुरवस्था, ब्रिटिश शासन, दरिद्रता, मानसिक संकीर्णता आदि की उन्होंने जिन शब्दों में कटु भर्त्सना की है उससे उनकी निर्भीकता, उदारता और क्रांतिकारिता का पूरा पूरा पता चलता है। उनके समस्त लेखों में यह निबंध अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है' भारतेंदु का व्याख्यान है जो उन्होंने बलिया में ददरी के मेले के समय आर्यदेशोपकारिणी सभा में दिया था। हरिश्चंद्र देशहित के ध्यान में कितने रत थे इसका स्पष्ट संकेत इस भाषण से मिलता है, यह भाषण भी तत्कालीन दशा का अच्छा चित्र प्रस्तुत करता है।

'ईशू खृष्ट और ईश कृष्ण' में भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है और पाश्चात्य संस्कृति पर भारतीय विचारधारा का जो प्रभाव पड़ा है उसे दिखाया गया है। पाठकों को इसमें भारतेंदु के विस्तृत अध्ययन की झलक मिल जायगी।]

तदीय सर्वस्व।

उपक्रम

हम आर्य लोगों में धर्म तत्व के मूलग्रंथों का भाषा में प्रचार नहीं। यही कारण है कि भिन्नता स्थान २ पर फैली हुई है। अनेक कोटि देवी देवताओं का माहात्म्य, छोटी छोटी बातों में ब्रह्महत्या का पाप, और तुच्छ तुच्छ बातों में बड़े बड़े यज्ञों का पुण्य, अहंब्रह्म का ज्ञान, और मूल धर्म छोड़ कर उपधर्मों में आग्रह ने भारतवर्ष से वास्तविक धर्मों का लोप कर दिया। जिस जगतकर्ता ने हम लोगों को उत्पन्न किया, संसार के सुख दिये, बुरे भले का ज्ञान दिया और अपना सत मार्ग दिखलाया उस के यहां की प्रजा विमुख हो कर धर्मान्तर में फंस गई। यदि प्रथम कर्तव्य उस की भक्ति के अनन्तर कर्मानुष्ठान में प्रवृत्त होते तो कुछ बाधा नहीं थी। वह न हो कर कर्म गौण तो मुख्य हो गये और मुख्य वस्तु गौण हो गई। इसी से सारा भारतवर्ष भगवद्विमुख हो कर छिन्न भिन्न हो गया जो कि इस की अवनति का मूल कारण हुआ। कभी भगवद्विमुख कोई देश या जाति उत्पन्न हो सकती है? धर्म हमारा ऐसा निर्बल और पतला हो गया है कि केवल स्पर्श से वा एक चुल्लू पानी से मर जाता है। कच्चे गले सड़े सूत वा चिउंटी की दशा हमारे धर्म की हो गई है। हाय !!!

इसी धर्म पथ का सनुन्नत करने को एक ईश्वरवादी अनेक आचार्यों ने परिष्कृत और सहज धर्म प्रचलित किए हैं और अनेक लोग इन मार्गों में दीक्षित हैं। किन्तु उन लोगों में भी वाह्यवेष, वाह्याडम्बर आचार विचार वा परनिन्दादि आग्रह ऐसे समा गये हैं कि उन का धर्म किसी काम नहीं आता। या तो ईश्वरवादी हिन्दू समाज से सम्पूर्ण वहिष्कृत हो जायंगे या कर्म मार्ग से ऐसे दब जायंगे कि नाम मात्र के भक्त रहैंगे।

इसी विषमता को दूर करने को इस ग्रन्थ का आविर्भाव है। इस में मुक्तकण्ठ से कहा गया है कि केवल प्रेम परमेश्वर का दिव्य मार्ग है। यद्यपि यह ग्रन्थ वैष्णवों की शैली पर लिखा गया है, किन्तु परमेश्वर के भक्तमात्र के हेतु यह उद्योग है। क्रिस्तान आदि विदेशी धर्मप्रेमी समझें कि कृष्ण उनके निर्गुण परमेश्वर का नाम है, वैष्णवों की तो कुछ बात ही नहीं है, शैव कहें कि विष्णु शिव ही का नामान्तर है, ब्राह्मण समझें कि हरि ब्रह्म ही को कहते हैं, उपासना और आर्यसमाज इसे अपना ही तत्व मानैं, सिक्ख इस में गुरु का पथ देखैं और ऐसे ही भक्तिमार्ग वाले मात्र सब लोग इस को अपनी निजी सम्पत्ति समझैं। इस में

कोरे कर्ममार्गी वा बहुभक्त वा स्वयं ब्रह्म लोग यदि मुझ को गाली भी देंगे तो मैं अपने को कृतार्थ समझूंगा।

लोगों को उचित है कि इस ग्रन्थ को देखैं। निश्चय रखैं कि परमेश्वर के पाने का पथ केवल प्रेम है। और बातैं चाहे धर्म की हों या लोक की, दोनों बेड़ी ही हैं। बिना शुद्ध प्रेम न लोक है न परलोक। जिस संसार में परमेश्वर ने उत्पन्न किया है, जिस जाति वा कुटुम्ब से तुम्हारा सम्बन्ध है और जिस देश में तुम हो उस से सहज सरल प्रेम करो और अपने परम पिता परम गुरु परम पूज्य परमात्मा प्रियतम को केवल प्रेम में ढूंढ़ो। बस और कोई साधन नहीं है।

वैष्णवता और भारतवर्ष।

यदि विचार करके देखा जायगा तो स्पष्ट प्रगट होगा कि भारतवर्ष का सब से प्राचीन मत वैष्णव है। हमारे आर्य लोगों ने सब से प्राचीन काल में सभ्यता का अवलम्बन किया और इसी हेतु क्या धर्म, क्या नीति सब विषय के संसार मात्र के ये दीक्षा गुरू हैं। आर्यों ने आदि काल में सूर्य ही को अपने जगत् का सब से उपकारी और प्राण दाता समझ कर ब्रह्म माना और इन का मूल मंत्र गायत्री इसी से इन्हीं सूर्य नारायण की उपासना में कहा गया है, सूर्य की किरणें 'आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः' जलों में और मनुष्यों में व्याप्त रहती हैं और इस द्वारा ही जीवन प्राप्त होता है इसी से सूर्य का नाम नारायण है। हम लोगों के जगत् के ग्रह मात्र जो सब प्रत्येक ब्रह्माण्ड हैं इन्हीं की आकर्षण शक्ति से स्थिर हैं, इसी से नारायण का नाम अनन्त कोटि ब्रह्मांडनायक है। इसी सूर्य का वेद में नाम विष्णु है, क्योंकि इन्हीं की व्यापकता से जगत स्थित है। इसी से आर्यों में सब से प्राचीन एक ही देवता थे और इसी से उस काल के भी आर्य वैष्णव थे। कालान्तर में सूर्य में चतुर्भुज देव की कल्पना हुई। 'ध्येयः सदा सवितृमंडल-मध्यवर्ती नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः'। 'तद्विष्णोः परमं पदम्' 'विष्णोः कर्माणि पश्यत' 'यत्र गावो भूरिशृंगाः' 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' इत्यादि श्रुति जो सूर्य-नारायण के आधिभौतिक ऐश्वर्य की प्रतिपादक थीं आधिदैविक सूर्य की विष्णु-मूर्ति के वर्णन में व्याख्यात हुईं। चाहे जिस रूप से हो वेदों ने प्राचीन काल से विष्णु महिमा गाई। उस के पीछे उस सूर्य की एक प्रतिमूर्ति पृथ्वी पर मानी गई, अर्थात् अग्नि। आर्यों का दूसरा देवता अग्नि है। अग्नि यज्ञ है और 'यज्ञो वै विष्णुः'। यज्ञ ही से रुद्र देवता माने गए। आर्यों के एक छोड़ कर दो देवता हुए। फिर तीन और तीन से ग्यारह को तृविधि करने से तैंतीस और इसी तैंतीस से तैंतीस करोड़ देवता हुए। इस विषय का विशेष वर्णन अन्य प्रसंग में करैंगे। यहाँ केवल इस बात को दिखाते हैं कि वर्तमान समय में भी भारतवर्ष से और वैष्णवता से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है किन्तु योरप के पूर्वी विद्या जाननेवाले विद्वानों का मत है कि रुद्र आदि आर्यों के देवता नहीं हैं (१) वह अनार्यों (Non-Aryan or Tamalian) के देवता हैं। इस के वे केवल आठ कारण देते हैं। प्रथम वेदों में लिङ्ग पूजा का निषेध है। यथा वशिष्ट इन्द्र से

(१) एंटिक्विटी अव उड़ीसा १ जिल्द १३६ पेज देखो

विनती करते हैं कि हमारी वस्तुओं को 'शिश्नदेवा' [लिङ्गपूजक] से बचाओ इत्यादि। (२) ऋक्वेद और अन्यान्य ऋचाओं में भी शिश्नदेवा लोगों को असुर दस्यु इत्यादि कहा है और रुद्री में भी रुद्र की स्तुति भयंकर भाव से की है। दूसरी युक्ति यह है कि स्मृतियों में लिङ्गपूजा का निषेध है। (३) प्रोफेसर मैक्समूलर ने वशिष्ट स्मृति के अनुवाद के स्थल में यह विषय बहुत स्पष्ट लिखा है। तीसरी युक्ति वे यह कहते हैं कि लिंगपूजक और दुर्गा भैरवादिकों के पूजक ब्राह्मण को पंक्ति से बाहर करना लिखा है। [मितात्तरावृत्त ब्रह्मांडपुराण के वाक्य चतुर्विंशति मत पराशर व्याख्या में माधव श्लोक ३६, आपस्तम्ब, भागवत चतुर्थ स्कन्ध द्वितीयाध्याय २८ श्लोक और धर्माब्धिसार के तीसरे परिच्छेद का पूर्वार्द्ध देखो।] चौथी युक्ति यह कहते हैं कि लिङ्ग का तथा दुर्गा भैरवादि का निर्माल्य खाने में पाप लिखा है। कमलाकरान्हिक, निर्णयसिन्धु (आचारमाधवादि ग्रंथों में सैकड़ों वाक्य हैं, देख लो)। पाचवें शास्त्रों में शिवमन्दिर और भैरवादिकों के मन्दिर को नगर के बाहर बनाना लिखा है।*

छठवें वे लोग कहते हैं कि शैवबीजमन्त्र से दीक्षित और शिव को छोड़ कर और देवता को न मानने वाले ऐसे शुद्ध शैव भारतवर्ष में बहुत ही थोड़े हैं। या तो शिवोपासक स्मार्त्त हैं या शाक्त हैं। शाक्त भी शिव को पार्वती के पति समझ कर विशेष आदर देते हैं, कुछ सर्वेश्वर समझ कर नहीं। जंगमादिक दक्षिण में जो दीक्षित शैव हैं वे बहुत ही थोड़े हैं। शाक्त तो जो दीक्षित होते हैं वे प्रायः कौल ही हो जाते हैं। सौर गाणपत्य की तो कुछ गिनती ही नहीं। किन्तु वैष्णवों में मध्व और रामानुज को छोड़ कर और इन में भी जो निरे आग्रही हैं वे ही तो

---

(२) Regveda, IV., P. 6. and Dr. Wilson's Vedic Comments.

(३) Professor Max Muler's Ancient Sanskrit Literature, P.55.

* भागवत के पहले स्कन्ध के दूसरे अध्याय का २५ श्लोक। 'व्यवहाराध्याय दिव्य प्रकरण कोष विधान १८ श्लोक, वशिष्ट स्मृति, गीता सप्तमाध्याय २० श्लोक, गौतमाकृताचार सूत्र १२ खंड, आचारप्रकाश में मत्स्य पुराण का वाक्य और काशीखंड का वाक्य देखो। इस विषय की पुष्टता के हेतु प्रोफेसर मैक्समूलर लिखते हैं कि जिस ऋचा के वशिष्ट ऋषि हैं उसी में शिश्नदेवा लोगों की निन्दा है अतएव इस विषय में वशिष्ट की स्मृति भी प्रमाण के योग्य है। बहुत लोग यह भी कहते हैं कि शाक्तमत नास्तिकों की प्रकृति ही से जगत् मानने वालों की (Naturalists) नेचरियों की शाखा है, क्रम पा कर उसी प्रकृति को वे लोग देवि के आकार में मानने लगे।

साधारण स्मार्तों से कुछ भिन्न हैं, नहीं तो दीक्षित वैष्णव भी साधारण जन-समाज से कुछ भिन्न नहीं और एक प्रकार के अदीक्षित वैष्णव तो सभी हैं। सातवीं युक्ति इन लोगों की यह है कि जो अनार्य लोग प्राचीन काल में भारतवर्ष में रहते थे और जिनको आर्य लोगों ने जीता था वही शिल्प-विद्या नहीं जानते थे और इसी हेतु लिङ्ग ठोंका या सिद्धपीठ इत्यादि पूजा उन्हीं लोगों की है जो अनार्य हैं। आठवें शिव, काली, भैरव इत्यादि के वस्त्र, निवास, आभूषण आदिक सभी आर्यों से भिन्न हैं। स्मशान में बास, अस्थि की माला आदि जैसी इन लोगों की वेषभूषा शास्त्रों में लिखी है वह आर्योचित नहीं है। इसी कारण शास्त्रों में शिव का, भृगु और दक्ष आदि का विवाद कई स्थल पर लिखा है और रुद्र भाग इसी हेतु यज्ञ के बाहर है। यद्यपि ये पूर्वोक्त युक्तियां योरपीय विद्वानों की हैं, हम लोगों से कोई संबंध नहीं, किन्तु इसी विषय में बाहर वाले क्या कहते हैं, केवल यह दिखलाने को यहां लिखी गई हैं।

पश्चिमात्य विद्वानों का मत है कि आर्य लोग (Aryans) जब मध्य एशिया (Central Asia) में थे तभी से वे लोग विष्णु का नाम जानते हैं। ज़ारौस्ट्रियन (Zarostrian) ग्रंथ जो ईरानी और आर्य शाखाओं के भिन्न होने के पूर्व के लिखे हैं उन में भी विष्णु का वर्णन है। बेदों के आरम्भ काल से पुराणों के समय तक तो विष्णु महिमा आर्यग्रंथों में पूर्ण है। वरंच तंच और आधुनिक भाषा ग्रन्थों में उसी भांति एकछत्र विष्णु महिमा का राज्य है।

पण्डितवर बाबू राजेन्द्रलाल मित्र ने वैष्णवता के काल को पांच भाग में विभक्त किया है। यथा १ वेदों के आदि समय की वैष्णवता, २ ब्राह्मण के समय की वैष्णवता, ३ पाणिनी के और इतिहासों के समय की वैष्णवता, ४ पुराणों के समय की वैष्णवता, ५ आधुनिक समय की वैष्णवता।

वेदों के आदि समय से विष्णु की ईश्वरता कही गई है। ऋग्वेद संहिता में विष्णु की बहुत सी स्तुति है। विष्णु को किसी विशेष स्थान का नायक या किसी विशेष तत्व वा कर्म्म का स्वामी नहीं कहा है, वरंच सर्वेश्वर की भांति स्तुति किया है। यथा विष्णु पृथ्वी के सातों तहों पर फैला है। विष्णु ने जगत को अपने तीन पैर के भीतर किया। जगत उसी के रज में लिपटा है। विष्णु के कर्मों को देखो, जो कि इन्द्र का सखा है। ऋषियो! विष्णु के ऊंचे पद को देखो, जो एक आंख की भांति आकाश में स्थिर है। पण्डितो! स्तुति गा कर विष्णु के ऊंचे पद को खोजो। इत्यादि। ब्राह्मणों में इन्हीं मन्त्रों का बड़ा विस्तार किया है और अब तक यज्ञ, होम, श्राद्ध आदि सभी कर्मों में ये मंत्र पढ़े जाते हैं। ऐसे ही और स्थानों में विष्णु को जगत का रक्षक, स्वर्ग और पृथ्वी का बनाने वाला, सूर्य और अन्धेरे का उत्पन्न करने वाला इत्यादि लिखा है। इन मन्त्रों में विष्णु के विषय में रूप

का परिचय इतना ही मिलता है कि उस ने अपने तीन पदों से जगत को व्याप्त कर रक्खा है। यास्क ने निरुक्त में अपने से पूर्व के दो ऋषियों का मत इस के अर्थ में लिखा है। यथा शाक मुनि लिखते हैं कि ईश्वर का पृथ्वी पर रूप अग्नि है, घन में विद्युत है और आकाश में सूर्य है। सूर्य की पूजा किसी समय समस्त पृथ्वी में होती थी यह अनुमान होता है। सब भाषाओं में अद्यापि यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'उठते हुए सूर्य को सब पूजता है'। (अरुण भाव सूर्य के उदय, मध्य और अस्त की व्यवस्था को तीन पद मानते हैं।) दुर्गाचार्य अपनी टीका में उसी मत को पुष्ट करते हैं। सायनाचार्य विष्णु के बावन अवतार पर इस मंत्र को लगाते हैं। किन्तु यज्ञ और आदित्य ही विष्णु हैं, इस बात को बहुत लोगों ने एक मत होकर माना है। अस्तु विष्णु उस समय आदित्य ही को नामांतर से पुकारा है कि स्वयं विष्णु देवता आदित्य से भिन्न थे, इस का झगड़ा हम यहां नहीं करते। यहां यह सब लिखने से हमारा केवल यह आशय है कि अति प्राचीन काल से विष्णु हमारे देवता हैं। अग्नि, वायु और सूर्य यह तीनों रूप विष्णु के हैं; इन्हीं से ब्रह्मा, शिव और विष्णु यह तीन मूर्तिमान् देव हुए हैं।

ब्राह्मणों के समय में विष्णु की महिमा सूर्य से भिन्न कह कर विस्तार रूप से वर्णित है और शतपथ ऐतरेय और तैतरेय ब्राह्मण में देवताओं का द्वारपाल देवताओं के हेतु जगत् का राज्य बचानेवाला इत्यादि कह कर लिखा है।

इतिहासों में रामायण और भारत में विष्णु की महिमा स्पष्ट है, वरंच इतिहासों के समय में विष्णु के अवतारों का पृथ्वी पर माना जाना भी प्रकट है। पाणिनि के समय के बहुत पूर्व कृष्णावतार, कृष्णपूजा और कृष्णभक्ति प्रचलित थी, यह उन के सूत्र ही से स्पष्ट है। [यथा जीविकार्थे चापण्ये वासुदेवः ॥५॥३॥९९॥० कृष्ण नमेच्चेत् सुखं यायात् ।३।३।१५ ई० वासुदेवभक्तिरहस्य वासुदेवकः ४।३।६८।०] और प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सुभद्रा नाम इत्यादि के पाणिन के लिखने ही से सिद्ध है कि उस समय के अति पूर्व कृष्णावतार की कथा भारतवर्ष में फैल गई थी। यूनानियों के उदय के पूर्व पाणिनि का समय सभी मानते हैं। विद्वानों का मत है कि क्रम से पूजा के नियम भी बदले यथा पूर्व में यज्ञाहुति, फिर बलि और अष्टांग पूजा आदि हुई और देवविषयक ज्ञान की वृद्धि के अन्त में सब पूजन आदि से उस की भक्ति श्रेष्ठ मानी गई।

पुराणों के समय में तो विधिपूर्वक वैष्णव मत फैला हुआ था यह सब पर विदित ही है। वैष्णव पुराणों की कौन कहे, शाक्त और शैव पुराणों में भी उन देवताओं की स्तुति उन को विष्णु से सम्पूर्ण भिन्न करके नहीं कर सके हैं। अब जैसा वैष्णव मत माना जाता है उस के बहुत से नियम पुराणों के समय से और फिर तन्त्रों के समय से चले हैं। दो हजार वर्ष की पुरानी मूर्तियां वाराह, राम,

लक्ष्मण, और वासुदेव की मिली हैं और उन पर भी खुदा हुआ है कि इन मूर्तियों की स्थापना करनेवालों का वंश भागवत अर्थात् वैष्णव था। राजतरंगिणी ही के देखने से राम, केशव आदि मूर्तियों की पूजा यहां बहुत दिन से प्रचलित है, यह स्पष्ट हो जाता है। इस से इस की नवीनता या प्रचीनता का झगड़ा न कर के यहां थोड़ा सा इस अदल बदल का कारण निरूपण करते हैं।

मनुष्य के स्वभाव ही में यह बात है कि जब वह किसी बात पर प्रवर्त होता है तो क्रमशः उस की उन्नति करता जाता है और इस विषय को जब तक वह एक अन्त तक नहीं पहुंचा लेता संतुष्ट नहीं होता। सूर्य के मानने की ओर जब मनुष्यों की प्रवृत्ति हुई तो इस विषय को भी वे लोग ऐसी ही सूक्ष्म दृष्टि से देखते गये। प्रथमतः कर्ममार्ग में फंस कर लोग अनेक देवी देवों को पूजते हैं किन्तु बुद्धि का यह प्रकृति धर्म है वह ज्यों ज्यों समुज्ज्वल होती है अपने विषय मात्र को उज्ज्वल करती जाती है। थोड़ी बुद्धि बढ़ने ही से यह विचार चित्त में उत्पन्न होता है कि इतने देवी देव इस अनन्त सृष्टि के नियामक नहीं हो सकते, इस का कर्त्ता स्वतन्त्र कोई विशेष शक्तिसम्पन्न ईश्वर है। तब उस का स्वरूप जानने की इच्छा होती है, अर्थात् मनुष्य कर्मकाण्ड से ज्ञानकाण्ड में आता है। ज्ञानकाण्ड में सोचते सोचते संगीत और रुचि के अनुसार या तो मनुष्य फिर निरीश्वरवादी हो जाता है या उपासना में प्रवर्त्त होता है। उस उपासना की भी विचित्र गति है। यद्यपि ज्ञानवृद्धि के कारण प्रथम मनुष्य साकार उपासना छोड़ कर निराकार की ओर रुचि करता है, किन्तु उपासना करते करते जहां भक्ति का प्राबल्य हुआ नहीं अपने उस निराकार उपास्य को भक्त फिर साकार कहने लगता है। बड़े बड़े निराकारवादियों ने भी "प्रभो दर्श दो! अपने चरण कमलों को हमारे सिर पर स्थान दो, अपनी सुधामयी वाणी श्रवण कराओ" इत्यादि प्रयोग किया है। वैसे ही प्रथम सूर्य पृथ्वीवासियों को सब से विशेष आश्चर्य और गुणकारी वस्तु बोध हुई, उस से फिर उन में देवबुद्धि हुई। देवबुद्धि होने ही से आधिभौतिक सूर्य मण्डल के भीतर एक आधिदैविक नारायण माने गये। फिर अन्त में यह कहा गया कि नारायण एक सूर्य ही में नहीं, सर्वत्र हैं और अनन्त कोटि सूर्य चन्द्र तारा उन्हीं के प्रकाश से प्रकाशित हैं। अर्थात् आध्यात्मिक नारायण की उपासना में लोगों की प्रवृत्ति हुई।

इन्हीं कारणों से वैष्णव मत की प्रवृत्ति भारतवर्ष में स्वाभाविकी है। जगत में उपासनामार्ग ही मुख्य धर्ममार्ग समझा जाता है। कृस्तान, मुसलमान, ब्राह्म, बौद्ध उपासना सब के यहां मुख्य है। किन्तु बौद्धों में अनेक सिद्धों की उपासना और तप आदि शुभ कर्मों के प्राधान्य से वह मत हम लोगों के स्मार्त्त मत के सदृश है और कृस्तान, मुसलमान, ब्राह्म आदि के धर्म में भक्ति की प्रधानता से

यह सब वैष्णवों के सदृश हैं। इंजील में वैष्णवों के ग्रन्थों से बहुत सा विषय लिया है और ईसा के चरित्र में श्रीकृष्ण के चरित्र का सादृश्य बहुत है, यह विषय सविस्तर भिन्न प्रबन्ध में लिखा गया है*। तो जब ईसाइयों के मत को ही हम वैष्णवों का अनुगामी सिद्ध कर सके हैं, फिर मुसलमान जो कृस्तानों के अनुगामी हैं वे हमारे अन्वनुगामी हो चुके।

यद्यपि यह निर्णय करना अब अति कठिन है कि अति प्राचीन के ध्रुव, प्रह्लाद आदि मध्यावस्था के उद्धव, आरुणि, परीक्षितादिक और नवीन काल के वैष्णवाचार्यों के खानपान, रहनसहन, उपासना, रीति, वाह्य चिन्ह आदि में कितना अन्तर पड़ा है, किन्तु इतना ही कहा जा सकता है कि विष्णु उपासना का मूलसूत्र अति प्राचीन काल से अनवच्छिन्न चला आता है। ध्रुव, प्रह्लादादि वैष्णव तो थे, किन्तु अब के वैष्णवों की भांति कंठी, तिलक, मुद्रा लगाते थे और मांसादि नहीं खाते थे, इन बातों का विश्वस्त प्रमाण नहीं मिलता। ऐसे ही भारतवर्ष में जैसी धर्मरुचि अब है उस से स्पष्ट होता है कि आगे चल कर वैष्णव मत में खाने पीने का विचार छूट कर बहुत सा अदल बदल अवश्य होगा। यद्यपि अनेक आचार्यों ने इसी आशा से मत प्रवर्त्त किया कि इस में सब मनुष्य समानता लाभ कर और परस्पर खानपानादि से लोगों में ऐक्य बढ़ै और किसी जाति वर्ण देश का मनुष्य क्यौं न हो वैष्णव पंक्ति में आ सकै, किन्तु उन लोगों की यह उदार इच्छा भली भांति पूरी नहीं हुई, क्यौंकि स्मार्त मत की और ब्राह्मणों की विशेष हानि के कारण इस मत के लोगों ने उस समुन्नत भाव से उन्नति को रोक दिया, जिस से अब वैष्णवों में छूआछूत सब से बढ़ गया बहुदेवोपासकों को घृणा देने के अर्थ वैष्णवातिरिक्त और किसी का स्पर्श बचाते वहां तक एक बात थी, किन्तु अब तो वैष्णवों ही में ऐसा उपद्रव फैला है कि एक सम्प्रदाय के वैष्णव दूसरे सम्प्रदाय वाले को अपने मन्दिर में और अपने खानपान में नहीं लेते और 'सात कनौजिया नौ चूल्हे' वाली मसल हो गई है। किन्तु काल की वर्तमान गति के अनुसार यह लक्षण उनकी अवनति के हैं। इस काल में तो इस की तभी उन्नति होगी जब इस के वाह्य व्यवहार और आडम्बर में न्यूनता होगी और एकता बढ़ाई जायगी। यह काल ऐसा है कि लोग उसी मत को विशेष मानैंगे जिस में वाह्य देहकष्ट न्यून हो। यद्यपि वैष्णव धर्म भारतवर्ष का प्रकृत धर्म है इस हेतु उस की ओर लोगों की रुचि होगी, किन्तु उस में अनेक संस्कारों की अतिशय आवश्यकता है। प्रथम तो

* "ईशू खृष्ट" और ईश कृष्ण नामक प्रबंध देखो। (रा० दी० सिंह।)

गोस्वामी गण अपना रजोगुणी तमोगुणी स्वभाव छोड़ैंगे तब काम चलैगा। गुरू लोगों में एक तो विद्या ही नहीं होती, जिस के न होने से शील, नम्रता आदि उन में कुछ नहीं होते। दूसरे या तो वे अति रूखे क्रोधी होते हैं या अति विलास-लालस हो हो कर स्त्रियों की भांति सदा दर्पण ही देखा करते हैं। अब वह सब स्वभाव उन को छोड़ देना चाहिए, क्योंकि इस उन्नीसवीं शताब्दि मैं वह श्रद्धाजाड्य अब नहीं बाकी है। अब कुकर्म्मी गुरू का भी चरणामृत लिया जाय वह दिन छप्पर पर गये। जितने बूढ़े लोग अभी तक जीते हैं उन्हीं के शील संकोच से प्राचीन धर्म इतना भी चल रहा है, बीस पचीस बरस पीछे फिर कुछ नहीं है। अब तो गुरू गोसाईं का चरित्र ऐसा होना चाहिए कि जिस को देख सुन कर लोगों में श्रद्धा से स्वयं चित्त आकृष्ट हों। स्त्रीजनों का मन्दिरों से सहवास निवृत्त किया जाय। केवल इतना ही नहीं, भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की केलिकथा जो अतिरहस्य होने पर भी बहुत परिमाण से जगत् में प्रचलित है वह केवल अंतरंग उपासकों पर छोड़ दी जाय, उन के माहात्म्य मत विशद चरित्र का महत्व यथार्थ रूप से व्याख्या कर के सब को समझाया जाय। रास क्या है, गोपी कौन हैं, यह सब रूपक अलंकार स्पष्ट करके श्रुतिसम्मत उन का ज्ञान वैराग्य भक्ति बोधक अर्थ किया जाय। यह भी दबी जीभ से हम डरते डरते कहते हैं कि व्रत, स्नान आदि भी वहीं तक रहैं जहां तक शरीर को अति कष्ट न हो। जिस उत्तम उदाहरण के द्वारा स्थापक आचार्य गण ने आत्मसुख विसर्जन करके भक्तिसुधा से लोगों को प्लावित कर दिया था उसी उदाहरण से अब भी गुरू लोग धर्मप्रचार करैं। वाह्य आग्रहों को छोड़ कर केवल आन्तरिक उन्नत प्रेममयी भक्ति का प्रचार करैं, देखैं कि दिग्दिगन्त से हरि नाम की कैसी ध्वनि उठती है और विधर्मी गण भी इस को सिर झुकाते हैं कि नहीं और सिक्ख, कबीरपन्थी आदि अनेक दल के हिन्दूगण भी सब आप से आप बैर छोड़ कर इस उन्नत समाज में मिल जाते हैं कि नहीं।

जो कोई कहै कि यह तुम कैसे कहते हो कि वैष्णव मत ही भारतवर्ष का प्रकृत मत है तो उस के उत्तर में हम स्पष्ट कहैंगे कि वैष्णव मत ही भारतवर्ष का मत है और वह भारत की हड्डी लहू में मिल गया है। इस के अनेक प्रमाण हैं, क्रम से सुनिए :—पहले तो कबीर, दादू, सिक्ख, बाउल आदि जितने पंथ है सब वैष्णवों की शाखा प्रशाखा हैं और सारा भारतवर्ष इन पंथों से छाया हुआ है। (२) अवतार और किसी देव का नहीं, क्यों कि इतना उपकार ही [दस्यु दलन आदि] और किसी से नहीं साधित हुआ है। (३) नामों को लीजिये तो, क्या स्त्री क्या पुरुष, आधे नाम भारतवर्ष के विष्णुसम्बन्धी हैं और आधे में जगत्

है। कृष्ण भट्ट, राम सिंह*, गोपालदास, हरीदास, रामगोपाल, राधा, लक्ष्मी—रुक्मिन, गोपी, जानकी आदि। विश्वास न हो कलेक्टरी के दफ़्तर से मर्दुमशुमारी

* नाम से बहुत कुछ पता लग सकता है। वैष्णव, शाक्त, सौर आदि लोग अपने इष्ट के नाम पर प्रायः नाम रखते हैं।

राम सम्बन्धी नाम।

१ रामवल्लभ। २ रामदीन। ३ रामदास। ४ रामसनेही। ५ रामदयाल। ६ रामचरित्र। ७ रामाश्रय। ८ रामचरण। ९ रामशरण। १० रामू। ११ रामेश्वर। १२ रामप्रसाद। १३ रामेश्वरनाथ। १४ रामेश्वरप्रसाद। १५ रामरणविजय। १६ रामदवर। १७ रामवेणी। १८ रमाकांत। १९ रामवरण। २० रामरूप। २१ रामगुलाम। २२ रामनारायण। २३ रामनोहर। २४ रामफल। २५ रामकिंकर। २६ रामनाथ। २७ रामसेवक। २८ रामसुंदर। २९ रामदत्त। ३० रामलाल। ३१ रामजीवन। ३२ रामधारी। ३३ रामविहारी। ३४ रामदेव। ३५ रामपति। ३६ रामबकस। ३७ रामशिरोमणि। ३८ रामरत्न। ३९ रामसुमेर। ४० रामशेखर। ४१ रामानंद। ४२ राम्मगुलाम। ४३ रामकृष्ण। ४४ रामवृक्ष। ४५ रामपदार्थ। ४६ रामजन्म। ४७ रामदर्शन। ४८ रामलगन। ४९ रामहृदय। ५० रामभानु। ५१ रामयाद। ५२ रामकंठ। ५३ रामभजन। ५४ रामप्रकाश। ५५ रामकमल। ५६ रामधनी। ५७ रामध्यान। ५८ रामप्रताप। ५९ रामजन। ६० रामरटन। ६१ रघुवीर। ६२ रघुराज। ६३ रामबुझावन। ६४ रामशंकर। ६५ रामगति। ६६ रामरति। ६७ रामकुमार। ६८ रामकृपाल। ६९ रामविष्णु। ७० रामानुज। ७१ अयोध्यानाथप्रसाद। ७२ अवधनाथप्रसाद।

वैरागी लोगों में केवल रामोपासक लोगों का नाम।

१ रामशरण। २ रघुनाथशरण। ३ रघुनंदनशरण। ४ अवधेशशरण। ५ अवधविहारीशरण। ६ रमारमणशरण। ७ जानकीरमणशरण। ८ जानकीवरशरण। ९ जानकीवल्लभशरण। १० सीतावल्लभशरण। ११ सीतारमणशरण। १२ सीतनाथशरण। १३ प्रमोदवनविहारीशरण। १४ कनकभवनविहारीशरण। १५ रघुवीरशरण। १६ रघुत्तमशरण।

जानकी उपासकों का नाम।

१ जानकीशरण। २ वैदेहीशरण। ३ रामप्रियाशरण। ४ मिथिलेश्वरीशरण। ५ रामकांताशरण। ६ जनकात्मजाशरण। ७ रामसुन्दरीशरण। ८ सीताशरण। ९ रामवल्लभाशरण। १० रमाशरण। ११ जनककिशोरीशरण। १२ कनकभवनविहारिणीशरण। १३ प्रमोदवनविहारिणीशरण।

का कागज निकाल कर देख लीजिये या एक दिन डांकघर में बैठ कर चिट्ठियों के लिफाफों की सैर कीजिये। (४) ग्रंथ, काव्य, नाटक आदि के, संस्कृत या भाषा के, जो प्रचलित हैं उन को देखिये। रघुवंश, माघ, रामायण आदि ग्रंथ विष्णुचरित्र के ही बहुत हैं। (५) पुराण में भारत, भागवत, वाल्मीकिरामायण, यही बहुत प्रसिद्ध हैं और यह तीनों वैष्णव ग्रन्थ हैं। (६) व्रतों में सब से मुख्य एकादशी है वह वैष्णव व्रत है और भी जितने व्रत हैं उन में आधे वैष्णव हैं। (७) भारतवर्ष में जितने मेले हैं उन में आधे से विशेष विष्णुलीला, विष्णुपर्व या विष्णुतीर्थों के कारण हैं। (८) तिहवारों की भी यही दशा है। वरंच होली आदि साधारण तिहवारों में भी विष्णुचरित्र ही गाया जाता है। (९) गीत, छंद चौदह आना विष्णुपरत्व हैं, दो आना और देवताओं के। किसी का ब्याह हो, राम जानकी के ब्याह के गीत सुन लीजिये। किसी के बेटा हो नंदबधाई गाई जायगी। (१०) तीर्थों में भी विष्णुसम्बन्धी ही बहुत हैं। अयोध्या, हरिद्वार, मथुरा, वृन्दावन, जगन्नाथ, रामनाथ, रंगनाथ, द्वारका, वदरीनाथ, आदि भली भांति याद करके देख लीजिये। (११) नदियों में गंगा, जमुना मुख्य हैं, सो इनका माहात्म्य केवल विष्णुसम्बन्ध से है। (१२) गया में हिन्दू मात्र को पिण्डदान करना होता है, वहां भी विष्णपद है। (१३) मरने के पीछे 'रामरामसत्य है' इसी की पुकार होती है और अन्त में शुद्ध श्राद्ध तक 'प्रेतमुक्तिप्रदो भव' आदि वाक्य से केवल जनार्दन ही पूजे जाते हैं। यहां तक कि पितृरूपी जनार्दन ही कहलाते हैं। (१४) नाटकों और तमाशों में रामलील, रास ही अति प्रचलित हैं। (१५) सब वेद पुस्तकों के आदि और अन्त में लिखा रहता है 'हरिः ॐ'। (१६) संकल्प कीजिए तो विष्णुः विष्णुः। (१७) आचमन में विष्णु विष्णु। (१८) शुद्ध होना हो तो यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं। (१९) सुग्गे को भी राम ही राम पढ़ाते हैं। (२०) जो कोई वृत्तान्त कहै तो उस को रामकहानी कहते हैं। (२१) लड़कों को

देवी उपासकों के नाम।

१ दुर्गाप्रसाद। २ चण्डीप्रसाद। ३ विन्धेश्वरीप्रसाद। ४ कालिकाप्रसाद। ५ जगदम्बिकाप्रसाद। ६ जगदेश्वरीप्रसाद। ७ भैरवीप्रसाद। ८ देवीदत्त आदि।

गंगा भक्तों का नाम।

१ गंगाप्रसाद। २ गंगादास। ३ गंगाशरण। ४ गंगाचरण। ५ गंगादयाल। ६ गंगाराम। ७ गंगाविष्णु आदि।

ऐसे ही राधाकृष्ण, नरसिंह, सूर्य्य, शिव, गणेश, आदि उपासकों के नाम हैं।

रा० दी० सिं०।

बाल गोपाल कहते हैं। (२२) छपने में जितने भागवत, रामायण, प्रेमसागर, ब्रजविलास छापी जाती हैं और देवताओं के चरित्र उतने नहीं छपते। (२३) आर्य लोगों के शिष्टाचार में रामराम, जय श्रीकृष्ण, जयगोपाल ही प्रचलित हैं। (२४) ब्राह्मणों के पीछे वैष्णव वैरागी ही को हाथ जोड़ते हैं और भोजन कराते हैं। (२५) विष्णु के साला होने के कारण चन्द्रमा को सभी चन्दा मामा कहते हैं। (२६) गृहस्थ के घर तुलसी का थाला, ठाकुर की मूर्ति, रसोई, भोग लगाने को रहती ही है। (२७) कथा घाट बाट में भागवत ही रामायण की होती है। (२८) नगरों के नाम में भी रामपुर (क) गोविन्दगढ़, रघुनाथपुर, गोपालपुर (ख) आदि

(क) विष्णुसम्बन्धी अनेक गांव हैं, कई एक यहां पर लिखे जाते हैं। जिला गया के जहानाबाद थाना के इलाके में बिसुनगंज गांव है। जिला गया के नवी-नगर थाना के इलाके में किसुनपुर बढाने के किनारे पर है, यहां मेला लगता है। जिला गया के दाऊद नगर थाना के इलाके में गोपालपुर गांव है। जिला गया के शहर घाटी थाना इलाके में नारायणपुर गांव है।

बरेव से तीन कोस पूरब सकरी नदी के बायें किनारे गोविन्दपुर बैजनाथ जी की कच्ची सड़क पर भारी बाजार है। यहां लकड़ी और बहुत सी जंगली चीजें बिकती हैं। यहां से दो कोस नैऋत्य कोन में एक तारा गांव से आध कोस दक्खिन महाभर पहाड़ में ककोलत बड़ा भारी और प्रसिद्ध झरना है, इस में सदा पानी मोटी धारा से गिरा करता है। पानी गिरते गिरते नीचे एक अथाह कुण्ड बन गया है। पानी इस झरने का बहुत निर्मल और ठंढा रहता है। यह स्थान परम रम्य और मनोहर लगता है। मेष की सक्रान्ति में (बिसुआ) बड़ा मेला लगता है। गोविन्दपुर के आस पास बिसुनपुर सुघड़ी और पहाड़ के पार सिऊर रपऊ आदि बड़े बड़े गांव हैं। सिऊर में दो बड़े तालाब हैं और एक पुराने राजगृह का चिन्ह देख पड़ता है।

सीतापुर मुल्लापुर के पश्चिम सदर मुकाम सीतापुर लखनऊ से ५३ मील उत्तर बसा है। दरयाबाद सीतापुर के वायु कोन। सदर मुकाम दरयाबाद लखनऊ से ४५ मील वायु कोन उत्तर को झुकता हुआ है।

(ख) एक गांव असनी गोपालपुर है। वहां के नरहरि कवि ने अपने परिचय में कहा है :— कवित्त

नाम नरहरि हैं प्रशंसा सब लोग करैं हंसहू से उज्ज्वल सकल जगु व्यापे हैं।
गंगा के तीर ग्राम असनी गोपालपुर मंदिर गोपाल जी को करत मंत्र जापे हैं।
कबि बादशाही मौज पावै बादशाही को जगावै बादशाही जाते अरिगन कापे हैं।
जब्बर गनीमन के तोरिबे को गब्बर हुमायूं के बब्बर अकब्बर के थापे हैं ॥१॥

ही विशेष हैं। (२९) मिठाई में गोविन्द बड़ी, मोहनभोग, आदि नाम हैं, अन्य देवतों का कहीं कुछ नाम नहीं है। (३०) सूर्यचन्द्रवंशी क्षत्री लोग श्रीराम कृष्ण के वंश में होने से अब तक अभिमान करते हैं। (३१) ब्राह्मणगण ब्रह्मण्य देव कह कर अब तक कहते हैं 'ब्राह्मणो मामकी तनुः'। (३२) औषधियों में भी रामबाण, नारायणचूर्ण आदि नाम मिलते हैं। (३३) कार्तिक स्नान, राधा दामोदर की पूजा, देखिए भारतवर्ष में कैसी है। (३४) तारकमन्त्र लोग श्री राम नाम ही को कहते हैं। (३५) किसी हौस में चले जाइये तूल के थान निकलवा कर देखिए उस पर जितने चित्र विष्णुलीला सम्बन्धी मिलेंगे अन्य नहीं। (३६) बारहो महीने के देवता विष्णु हैं। ऐसी ही अनेक अनेक बातें हैं। विष्णुसम्बन्धी नाम बहुत वस्तुओं के हैं, कहां तक लिखे जायं। विष्णुपद (आकाश), विष्णुरात (परीक्षित), रामदाना, रामधेनु, रामजी की गैया, रामधनु (आकाशधनु), रामफल, सीताफल, रामतोरई, (ग) श्रीफल, हरिगीतीं, रामकली, रामकपूर, रामगिरी, रामचन्दन, रामगंगा, (घ) हरिचंदन, हरिसिंगार, हरिकेला, हरिनेत्र (कमल), हरिकेली (बंगला देश), हरिप्रिय (सफेद चन्दन), हरिवासर (एकादशी), हरिबीज (बग़नीबू), हरिवर्षखंड, कृष्णकली, कृष्णकन्द, कृष्णकान्ता, विष्णुकान्ता (फूल), सीतामऊ, सीताबलदी, (ङ) सीताकुण्ड,

(ग) रामतरोई को चित्रकूट के प्रान्त में तथा गया प्रान्त में भिंडी कहते हैं। यह एक प्रकार की तरकारी होती है। बहुत लोग कहते हैं कि भिंडी से रामतरोई वैष्णवों ने नाम रक्खा है। यथा लवण को रामरस कहते हैं उसी प्रकार भिंडी को रामतरोई कहते हैं।

(घ) भूगोल हस्तामलक में रामगंगा का ठिकाना लिखा है :—

मुरादाबाद बरेली के वायु कोन। उत्तर भाग में पहाड़ और जंगल हैं ऊख इस जिले में बहुत होती है। सदर मुकाम मुरादाबाद कुछ कम ५०००० आदमी की बस्ती इलाहाबाद से ३०० मील वायु कोन उत्तर को झुकता रामगंगा के दहने किनारे बसा है। वहां से एक मंजिल पर दक्षिण नैऋत्य कोन को झुकता संभल है, जहां हिन्दू लोग कलि के अन्त में कलंकी अवतार होने का निश्चय रखते हैं। (रा० दी० सिंह)।

(ङ) भूगोल हस्तामलक में नागपुर के वर्णन में लिखा है :—शहर के गिर्दनवाह में दरख्त बिलकुल नहीं, परपट मैदान पड़ा है। दक्षिण तरफ एक छोटा सा नाला नागनदी नाम बहता है, इसी से शायद इस शहर का नाम नागपुर रहा। छावनी पास ही सीताबलदी की पहाड़ी पर है।

(च) सीतामढ़ी, (छ) सीता की रसोई, हरिपर्वत, हरि का पत्तन, रामगढ़, रामबाग़, रामशिला, (ज) रामजी की घोड़ी, हरिपदा (आकाशगंगा), नारायणी, (झ) कन्हैया आदि नगर नद नदी पर्वत फल फूल के सैकड़ों नाम हैं। (जले विष्णुः स्थले विष्णुः) सब स्थान पर विष्णु के नाम ही का सम्बन्ध विशेष है।

आग्रह छोड़ कर तनिक ध्यान देकर देखिये कि विष्णु से भारतवर्ष से क्या सम्बन्ध है, फिर हमारी बात स्वयं प्रमाणित होती है कि नहीं कि भारतवर्ष का प्रकृत मत वैष्णव ही है।

अब वैष्णवों से यह निवेदन है कि आप लोगों का मत कैसी दृढ़ भित्ति पर स्थापित है और कैसे सार्वजनीन उदार भाव से परिपूर्ण है, यह कुछ कुछ हम आप

(च) मुंगेर से ५ मील पूर्व सीताकुण्ड का गर्म सोता है, अठारह फुट मुरब्बा में पक्की ईंटों का एक हौज बना है; और उसी में कई जगह पानी के नीचे बुलबुले उठा करते हैं जहां बुलबुले उठते हैं, वहां पानी अधिक गर्म रहता है। पानी साफ है और उस में थर्मामिटर डुबोने से १३६ दर्जे तक पारा उठता है। उसी गिर्दनवाह में और भी कई एक इस तरह के गर्म सोते हैं।

(छ) 'गया का भूगोल' में सीतामढ़ी का एक वृत्तान्त दिया है वह नीचे लिखा जाता है :—

नरहट से दो कोस पश्चिम सीतामढ़ी एक प्रसिद्ध स्थान है। पहाड़ की बड़ी चट्टान के भीतर खोद कर भगवती सीता जी की मूर्ति स्थापित है, दरवाज़ा इस में बिना केवाड़े का एक ही है। इस से भीर होने पर दरसनियों को कष्ट होता है। अगहन की पुनियां को यहां बड़ा मेला लगता है। (रा० दी० सिंह)।

(ज) रामशिला गया में एक पहाड़ है। उस पर रानी टेकारी का नया मन्दिर बहुत सुंदर बना है।

राम गया एक स्थान के समीप है। कृष्ण द्वारिका गया में है।

(झ) भूगोल हस्तामलक में राजा शिवप्रसाद ने नारायणी का वर्णन यों लिखा है :—

हिमालय के पहाड़ में गंडक नदी के बाएं तट से अति निकट मुक्तिनाथ हिन्दुओं का बड़ा तीर्थ है। वहां सात गर्म सोते हैं कि जिन से पानी निकल कर नारायणी नदी के नाम से गंडक में गिरता है। उन में से अग्निकुण्ड का सोता बहुत अद्भुत है। वह एक मन्दिर के अंदर पहाड़ से निकलता है, और उस के पानी पर अग्नि की ज्वाला दिखलाई देती है। कारण इस का वही समझना चाहिए जो ज्वालामुखी में गोरख डिब्बी के लिए लिख आये हैं। (रा० दी० सिंह।)

लोगों को समझा चुके। उसी भाव से आप लोग भी उस में स्थिर रहिये, यही कहना है। जिस भाव से हिन्दू मत अब चलता है उस भाव से आगे नहीं चलैगा। अब हम लोगों के शरीर का बल न्यून हो गया, विदेशी शिक्षाओं से मनोवृत्ति बदल गई, जीविका और धन उपार्जन के हेतु अब हम लोगों को पांच पांच छ छ पहर पसीना चुआना पड़ैगा, रेल पर इधर से उधर कलकत्ते से लाहौर और बम्बई से शिमला दौड़ना पड़ैगा, सिविल सर्विस का, बैरिस्टरी का इंजिनियरी का इम्तिहान देने को विलायत जाना होगा, बिना यह सब किये काम नहीं चलैगा, क्यों कि देखिये, कृस्तान, मुसलमान, पारसी यही हाकिम हुए जाते हैं, हम लोगों की दशा दिन दिन हीन हुई जाती है। जब पेट भर खाने ही को न मिलैगा तो धर्म कहां बाकी रहैगा इस से जीव मात्र के सहज धर्म उदरपूरण पर अब ध्यान दीजिए। परस्पर का बैर छोड़िये शैव, सिक्ख जो हो, सब से मिलो। उपसना एक हृदय की रत्न वस्तु है उस को आर्य क्षेत्र में फैलाने की कोई आवश्यकता नहीं। वैष्णव, शैव, ब्राह्म, आर्यसमाजी सब अलग अलग पतली पतली डोरी हो रहे हैं इसी से ऐश्वर्य रूपी मस्त हाथी उन से नहीं बंधता। इन सब डोरी को एक में बांध कर मोटा रस्सा बनाओ तब यह हाथी दिग दिगंत भागने से रुकैगा। अर्थात् अब वह काल नहीं कि हम लोग मित्र २ अपनी अपनी खिचड़ी अलग पकाया करैं। अब महाघोर काल उपस्थित है। चारों ओर आग लगी हुई है। दरिद्रता के मारे देश जला जाता है। अंगरेजों से जो नौकरी बच जाती है उन पर मुसलमान आदि विधर्मी भरती होते जाते हैं। आमदनी वाणिज्य की थी ही नहीं केवल नौकरी की थी, सो भी धीरे धीरे खसकी, तो अब कैसे काम चलैगा। कदाचित ब्राह्मण और गोसाईं लोग कहैं कि हम को तो मुफ्त का मिलता है हम को क्या? इस पर हम कहते हैं कि विशेष उन्हीं को रोना है। जो कराल काल चला आता है उस को आंख खोल कर देखो। कुछ दिन पीछे आप लोगों के मानने वाले बहुत ही थोड़े रहेंगे, अब सब लोग एकत्र हो। हिन्दू नामधारी वेद से लेकर तंत्र, वरंच भाषाग्रन्थ मानने वाले, तक सब एक हो कर अब अपना परम धर्म यह रक्खो कि आर्य जाति में एका हो। इसी में धर्म की रक्षा है। भीतर तुम्हारे चाहे जो भाव और जैसी उपासना हो, ऊपर से सब आर्यमात्र एक रहो। धर्म सम्बन्धी उपाधियों को छोड़ कर प्रकृत धर्म की उन्नति करो।

"भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है।"

(बलिया में ददरी के मेले के समय आर्य देशोपकारिणी सभा में दिया गया भाषण)

(भारतेंदु के इंदिरायन उपाध्याय जो सेक्रेटरी थे ऐड्रेस पढ़ा)

(भारतेंदु जी का बलिया का व्याख्यान From नवोदिता हरिश्चन्द्र चंद्रिका Vol. XI No. 3 Dec. 1884.)

How can India be reformed

आज बड़े आनन्द का दिन है कि छोटे से नगर बलिया में हम इतने मनुष्यों को एक बड़े उत्साह से एक स्थान पर देखते हैं ० इस अभागे आलसी देस में जो कुछ हो जाय वही बहुत है ० बनारस ऐसे २ बड़े नगरों में जब कुछ नहीं होता तो हम यह न कहैंगे कि बलिया में जो कुछ हम ने देखा वह बहुत ही प्रशंसा के योग्य है ० इस उत्साह का मूल कारण जो हम ने खोजा तो प्रगट हो गया कि इस देस के भाग्य से आज कल यहां सारा समाज ही ऐसा एकत्र है ० राबर्ट साहब बहादुर ऐसे कलेक्टर जहां हों वहां क्यों न ऐसा समाज हो ० जिस देस और काल में ईश्वर ने अकबर को उत्पन्न किया था उसी में अबुलफजल, बीरबल, टोडरमल को भी उत्पन्न किया ० यहां राबर्ट साहब अकबर हैं तो मुंशी चतुर्भुज सहाय मुंशी बिहारीलाल साहब आदि अबुलफजल और टोडरमल्ल हैं ० हमारे हिन्दुस्तानी लोग तो रेल की गाड़ी हैं ० यद्यपि फर्स्ट क्लास सेकेण्ड क्लास आदि गाड़ी बहुत अच्छी अच्छी और बड़े बड़े महसूल की इस ट्रेन में लगी हैं पर बिना इंजिन सब नहीं चल सकती वैसे ही हिन्दुस्तानी लोगों को कोई चलाने वाला हो तो ये क्या नहीं कर सकते ० इन से इतना कह दीजिए "का चुप साधि रहा बलवाना" फिर देखिये हनुमान जी को अपना बल कैसा याद आता है ० सो बल कौन याद दिलावै ० या हिंदोस्तानी राजे महाराजे नवाब रईस या हाकिम ० राजे महाराजों को अपनी पूजा भोजन झूठी गप से छुट्टी नहीं ० हाकिमों को कुछ तो सर्कारी काम घेरे रहता है कुछ बाल घुड़दौड़ थियेटर में समय गया ० कुछ समय बचा भी तो उन को क्या गरज है कि हम ग़रीब गन्दे काले आदमियों से मिल कर अपना अनमोल समय खोवैं ० बस वही मसल वही ० "तुम्हें गैरों से कब फ़ुरसत हम अपने ग़म से कब खाली। चलो बस हो चुका मिलना न हम खाली न तुम खाली" ० तीन मेडक एक के ऊपर एक बैठे थे ० ऊपर वाले ने कहा जौक

शौक बीचवाला बोला गम सम सब के नीचे वाला पुकारा गए हम ० सो हिन्दुस्तान की प्रजा की दशा यही है गए हम ० पहले भी जब आर्य लोग हिन्दुस्तान में आ कर बसे थे राजा और ब्राह्मणों के जिम्मे यह काम था कि देश में नाना प्रकार की विद्या और नीति फैलावैं और अब भी ये लोग चाहैं तो हिन्दुस्तान प्रति दिन क्या प्रति छिन बढ़ै ० पर इन्हीं लोगों को निकम्मेपन ने घेर रखा है ० "बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मर दूषिताः" हम नहीं समझते कि इन को लाज भी क्यों नहीं आती कि उस समय में जब कि इन के पुरुषों के पास कोई भी सामान नहीं था तब उन लोगों ने जंगल में पत्ते और मिट्टी की कुटियों में बैठ कर के बांस की नालियों से जो तारा ग्रह आदि वेध कर के उन की गति लिखी है वह ऐसी ठीक है कि सोलह लाख रुपये के लागत की बिलायत में जो दूरबीन बनी है उन से उन ग्रहों को वेध करने में भी वही गति ठीक आती है और जब आज इस काल में हम लोगों को अंगरेजी विद्या के और जनता की उन्नति से लाखों पुस्तकें और हजारों यंत्र तैयार हैं तब हम लोग निरी चुंगी की कतवार फेकने की गाड़ी बन रहे हैं ० यह समय ऐसा है कि उन्नति की मानो घुड़दौड़ हो रही है ० अमेरिकन अंगरेज फरासीस आदि तुरकी ताजी सब सरपट्ट दौड़े जाते हैं ० सब के जी में यही है कि पाला हमी पहले छू लें ० उस समय हिन्दू काठियाबाड़ी खाली खड़े खड़े टाप से मिट्टी खोदते हैं ० इन को औरों को जाने दीजिये जापानी टट्टुओं को हांफते हुए दौड़ते देख कर के भी लाज नहीं आती ० यह समय ऐसा है कि जो पीछे रह जायगा फिर कोटि उपाय किए भी आगे न बढ़ सकैगा ० इस लूट में इस बरसात में भी जिस के सिर पर कमबख्ती का छाता और आंखों में मूर्खता की पट्टी बंधी रहै उन पर ईश्वर का कोप ही कहना चाहिए ०

मुझ को मेरे मित्रों ने कहा था कि तुम इस विषय पर आज कुछ कहो कि हिन्दुस्तान की कैसे उन्नति हो सकती है। भला इस विषय पर मैं और क्या कहूं भागवत में एक श्लोक है " नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारं मयाऽनुकूलेन नभःस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ०" भगवान कहते हैं कि पहले तो मनुष्य जन्म ही बड़ा दुर्लभ है सो मिला और उस पर गुरू की कृपा और उस पर मेरी अनुकूलता इतना सामान पाकर भी जो मनुष्य इस संसार सागर के पार न जाय उस को आत्महत्यारा कहना चाहिये वही दसा इस समय हिन्दुस्तान की है। अंगरेजों के राज्य में सब प्रकार का सामान पा कर अवसर पा कर भी हम लोग जो इस समय उन्नति न करें तो हमारे केवल अभाग्य और परमेश्वर का कोप ही हैं ० सास और अनुमोदन से एकान्त रात में सूने रंगमहल में जा कर भी बहुत दिन से प्रान से प्यारे परदेसी पति से मिल कर छाती ठंढी करने की इच्छा थी उस का लाज से मुंह भी न देखै और बोलै भी न तो उस का

अभाग्य ही है ० वह तो कल फिर परदेस चला जायगा ० वैसे ही अंगरेजों के राज्य में भी जो हम मेंडक काठ के उल्लू पिंजड़े के गंगाराम ही रहैं तो फिर हमारी कमबख्त कमबख्ती फिर कमबख्ती है ० बहुत लोग यह कहैंगे कि हम को पेट के धंधे के मारे छुट्टी ही नहीं है रहती, बाबा हम क्या उन्नति करें ० तुम्हारा पेट भरा है तुम को दून की सूझती है ० यह कहना उनकी बहुत भूल है ० इंगलैंड का पेट भी कभी यों ही खाली था ० उस ने एक हाथ से अपना पेट भरा दूसरे हाथ से उन्नति के कांटों को साफ किया ० क्या इंगलैंड में किसान खेतवाले गाड़ीवान मजदूर कोचवान आदी नहीं हैं ? किसी देस में भी सभी पेट भरे हुए नहीं होते ० किन्तु वे लोग जहां खेत जोते बोते हैं वहीं उस के साथ यह भी सोचते हैं कि ऐसी कौन नई कल व मसाला बनावैं जिस में इस खेत में आगे से दून अन्न उपजे ० विलायत में गाड़ी के कोचवान भी अखबार पढ़ते हैं ० जब मालिक उतर कर किसी दोस्त के यहां गया उसी समय कोचवान ने गद्दी के नीचे से अखबार निकाला ० यहां उतनी देर कोचवान हुक्का पिएगा वा गप्प करैगा ० सो गप्प भी निकम्मी "वहां के लोग गप्प ही में देस के प्रबन्ध छांटते हैं ०" सिद्धान्त यह कि वहां के लोगों का यह सिद्धान्त है कि एक छिन भी व्यर्थ न जाय ० उस के बदले यहां के लोगों को जितना निकम्मापन हो उतना ही वह बड़ा अमीर समझा जाता है आलस यहां इतनी बढ़ गई कि मलूकदास ने दोहा हीं बना डाला ० "अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम । दास मलूका कहि गये सब के दाता राम" चारो ओर आंख उठा कर देखिये तो बिना काम करने वालों की ही चारों ओर बढ़ती है रोजगार वहीं कुछ भी नहीं है अमीरों की मुसाहिबी दल्लाली या अमीरों के नौजवान लड़कों को खराब करना या किसी की जमा मार लेना इन के सिवा बतलाइए और कौन रोजगार है जिस से कुछ रूपया मिलै ० चारो ओर दरिद्रता की आग लगी हुई है ० किसी ने बहुत ठीक कहा है कि दरिद्र कुटुंबी इस तरह अपनी इज्जत को बचाता फिरता है जैसे लाजवती बहू फटे कपड़ों में अपने अंग को छिपाए जाती है ० वही दशा हिन्दोस्तान की है ० मर्दुम शुमारी का रिपोर्ट देखने से स्पष्ट होता है कि मनुष्य दिन दिन यहां बढ़ते जाते हैं और रूपया दिन दिन कमती होता जाता है ० सो अब बिना ऐसा उपाय किए काम नहीं चलैगा कि रूपया भी बढ़ै ० और वह रूपया बिना बुद्धि बढ़े न बढ़ैगा० भाइयो राजा महाराजों का मुंह मत देखो मत यह आशा रक्खो कि पंडित जी कथा में ऐसा उपाय बतलावैंगे कि देश का रूपया और बुद्धि बढ़ै ० तुम आप ही कमर कसो आलस छोड़ो कब तक अपने जंगली हूस मूर्ख बोदे डरपोकने पुकरवाओगे ० दौड़ो इस घुड़दौड में जो पीछे पड़े तो फिर कहीं ठिकाना नहीं है ० " फिर कब राम जनक पुर ऐहैं " अबकी जो पीछे पड़े तो फिर रसातल ही

पहुंचोगे ० जब पृथ्वीराज को कैद कर के ग़ोर ले गए तो शहाबुद्दीन के भाई गयासुद्दीन से किसी ने कहा कि वह शब्दवेधी बान बहुत अच्छा मारता है ० एक दिन सभा नियत हुई और सात लोहे के तावे बान से फोड़ने को रखे गए० पृथ्वीराज को लोगों ने पहिले ही से अंधा कर दिया था ० संकेत यह हुआ कि जब गयासुद्दीन हूं करै तब वह तावे पर बान मारे ० चंद कवि भी उसके साथ कैदी था ० यह सामान देख कर उस ने यह दोहा पढ़ा ० "अब की चढ़ी कमान को जानै फिर कब चढ़ै । जिन चूकै चहुआन इक्कै मारय इक्क सर ०" उस का संकेत समझ कर जब गयासुद्दीन ने हूं किया, तो पृथ्वीराज ने उसी को बान मार दिया ० वही बात अब है ० 'अब की चढ़ी' इस समय में सर्कार का राज्य पा कर और उन्नति का इतना सामान पा कर भी तुम लोग अपने को न सुधारो तो तुम्हीं रहो० और वह सुधारना भी ऐसा होना चाहिए कि सब बात में उन्नति हो० धर्म में घर के काम में, बाहर के काम में, रोजगार में शिष्टाचार में चाल चलन में, शरीर में, बल में, समाज में, युवा में वृद्ध में स्त्री में, पुरुष में, अमीर में, ग़रीब में, भारतवर्ष की सब अवस्था सब जाति सब देस में उन्नति करो ० सब ऐसी बातों को छोड़ो जो तुम्हारे इस पथ के कंटक हों० चाहे तुम्हें लोग निकम्मा कहैं या नंगा कहैं, कृस्तान कहैं या भ्रष्ट कहैं तुम केवल अपने देश की दीन दशा को देखो और उन की बात मत सुनो० अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः स्वकार्यं साधयेत् धीमान् कार्यध्वंसो हि मूर्खता० जो लोग अपने को देशहितैषी लगाते हों वह अपने सुख को होम करके अपने धन और मान का बलिदान करके कमर कस के उठो ० देखादेखी थोड़े दिन में सब हो जायगा० अपनी खराबियों के मूल कारणों को खोजो० कोई धर्म की आड़ में, कोई देस की चाल की आड़ में, कोई सुख की आड़ में छिपे हैं० उन चोरों को वहां वहां से पकड़ कर लाओ० उन को बांध बांध कर कैद करो ० हम इस से बढ़ कर क्या कहैं कि जैसे तुम्हारे घर में कोई पुरुष व्यभिचार करने आवै तो जिस क्रोध से उस को पकड़ कर मारोगे और जहां तक तुम्हारे में शक्ति होगी उस का सत्यानाश करोगे उसी तरह इस समय जो जो बातैं तुम्हारे उन्नति पथ को कांटा हों उन की जड़ खोद कर फेंक दो० कुछ मत डरो० जब तक सौ दो सौ मनुष्य बदनाम न होंगे, ज़ात से बाहर न निकाले जायंगे, दरिद्र न हो जायंगे, कैद न होंगे वरंच जान से न मारे जायंगे तब तक कोई देश न सुधरेगा०

अब यह प्रश्न होगा कि भाई हम तो जानते ही नहीं कि उन्नति और सुधारना किस चिड़िया का नाम है० किस को अच्छा समझै० क्या लें क्या छोड़ें० तो कुछ बातैं जो इस शीघ्रता से मेरे ध्यान में आती हैं उन को मैं कहता हूं सुनो—

सब सुन्नियों का मूल धर्म है० इस से सब के पहले धर्म की ही उन्नति करनी उचित है० देखो अंगरेजों की धर्मनीति राजनीति परस्पर मिली हैं इस से उन की दिन दिन कैसी उन्नति है० उन को जाने दो अपने ही यहां देखो० तुम्हारे यहां धर्म की आड़ में नाना प्रकार की नीति समाजगठन वैद्यक आदि भरे हुए हैं० दो एक मिसाल सुनो० यही तुम्हारा बलिया का मेला और यहां स्थान क्यों बनाया गया है० जिस में जो लोग कभी आपस में नहीं मिलते दस दस पांच पांच कोस से वे लोग एक जगह एकत्र हो कर आपस में मिलैं० एक दूसरे का दुःख सुख जानैं० गृहस्थी के काम की वह चीज़ें जो गांव में नहीं मिलतीं यहां से ले जायं० एकादशी का व्रत क्यों रक्खा है ? जिस में महीने में दो एक उपवास से शरीर शुद्ध हो जाय० गंगा जी नहाने जाते हैं तो पहिले पानी सिर पर चढ़ा कर तब पैर पर डालने का विधान क्यों है ? जिस में तलुए से गरमी सिर में चढ़ कर विकार न उत्पन्न करै० दीवाली इसी हेतु है कि इसी बहाने साल भर में एक बेर तो सफाई हो जाय० होली इसी हेतु है कि बसंत की बिगड़ी हवा स्थान स्थान पर अग्नि बलने से स्वच्छ हो जाय० यही तिहवार ही तुम्हारी म्युनिसिपालिटी है० ऐसे ही सब पर्व सब तीर्थ व्रत आदि में कोई हिकमत है० उन लोगों ने धर्मनीति और समाजनीति को दूध पानी की भांति मिला दिया है० खराबी जो बीच में भई है वह यह है कि उन लोगों ने ये धर्म क्यों मानने लिखे थे इस का लोगों ने मतलब नहीं समझा और इन बातों को वास्तविक धर्म मान लिया० भाइयो वास्तविक धर्म तो केवल परमेश्वर के चरणकमल का भजन है० ये सब तो समाज धर्म है० जो देश काल के अनुसार शोधे और बदले जा सकते हैं० दूसरी खराबी यह हुई कि उन्हीं महात्मा बुद्धिमान ऋषियों के वंश के लोगों ने अपने बाप दादों का मतलब न समझ कर बहुत से नए नए धर्म बना कर शास्त्रों में धर दिए० बस सभी तिथि व्रत और सभी स्थान तीर्थ हो गए० सो इन बातों को अब एक बेर आंख खोल कर देख और समझ लीजिए कि फलानी बात उन बुद्धिमान ऋषियों ने क्यों बनाई और उन में देश और काल के अनुकूल और उपकारी हों उनका ग्रहण कीजिए० बहुत सी बातैं जो समाजविरुद्ध मानी जाती हैं किन्तु धर्मशास्त्रों में जिन का विधान है उन को चलाइए। जैसा जहाज़ का सफ़र विधवाविवाह आदि० लड़कों को छोटेपन ही में ब्याह कर के उनका बल बीरज आयुष्य सब मत घटाइए० आप उनके मां बाप हैं या शत्रु हैं० वीर्य उन के शरीर में पुष्ट होने दीजिए नोन तेल लकड़ी की फिक्र करने की बुद्धि सीख लेने दीजिये तब उन का पैर काठ में डालिए० कुलीन प्रथा बहु बिवाह आदि को दूर कीजिए० लड़कियों को भी पढ़ाइये किन्तु इस चाल से नहीं जैसे आज कल पढ़ाई जाती हैं जिस से उपकार के बदले बुराई होती है० ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश और

कुल धर्म सीखैं पति की भक्ति करैं और लड़कों को सहज में शिक्षा दें० वैष्णव शाक्त इत्यादि नाना प्रकार के मत के लोग आपस का बैर छोड़ दें यह समय इन झगड़ों का नहीं हिन्दू, जैन, मुसल्मान सब आपस में मिलिये जाति में कोई चाहे ऊंचा हो चाहे नीचा हो सब का आदर कीजिए जो जिस योग्य हो उसे वैसा मानिए० छोटी जाति के लोगों का तिरस्कार करके उन का जी मत तोड़िए० सब लोग आपस में मिलिए० मुसल्मान भाइयों को भी उचित है कि इस हिन्दुस्तान में बस कर वे लोग हिन्दुओं को नीचा समझना छोड़ दें० ठीक भाइयों की भांति हिन्दुओं से बरताव करें ऐसी बात जो हिन्दुओं का जी दुखानेवाली हो न करैं० घर में आग लगै सब जिठानी द्यौरानी को आपस का डाह छोड़ कर एक साथ वह आग बुझानी चाहिए० जो बात हिन्दुओं को नहीं मयस्सर है वह धर्म के प्रभाव से मुसल्मानों को सहज प्राप्त है० उन में जाति नहीं, खाने पीने में चौका चूल्हा नहीं, विलायत जाने में रोक टोक नहीं० फिर भी बड़े ही सोच की बात है कि मुसल्मानों ने अभी तक अपनी दशा कुछ नहीं सुधारी० अभी तक बहुतों को यही ज्ञात है कि दिल्ली लखनऊ की बादशाहत कायम है० यारो वे दिन गए० अब आलस हठधरमी यह सब छोड़ो० चलो हिन्दुओं के साथ तुम भी दौड़ो एक एक दो होगे० पुरानी बातैं दूर करो० मीर हसन की मसनवी और इन्दरसभा पढ़ा कर छोटेपन ही से लड़कों को सत्यानाश मत करो० होश सम्हाला नहीं कि पढ़ी पारसी चुस्त कपड़ा पहना और गज़ल गुन गुनाए० "शौक तिफ्ली से मुझे गुल की जो दीदार का था० न किया हम ने गुलिस्तां का सबक़ याद कभी०" भला सोचो कि इस हालत में बड़े होने पर वे लड़के क्यौं न बिगड़ैंगे० अपने लड़कों को ऐसी किताबें छूने भी मत दो० अच्छी से अच्छी उनको तालीम दो० पिनशिन और वज़ीफा या नौकरी का भरोसा छोड़ो० लड़कों को रोजगार सिखलाओ० बिलायत भेजो० छोटे पन से मिहनत करने की आदत दिलाओ० सौ सौ महलों के लाड़ प्यार दुनिया से बेखबर रहने की राह मत दिखलाओ० भाई हिन्दुओ तुम भी मतमतान्तरों का आग्रह छोड़ो० आपस में प्रेम बढ़ाओ० इस महामंत्र का जप करो० जो हिन्दुस्तान में रहे चाहे किसी जाति किसी रंग का क्यौं न हो वह हिन्दू है० हिन्दू की सहायता करो० बंगाली, मरठा, पंजाबी, मदरासी, वैदिक, जैन, ब्राह्मणों, मुसलमान सब एक का हाथ एक पकड़ो० कारीगरी जिसमें तुम्हारे यहां बढ़ै तुम्हारा रूपया तुम्हारे ही देश में रहै वह करो० देखो जैसे हजार धारा हो कर गंगा समुद्र में मिली हैं वैसे ही तुम्हारी लक्ष्मी हजार तरह से इंगलैंड, फरासीस, जर्मनी, अमेरिका को जाती है० दीआसलाई ऐसी तुच्छ वस्तु भी वहीं से आती है० जरा अपने ही को देखो० तुम जिस मारकीन की धोती पहने हो वह अमेरिका की बनी है० जिस लकलाट का तुम्हारा अंगा है वह इंगलैंड का है० फरासीस की बनी कंघी से तुम सिर

झारते हो० और जर्मनी की बनी चरबी की बत्ती तुम्हारे सामने बल रही है० यह तो वही मसल हुई एक बेफिकरे मंगनी का कपड़ा पहिन कर किसी महफिल में गए० कपड़े को पहिचान कर एक ने कहा अजी अंगा तो फलाने का है दूसरा बोला अजी टोपी भी फलाने की है तो उन्होंने हंस कर जवाब दिया कि घर की तो मूछैं ही मूछैं हैं हाय अफसोस तुम ऐसे हो गए कि अपने निज की काम की वस्तु भी नहीं बना सकते० भाइयो अब तो नींद से चौंके अपने देस की सब प्रकार उन्नति करो० जिस में तुम्हारी भलाई हो वैसी ही किताब पढ़ो वैसे ही खेल खेलो वैसी ही बातचीत करो० परदेसी वस्तु और परदेसी भाषा का भरोसा मत रक्खो अपने देस में अपनी भाषा में उन्नति करो।

———

इशुखृष्ट और ईशकृष्ण

पाठक गण को स्मरण होगा कि भारतभिक्षा में "भारत भुजबल लहि जग रच्छित, भारत सिच्छा लहि जग सिच्छित" लिखा है, आज उसी का हम प्रमाण देना चाहते हैं। न्यायप्रियगण देखें कि जैसा भारतभिक्षा में कहा गया वह उचित है कि नहीं।

समाज की उन्नति का मूल धर्म है। जहां का धर्म परिष्कृत नहीं वहां कभी समाज-उन्नति नहीं। धर्म पर सब लोगों को ऐसा आग्रह रहता है, कि उस को साक्षात् परमेश्वर से उत्पन्न मानते हैं अतएव अन्य विषयों को छोड़ कर केवल धर्म पर हम विचार किया चाहते हैं और मुक्तकंठ हो कर कहते हैं कि संसार के धर्माचार्य मात्र ने भारतवर्ष की छाया अपने अपने ईश्वर, देवता, धर्मपुस्तक धर्मनीति और निज चरित्र निर्माण किया है। जितने धर्म प्रचलित हैं या प्रचलित थे वह सब या तो वैदिकों का अनुगमन हैं या बौद्धों का। यहां तक कि प्रसिद्ध ईश्वरवाची शब्द भी इसी से निकले हैं। अङ्गरेज़ो में परमेश्वर को गाड (God) कहते हैं। यह गौतम का नामान्तर है। उत्तर के देशों में गोतम को गोडमा कहते हैं, इसी से यह गाड शब्द बना। फारसी में मूर्तियों को बुत कहते हैं। यह शब्द बुद्ध से निकला है। हरम हर्म्य से, सनम शंभु से, दैर देवल से, देव देवता से और ऐसे ही देवतावाचक अनेक शब्द दूसरे दूसरों से।

यह सब जाने दीजिये सृष्टि के आरंभ से चलिये। भगवान् मनु लिखते हैं कि प्रथम सब जगत सुपुप्त था। फिर सर्वनियन्ता जगदीश्वर ने स्वशक्ति से प्रवेशपूर्वक उस को चैतन्य किया। यही यूनानियों के ऋषि केयस ने भी लिखा है। फिर परमात्मा ने अपनी प्रकृति रूपी परिणत शरीर से प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से चिन्ता किया कि 'कैसे सब होगा' और यह चिन्ता करके पहिले जल होय यह कह कर आकाशादि क्रम से जल सृष्टि किया। ओल्ड सिस्टेम (बाइबिल) के जिनिसिस के प्रथम अध्याय को इस से, वहां भी यही है। फिर परमात्मा ने जल से ब्रह्मा उत्पन्न किया उस ने आकाश पृथ्वी स्वर्गादि निर्माण किया और महत्तत्व अहङ्कार गुण आदि की क्रम से सृष्टि हुई और उससे मनुष्य पशु पक्षी स्थावरादि उत्पन्न हुए। फिर प्राणविशिष्ट इन्द्रादि देवगण और कर्महेतुक पाषाणमय देवगण और साध्य नामक सूक्ष्म देवगण और अग्निष्टोमादि यज्ञ बनाये गये।*

---

* See Plato's Theology Concerning Spiritual Nature.

अङ्गरेजी और यूनानी फिलासिफी में इस बात की छाया देख लीजिये। फिर वेद क्रिया काल ग्रह उन्नत अवनत स्थान तप सन्तोष इच्छा आदि की सृष्टि हुई फिर कर्तव्य अकर्तव्य कर्म्म के विभाग के हेतु धर्म्म अधर्म्म की सृष्टि हुई। धर्म्म का फल सुख और अधर्म्म का दुःख। (अब महाभारत के आदि पर्व में धर्म्म अधर्म्म की सृष्टि वर्णन इस मनु कथित सृष्टि की तुलना कर के उस से मिल्टन के मृत्यु विषयक प्रस्ताव मिला कर पढ़ो।) फिर पंच महाभूतों के सूक्ष्म अंश और स्थूल अंश से जगत की सृष्टि हुई। (मिल्टन की ५वीं पुस्तक में स्वर्गच्युति के गल्प से इसे मिलाओ।) फिर मानव सृष्टि हुई और आत्मा को उस के देहों में प्रवेश का अधिकार दिया गया और एक को छोड़ कर दूसरे में गमन का भी (इस से सिद्ध होता है कि Transmigration of Soul के प्रगट कर्त्ता भी मनु ही हैं।)

ऐसे ही संसार के सब देवता भी भारतवर्ष ही के देवगण की छाया हैं। मिनर्वा नाम्मा यूरोप की प्राचीन देवी हम लोगों की भगवती दुर्गा हैं। मिनर्वा इन्द्र के कन्धों से प्रगटी है यहां भी दुर्गा देवताओं के अंश (अंश कन्धे को भी कहते हैं) से प्रादुर्भूत हुई हैं। मिनर्वा भी सब शस्त्रों को लिये जन्मी हैं और दुर्गा भी, मिनर्वा युद्ध की देवी है दुर्गा भी। मिनर्वा शनिश्चर से लड़ी है दुर्गा महिषासुर से (महिषासुर और शनैश्चर में सादृश्य यह है कि शनैश्चर महिषवाहन है और महिषासुर महिष रूप)। मिनर्वा और दुर्गा दोनों सिंहवाहिनी हैं मिनर्वा के एक हाथ में भाला दूसरे में मदुस का सिर है (यह मदुस शब्द मधु वा महिष से निकला होगा) और दुर्गा का भी यही ध्यान है। मिनर्वा का दूसरा ध्यान कटे सिर का मुकुट पहिने और सर्प लपेटे है और दुर्गा का भी। मिनर्वा को मुर्गे प्यारे हैं यहां देवी को भी कुक्कुट बलि दिया जाता है।

अब अपेल्ली को लीजिये। यह हिन्दुओं के श्रीकृष्ण का चित्र है। इसका सूर्य में निवास है और यहां भी नारायण का सूर्य में निवास है। इस नाम के चार देवता थे और यहां भी श्रीकृष्ण के चार व्यूह हैं। उस ने पाइथन नामक सर्प को मारा और यहां भी कालिया दमन हुआ। वहां वह शिल्प, औषध, गान, काव्य और रस का देवता है और यहां भी। उसका ध्यान सुन्दर युवा, लम्बे केश और हाथ में कभी धनुष कभी बन्शी लिये है और यहां भी। वह पर्वत पर नव मित्रों के साथ विहार करता था यहां गिरिराज पर नव गोपियों के साथ विहार है।

वैसे ही जुपिटर* इन्द्र है। और इन दोनों को देवराजत्व प्राप्त है। यहां इस

---

* यद्यपि योरप वालों ने हमारे देवताओं के चरित्र का बहुत अनुकरण किया

को अपने भाई टिटन्स का डर था वहां हिरण्यकशिपु का। इन्द्र भी बड़ा लंपट है और जुपिटर भी। जुपिटर का ध्यान सोने के सिंहासन पर बिजली हाथ में लिये हुये मेघों पर शासन करते हुये है; और यहां भी वज्रहस्त है। किन्तु जुपिटर के चरित्र में श्रीकृष्ण के बहुत से चरित्र मिला दिये हैं।*

केवल यूरोप के मूर्त्तिपूजकों पर ही नहीं नये सम्प्रदाय वालों की भी यही दशा है। ग्रेबिल (जिब्रईल) गरुड़ का अपभ्रंश है और गरुड़-जैसे परमेश्वर के सब से उत्तम पार्षदों में है वैसे ही जिब्रईल उत्तम फरिश्तों में। वरंच फरिश्ता शब्द ही पार्षद का अपभ्रंश है। जिब्रईल का ईश्वर की आज्ञा ला कर मत-प्रवर्त्तक होने का उदाहरण भी रामानुज सम्प्रदाय में देख लीजिये। क्रिस्तानों में एक आचार्य्य जोसफेट करनेल हैं और यह महात्मा शाक्यसिंह की प्रतिमूर्त्ति हैं। दोनों के पिता राजा, दोनों के जन्म के पूर्व्व ज्योतिषियों ने कहा था कि यह या तो बड़ा प्रतापी राजा होगा या धार्म्मिक। दोनों के पिता ने चेष्टा किया कि जिस में पुत्र सन्यासी न हो और उन को रम्य उद्यान में रक्खा किन्तु संसार की असारता जान कर दोनों ही सन्यासी हो गये और दोनों अपने पिता को नये धर्म्म से दीक्षित किया। सब से ऊपर आनन्द की बात यह है जान, जो मनुष्य जोज़फेट का माहात्म प्रचारक है, लिखता है कि जोज़फेट भारतवर्ष में हुआ और हिन्दुस्थान से आये विश्वस्त लोगों से हम ने उस का चरित्र सुना। अब बतलाइये जोज़फेट शाक्यसिंह ही का नामान्तर है कि नहीं।†

धर्म्म ही पर नहीं नीति सम्बन्धी भी यावत् गल्प मात्र इसी भारतवर्ष से फैल कर और स्थानों में गई हैं। विलसन साहब लिखते हैं—कि केयस नगर के घोड़ा का उपाख्यान भारतवर्ष में भी प्रचलित है किन्तु भेद इतना है कि भारतवर्ष में घोड़ा हाथी के स्वरूप में हैं। उर्दू किताबों का यह किस्सा अत्यन्त प्रसिद्ध है कि टके की मुर्गी लेंगे, तब उस को अण्डे बच्चे होंगे तो उन को बेच कर बकरी लेंगे, उस को बच्चे होंगे तो उन को बेंच कर घोड़ी लेंगे, उस को बच्चे होंगे तो उस से रोजगार करेंगे, रुपया पैदा होगा तब बादशाह की बेटी से शादी करेंगे जब वह

है तथापि उन के देवताओं के वंश में बड़ा गड़बड़ है इस से वंश परम्परा को मिलान न कर के केवल चरित्र मात्र का यहां उदाहरण दिया है।

* दिव धातु से देववाची शब्द संसार में प्रसिद्ध है। भारत के इन्द्र देव व देवेन्द्र और युनान में दियस वा जियस। दोनों वज्रपाणि वारिदाता दाम्भिक पर्व्वत-वासी और विलाससुखभोगी और एक वृत्रदानवहन्ता दूसरे टाइटस-दानवहन्ता।

† See Professor Max Muller's Sanskrit Literature.

शर्वत पिलाने आवेगी और खड़ी हो कर विनती कर के कहेगी कि मेरे प्यारे दूध पाओ तो हम एक लात मारेंगे, यह कह कर लात जो चलाया तो बरतन फूट गए। इसी से मसल निकली है कि तुम्हारा तो बर्तन फूटा हमारी गृहस्थी ही खराब हो गई। अंग्रेजी में इस गल्प को और तरह से कहते हैं। फरासीस में लाफेन्टन कवि ने इस को पैरट गोपिनी के नाम से लिखा है जिस ने पूर्व की भांति सोचते सोचते अपना दधिभाजन फोड़ डाला। संसार की और भाषाओं में भी रूपान्तर से यह गल्प प्रसिद्ध है।

परन्तु इस का मूल कहां है? भारतवर्ष में। पञ्चतन्त्र देखिये उस में यह क़िस्सा स्वभाव कृपण नामक ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध है, और हितोपदेश में देवशर्मा के नाम से। एक विद्वान् ने लिखा है कि ब्राह्मण से एक साधारण चर्म्म-विक्रेता वा कुम्भकार इत्यादी नाम हुआ। अन्त में जयसुरसिक लाफेण्टन ने इस गल्प को लिखा तो उस शुष्क ब्राह्मण के स्थान पर नवयोवना ग्वालिनी को पुस्तक में स्थान दिया। अब कहिये कि कैसे संस्कृत वेश त्याग कर यह सब क़िस्से और भाषा में हुये और इतनी दूर पहुंचे। इन छोटे छोटे किस्सों में एक ऐसी संजीवनी शक्ति है कि राज्य और धर्म्म का हेर फेर हो जाय और भाषा का परिवर्त्तन हो जाय परन्तु यह सब छोटी छोटी गल्प बालकों और मुग्ध स्त्रियों के मुख द्वारा एक ही रूप से अनेक सहस्र कोश तक प्रचलित रहेंगे। महात्मा मोक्षमूलर लिखते हैं "उन्नीसवीं शताब्दी में इस खीष्ट धर्म्म प्रधान देश में हम लोग अपने बालकों को जो ऐहिक और पारलौकिक ज्ञान की गल्पों में शिक्षा देते हैं वह धर्म्मविरोधी ब्राह्मणों और बौद्धों की पौत्तलिक धर्म्म की पुस्तकों से संग्रहित हैं। अब इस बात को कोई न मानेगा किन्तु हजार दो हजार बरस पहले भारतवर्ष के किसी निर्जन वन और क्षुद्र पल्लियों में भ्रमण करने ही से यह सत्य बीज प्राप्त होता, जो अब समस्त पृथ्वी में विस्तृत है और सरस बालकों के हृत्क्षेत्र में सदा लहलहाता रहेगा। बड़े बड़े विद्वान् भी किसी अपनी नीति को इस सुरीति पर सर्वहृदयग्राही और चिरस्थायी नहीं कर सके हैं जैसा कि इन गल्प रचयिताओं ने सहज हृदयग्राही रचना की है। किन्तु ये बुद्धिमान लोग कौन थे यह ज्ञात नहीं और संसार के और और मानवोपकारियों की भांति विस्मृति देवी के अपार उदर में यह भी शयन करते हैं। यदि दो सहस्र वर्ष पूर्व कोई भारतवर्ष में जाता तो ये महात्मा लोग मिलते। अब केवल हम यही कह सकते हैं कि यह अति चातुर्य्य उन्हीं लोगों का है जिन को अब कोई कोई निगरो पुकारते हैं।"

साहित्यिक निबंध

१. सरयूपार की यात्रा
२. मेंहदावल की यात्रा
३. लखनऊ की यात्रा
४. हरद्वार की यात्रा
५. वैद्यनाथ की यात्रा
६. ग्रीष्म ऋतु
७. हिंदी भाषा
८. दिल्ली दरबार दर्पण

[इस खंड में भारतेंदु हरिश्चंद्र के वे निबंध संकलित हैं जिन्हें शुद्ध साहित्य की संज्ञा दी जा सकती है। भारतेंदु का देशपर्यटन बड़ा विस्तृत था। इन यात्रासंबंधी लेखों से जहाँ एक ओर उनकी सैलानी प्रकृति का परिचय मिलता है वहाँ उनके सूक्ष्म निरीक्षण की प्रवृत्ति का भी पता चलता है। भारतेंदु की अनुभववृद्धि में ये यात्राएँ बड़ी सहायक रही हैं।

भारतेंदु के समान इन लेखों की भाषा भी स्वच्छंद विचरण के लिए निकली है। उसका चलतापन और अभिव्यंजन-शक्ति द्रष्टव्य है, इसके साथ ही प्रकृति का जो चित्रण हुआ है उससे इस बात का भी आभास मिलता है कि वे मुक्त प्रकृति के भी प्रेमी थे।

'ग्रीष्म ऋतु' लेख में प्रकृति-वर्णन के साथ भारतेंदु की व्यापक सहानुभूति के दर्शन भी होते हैं। आधुनिक युग में प्रचलित 'मानवतावाद' से इसकी तुलना लाभदायक होगी।

'हिंदी भाषा' निबंध में भारतेंदु-युग के भाषाविवाद की झाँकी सुरक्षित है। इस लेख में भारतेंदु ने भाषा की समस्या पर जो अपना मंतव्य प्रकट किया है वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसके साथ ही तत्कालीन प्रचलित शैलियों के जो रूप उन्होंने प्रस्तुत किए हैं उनसे भारतेंदु का भाषाधिकार प्रकट हो जाता है।

'दिल्ली-दरबार-दर्पण' भारतेंदु का वर्णनात्मक शैली में लिखा गया लेख है। दरबार की तड़क-भड़क के बीच उनके हास्य और सूक्ष्म व्यंग की प्रवृत्ति भी लक्षित होती है।]

सरयूपार की यात्रा।

(हरिश्चन्द्र चंद्रिका Vol. 6 No. 8. P. 11-20. Feb. 1879)

अयोध्या

कल सांझ को चिराग जले रेल पर सवार हुए ० यह गए वह गए ० राह में स्टेशनों पर बड़ी भीड़ ० न जानै क्यों? और मज़ा यह कि पानी कहीं नहीं मिलता था ० यह कम्पनी मजीद के खानदान की मालूम होती है कि ईमानदारों को पानी तक नहीं देती ० या सिप्रस का टापू सर्कार के हाथ आने से और शाम में सर्कार का बंदोवस्त होने से यह भी शामत का मारा शामी तरीका अखतियार किया गया है कि शाम तक किसी को पानी न मिलै ० स्टेशन के नौकरों से फर्याद करो तो कहते हैं कि डाक पहुंचावै रोशनी दिखलावै कि पानी दे ० खैर जों तों कर अयोध्या पहुंचे ० इतना ही धन्य माना कि श्रीरामनवमी की रात अयोध्या में कटी ० भीड़ बहुत ही है ० मेला दरिद्र और मैले लोगों का ० यहां के लोग बड़े ही कङ्गली टर्रे हैं ० इस—दोपहर को अब उस पार जाते हैं ० ऊंटगाड़ी यहां से पांच कोस पर मिलती है।

" केम्प हरैया बाज़ार "

आज तक तीन पहर का समय हो चुका है० और सफर भी कई तरह का और तकलीफ देने वाला ० पहिले सरा से गाड़ी पर चले ० मेला देखते हुए राम घाट की सड़क पर गाड़ी से उतरे ० वहां से पैदल धूप में गर्म रेती में सरजू के किनारे गुदाम घाट पर पहुंचे ० वहां से मुश्किल से नाव पर सवार हो कर सरजू पार हुए० वहां से बेलवां जहां डाक मिलती है और शायद जिसका शुद्ध नाम बिल्व ग्राम है दो कोस है ० सवारी कोई नहीं न राह में छाया के पेड़ न कूआं न सड़क हवा खूब चलती थी इस से पगडण्डी भी नहीं नज़र पड़ती बड़ी मुश्किल से चले और बड़ी ही तकलीफ हुई ० खैर बेलवां तक रो रो कर पहुंचे, वहां से बैल की डांक पर ९ बजे रात को यहां पहुंचे ० यहां पहुंचते ही हरैया बाज़ार के नाम से यह गीत याद आया " हरैया लागल झबिआ केरे लैहैं ना " शायद किसी जमाने में यहां हरैया बहुत बिकती होगी ० इस के पास ही मनोरमा नदी है ० मिठाई हरैया की तारीफ के लायक है ० बालूशाही सचमुच बालूशाही भीतर काठ के टुकड़े भरे हुए ० लड्डू भूर के, बरफी अहा हा हा ! गुड़ से भी बुरी ० खैर लाचार हो कर चने पर गुजर की ० गुजर गई गुजरान क्या झोपड़ी क्या मैदान ० बाकी हाल कल के खत में ॥

बस्ती।

परसों पहिली एप्रिल थी इस से सफ़र कर के रेलों में बेवकूफ़ बनने का और तकलीफ़ से सफ़र करने का हाल लिख चुके हैं ० अब आज आठ बजे सुबह रें रें कर के बस्ती से पहुंचे० वाह रे बस्ती ० झख मारने को बसती है अगर बसती इसी को कहते हैं तो उजाड़ किस को कहैंगे० सारी बस्ती में कोई भी पण्डित बस्तीराम जो ऐसा पण्डित नहीं, खैर अब तो एक दिन यहां बसति होगी ० राह में मेला खूब था ० जगह जगह पर शहाब का शहाबा ० चूल्हे जल रहे हैं० सैकड़ों अहरे लगे हुए हैं कोई गाता है कोई बजाता है कोई गप हांकता है ० रामलीला के मेले में अवध प्रान्त के लोगों का स्वभाव, रेल, अयोध्या और इधर राह में मिलने से खूब मालूम हुआ ० वैसवारे के पुरुष अभिमानी रूखे और रसिकमन्य होते हैं रसिकमन्य ही नहीं वीरमन्य भी पुरुष सब पुरुष और सभी भीम सभी अर्जुन सभी सूत पौराणिक और सभी वाजिदअली शाह० मोटी मोटी बातों को बड़े आग्रह से कहते सुनते हैं ० नई सभ्यता अब तक इधर नहीं आई है ० रूप कुछ ऐसा नहीं पर स्त्रियाँ नेत्र नचाने में बड़ी चतुर ० यहाँ के पुरुषों की रसिकता मोटी चाल सुरती और खड़ी मोछ में छिपी है और स्त्रियों की रसिकता मैले वस्त्र और सूप ऐसे नथ में ० अयोध्या में प्रायः सभी स्त्रियों के गोल गाते हुए मिले ० उन का गाना भी मोटी सी रसिकता का ० मुझे तो उन की सब गीतों में "बोलो प्यारी सखियां सीता राम राम राम" यही अच्छा मालूम हुआ० राह में मेला जहां पड़ा मिलता था वहां बारात का आनंद दिखलाई पड़ता था ० खैर मैं डांक पर बैठा बैठा सोचता था कि काशी में रहते तो बहुत दिन हुए परन्तु शिव आज ही हुए क्यों कि वृषभवाहन हुए ० फिर अयोध्या याद आई कि हा ! वही अयोध्या है जो भारतवर्ष में सब से पहले राजधानी बनाई गई ० इसी में महाराजा इक्ष्वाकु मान्धाता हरिश्चन्द्र दिलीप अज रघु श्रीरामचन्द्र हुए हैं और इसी के राजवंश के चरित्र में बड़े २ कवियों ने अपनी बुद्धि शक्ति की परिचालना की है ० संसार में इसी अयोध्या का प्रताप किसी दिन व्याप्त था और सारे संसार के राजा लोग इसी अयोध्या की कृपाण से किसी दिन दबते थे वही अयोध्या अब देखी नहीं जाती ० जहां देखिये मुसलमानों की कब्रैं दिखलाई पड़ती हैं ० और कभी डांक पर बैठे रेल का दुख याद आ जाता कि रेलवे कम्पनी ने क्यों ऐसा प्रबन्ध किया है कि पानी तक न मिलै ० एक स्टेशन पर एक औरत पानी का डोल लिये आई भी तो गुपला गुपला पुकारती रह गई जब हम लोगों ने पानी मांगा तो लगी कहने कि 'रहः हो पानियै पानी पड़ल हौ' फिर कुछ जियाद जिद में लोगों ने मांगा तो बोली 'अब हम गारी देब' वाह क्या इन्तजाम था ० मालूम होता है कि रेलवे कम्पनी स्वभाव Nature की बड़ी शत्रु है क्यों कि जितनी बातैं

स्वभाव से सम्बन्ध रखती हैं अर्थात् खाना पीना सोना मलमूत्र त्याग करना इन्हीं का इस में कष्ट है ० शायद इसी से अब हिन्दोस्तान में रोग बहुत हैं ० कभी सरा के खाट के खटमल और भटियारियों का लड़ना याद आया ० यही सब याद करते कुछ सोते कुछ जागते हिलते हिलते आज बस्ती पहुंच गये ० बाकी फिर यहां एक नदी है उसका नाम कुआनम ० डेढ़ रूपया पुल का गाड़ी का महसूल लगा ०

बस्ती के जिले के उत्तर सीमा नेपाल पश्चिमोत्तर की गोड़ा पश्चिम दक्षिण अयोध्या और पूरब गोरखपुर है० नदियां बड़ी इस में शरयू और इरावती शरयू के इस पार बस्ती उस पार फैजाबाद ० छोटी नदियों में कुनेय मनोरमा कठनेय आमी बानगंगा और जमतर हैं ० बरकरा ताल और जिरजिरवा दो बड़ी झील भी हैं ० बांसी बस्ती और मकहर तीन राजा भी हैं ० बस्ती सिर्फ चार पांच हजार की बसती है पर जिला बड़ा है क्यों कि जिले की आमदनी चौदह लाख है० साहब लोग यहां दस बारह हैं उतने ही बंगाली हैं० अगरवाला मैं ने खोजा एक भी न मिला सिर्फ एक है वह भी गोरखपुरी है ० पुरानी बस्ती खाई के बीच बसी है ० राजा के महल बनारस के अर्दली बाजार के किसी मकान से उमदा नहीं ० महल के सामने मैदान पिछवाड़े जङ्गल और चारों ओर खाई है ० पांच सौ खटिकों के घर महल के पास हैं जो आगे किसी जमाने में राजा के लूट मार के मुख्य सहायक थे ० अब राजा के स्टेट के मनेजर कूक साहब हैं ०।।

यहां के बाजार का हम बनारस के किसी भी बाजार से मुकाबिला नहीं कर सकते ० महज बहैसियत महाजन एक यहां है वह टूटे खपड़े में बैठे थे ० तारीफ यह सुना कि साल भर में दो बार कैद होते हैं क्यों कि महाजन का जाल करना फर्ज है और उस को भी छिपाने का शऊर नहीं ० यहां का मुख्य ठाकुरद्वारा दो तीन हाथ चौड़ा उतना ही लम्बा और उतना ही ऊंचा बस ० पत्थर का कहीं दर्शन भी नहीं है० यह हाल बस्ती का है ० कल डाक ही नहीं मिली कि जांय ० मेंहदावल को कच्ची सड़क है इस से कोई सवारी नहीं मिलती आज कहार ठीक हुए हैं ० भगवान ने चाहा तो शाम को रवाना होंगे ० कल तो कुछ तबीअत भी घबड़ा गई थी इस से आज खिचड़ी खाई ० पानी यहां का बड़ा बातुल है ० अकसर लोगों का गला फूल जाता है आदमी ही का नहीं कुत्ते और सुग्गे का भी ० शायद गलाफूल कबूतर यहीं से निकले हैं ० बस अब कल मिंहदावल से खत लिखेंगे ।।

मेंहदावल।

आज सुबह सात बजे मेंहदावल पहुंचे ० सड़क कच्ची है राह में एक नदी भी उतरनी पड़ती है उसका नाम आमी है ० छ आना पुल का महसूल लगा रात को ग्यारह बजे पालकी पर सवार हुए० बदन खूब हिला० अन्न भी नहीं पचा० इस वक्त यहां पड़े हैं ० यहां मक्खी बहुत हैं और आजादी बहुत है ० दो लड़कों के स्कूल हैं और एक लड़कियों का स्कूल है और एक डाक्तर खाना है ० बस्ती शहर है मगर उस से यह मेंहदावल गांव बहुत ही आबाद है ० फैजाबाद से ५॥) बस्ती तक डांक का लगा और बस्ती से मेंहदावल तक ३॥) पालकी का ० अभी एक गंवार भाट आया था बेतरह बका फूहर औरतों की तारीफ में एक बड़ा भारी पचड़ा पढ़ा ० यहां गरमी बहुत है और मक्खियां लखनऊ से भी जियादा ० दिन को बड़ी बेचैनी है० ॥

यहां की औरतों का नाम श्यामतोला, रामतोला, सामतोला, मनतोरा इत्यादि विचित्र विचित्र होता है और नारङ्गी को भी यही श्यामतोला कहते हैं सङ्गतरा का अपभ्रंश मालूम होता है क्योंकि यहीं के गंवार सन्तोला कहते हैं यहां सब नाऊ बड़े पण्डित थे ० इन से किसी पण्डित ने प्रश्न किया 'कि दूध (तुम कौन जात हो)' तब नाई ने जवाब दिया। -'चरपटाक चरपटाक (नाई)' तब ब्राह्मण ने कहा 'तू दूर' (तुम दूर जाओ) तब नाई ने जवाब दिया 'कि छौट (तब मूड़ कौन मूड़ैगा)' ० एक का बाप डूब कर मर गया उसके बाप का पिण्डा इस मन्त्र से कराया गया 'आर गङ्गा पार गङ्गा बीच में पड़ गई रेत ० तहां मर गए गाय का चले बुजबुजा देत० घर दे पिण्डवा ॥

कुछ फुटकर हाल भी यहां का सुन लीजिये० कल मजहब का हाल हम ने नीचे लिखा था उसका अच्छी तरह से हाल दर्याफ्त किया तो मालूम हुआ कि हमारे मजहब की शाखा है ० उनके ग्रन्थों में हम ने एक श्लोक श्री महाप्रभु जी की श्री सुबोधिनी का देखा इसी से हम को संदेह हुआ फिर हम ने बहुत खोद खोद कर पूछा तो यह साफ मालूम हुआ कि इसी मत से यह मत निकला है क्योंकि एक बात वह और बोले कि हमारा मत श्री बल्लभाचारज की टीका में लिखा है ० इन लोगों के उपास्य श्री कृष्ण हैं और एकादशी शालग्राम मूर्त्ति पूजा तीर्थ किसी को नहीं मानते ० उनके पहिले आचार्य देवचन्द जी थे जो जात के कायथ थे और दूसरे प्राणनाथ जी जो कच्छ के छत्री (भाटिया) थे ० हमारे ही मत की शाखा सही पर विचित्र Reformed मत है वैष्णव होकर मूर्त्ति पूजा का खण्डन करने वाले वही लोग सुने ॥

यहां बूढ़े को खबीस, व्रत को वेनीराम, भोजन को बुलनी,* जात को दूध० ऐसे ही अनेक विचित्र विचित्र बोली हैं ॥

गांव गन्दा बड़ा है और लोग परले सिरे के बेवकूफ० यहां से चार मील पर एक मोती झील वा बखरा ताल नामक झील है दर हकीकत देखने के लायक है० कई कोस लम्बी झील है और जानवर तरह तरह के देखने में आते हैं० पहाड़ से चिड़ियां हजारों की तरह की आती हैं और मछली भी इफरात० पेड़ों पर बन्दर भी० मेंहदावल में कोई चीज़ भी देखने और लेने लायक नहीं० जहां देखो वहां गन्दगी० लोग बज्र मूर्ख० क्षत्री ब्राह्मण जियादा० एक यहां प्राननाथ का मजहब है और दस बीस लोग उसके मानने वाले हैं ० ये लोग एकादशी तीर्थ वगैरह को नहीं मानते और कहीं से सुने सुनाये दो तीन श्लोक जो याद कर लिए हैं बस उसी पर चूर हैं ० 'मदीनास्थां शारदां शतं' और 'गोविन्दं गोकुलानदं मक्केश्वरं' यह श्लोक पद के कहते हैं कि वेद में मक्के मदीने का वर्णन है ० ऐसे ही बहुत वाहियात बात कहते हैं और कोई कितना भी कहै कुछ सुनते नहीं ० कहते हैं कि गोलोक का नाश है और गोलोक के ऊपर एक अखण्ड मण्डलाकार लोक है इसमें गोरे कृष्ण हैं ० इनका मजहब प्राणनाथ नामक एक खत्री ने पन्ना में करीब तीन सौ बरस हुए चलाया था ० यहां चैत सुदी भर रात को औरतें जमा होकर माता का गीत गाती हैं और बड़ा शोर करती हैं ० असभ्य बकती हैं ० व्यभिचार यहां बेतकल्लुफ है ० सरयूपार के ब्राह्मण बड़े विचित्र हैं मांस मछली सब खाते हैं ० कूएं के जगत पर एक आदमी जो पानी भरता हो दूसरा आदमी चला आवै तो अपना घड़ा फोड़ डालै और उस से घड़े का दाम ले ० घड़ा कोई कहै तो घड़ा छू जाय क्योंकि घड़ा मुसल्मानी लफ्ज है० दाल कहै तो छू जाय क्योंकि दाल मुसल्मानी है० सूरज वंशी क्षत्री राजा बाबू को छाता नहीं लगता है क्योंकि वे तो सूरज वंशी हैं सूरज से क्या छाता लगावैं० नेम बड़ा धर्म बिल्कुल नहीं० एक ब्राह्मण ने कोहार से नई सनहकी मोल ली लेकर उस में पूरी बना कर खाया इस से वह जात से निकाल दिया गया क्योंकि जैसे बरतन में मुसलमान खाना बनावै उस आकार के बरतन में इस ने हिन्दू होकर खाना बनाया० हहा हा ! और मज़ा यह कि ताजिये को सब मानते हैं० मेंहदावल में एक थाना है थानेदार यहां के बादशाह हैं० एक डाक्तरखाना भी है० यह बड़ा सर्कार का पुन्य है बस हम को तो सर्कार के पुन्य में कसर यही मालूम होती है कि पुलों पर महसूल लिया जाता है क्यों कि भला नाव या ऐसे पुल पर महसूल लगै तो ठीक है जिस की हर साल मरम्मत हो पक्के पर भी महसूल० बस्ती में अगरवाला नहीं एक हैं सो जूता उतार कर लापची खाते हैं० मेंहदावल में एक अगरवाले हैं० मुसल्मान फर्श पर वहां नहीं बैठते हैं० पिण्डारे जिन को इस जिले में जमीन मिली है अब नवाब हो गए हैं और उन की

मुस्तैदी आराम से बदल गई है० यहां कहीं कहीं घारू लोगों का रक्खा सोना खोदने से मिलता है० यहां के बाबू ऐसे हैं कि बंगला गिर पड़ा पर जूता उलटा था खिदमतगार को पुकारा वह न आया इस से आप वहां से न चले और दबकर मर गए ॥

गोरखपुर

अहो बरनि नहिं जात है आजु लह्यो जो खेद ।
आतप उष्मा वायु सों चल्यो नखन सों स्वेद ॥
प्रिय दुरगा परसाद गृह ठहरे हैं इत आय ।
बाट बिलोकत दुष्ट की रहे इतहि विलगाय ॥
आवत ह्वै है दुष्ट सो लीने नग निज साथ ।
पै निरख्यौ जो खोट तो रहि हैं हम धुनि माथ ॥
करम लिखी सो होय है यामै कछु न संदेह ।
वृथा लोभ बस लोग सब छांड़त सुख मैं गेह ॥
करम कमण्डल कर गहे तुलसी जहं जहं जाय ।
सरिता सागर कूप जल बूंद न अधिक समाय ॥
तऊ सोच बधु नहि करिय मम प्रभु मङ्गल धाम ।
करिहैं सब कल्यान ही यामैं कछु न कलाम ॥
रजिस्टरी को पत्र एक गयो होइहै तत्र ।
ताहि जतन करि राखिहौ फिरि नहिं आवै अत्र ॥
जेहि छन सो खल आइहै ताही छन दिखराइ ।
ताहि तुरन्तहि लौटिहैं तितहि पहुंचिहै आइ ॥
तित प्रबन्ध सब राखिहौ रहिहौ है हुसियार ।
कीजौ रच्छा अंग की करि उपाय हर बार ॥
आवत हैं हम वेगि ही यामै संसय नाहिं ।
अति व्याकुलता तित बिना मेरे हू जिय माहि ॥
प्रतिपद माघ की प्रथम रस शिवदृग ग्रहचन्द ।
संबत मङ्गल के दिवस लिख्यौ पत्र हरिचन्द ॥

लखनऊ।

(कविवचनसुधा Vol. 2 No. 22 श्रावण कृष्ण ३० सं० १९२८ P. 173)

श्रीमान क० व० सु० सम्पादक महोदयेषु

मेरे लखनऊ गमन का वृत्तान्त निश्चय आप के पाठकगणों को मनोरञ्जक होगा।

कानपुर से लखनऊ आने के हेतु एक कम्पनी अलग है इसका नाम अ० रू० रे० कम्पनी है इस्का काम अभी नया है और इस के गार्ड इत्यादिक सब काम चलाने वाले हिन्दुस्तानी है स्टेशन कान्हपूर का तो दरिद्र सा है पर लखनऊ का अच्छा है लखनऊ के पास पहुंचते ही मसजिदों के ऊंचे २ कंगूर दूर ही से दिखाते हैं, परन्तु नगर में प्रवेश करते ही एक बड़ी विपत आ पड़ती है वह यह है कि चुङ्गी के राक्षसों का मुख देखना होता है हम लोग ज्यों ही नगर में प्रवेश करने लगे जमदूतों ने रोका सब गठरियों को खोल खोल के देखा जब कोई वस्तु न निकसी तब अगूठियों पर (जो हम लोगों के पास थी) आ झुके बोले इस्का महसूल दे जाओ हम लोग उतर के चौकी पर गए वहां एक ठिंगना सा काला रूखा मनुष्य बैठा था नटखटपन उस के मुखरे से बरसता था मैंने पूछा क्यौं साहब बिना बिकरी की वस्तुओं पर भी महसूल लगता है बोले हां। कागज देख लीजिए छपा हुआ है मैंने कागज देखा उसमें भी यही छापा था मुझे पढ़ के यहां की गवर्न्मेंट के इस अन्याय पर बड़ा दुख हुआ मैंने उन से पूछा कि कहिये कितना महसूल दूं आप नाक और गाल फुला के बोले कि मैं कुछ जवहिरी नहीं हूं कि इन अगूठियों का दाम जानूं मोहर कर के गोदाम को भेजूंगा वहां सुपरेंडेन्ट साहब सांझ को आकर दाम लगावैंगे मैं ने कहा कि सांझ तक भूखों कौन मरैगा बोले इस से मुझे क्या कहां तक लिखूं इस दुष्ट ने हम लोंगों को बहुत छकाया अन्त में मुझे क्रोध आया तब मैंने उस को नृसिंह रूप दिखाया और कहा कि मैं तेरी रिपोर्ट करूंगा पहिले तो आप भी बिगड़े पीछे ढीले हुए बोले अच्छा जो आप के धरम में आवै दे दीजिए तीन रूपये देकर प्राण बचे तब उनके सिपाहियों ने इनाम मांगा मैं ने पूछा क्या इसी घंटों दुख देने का इनाम चाहिए किसी प्रकार इस विपत से छूट कर नगर में आए। नगर पुराना तो नष्ट हो गया है जो बचा है वह नई सड़क से इतना नीचा है कि पाताल लोक का नमूना सा जान पड़ता है मसजिद बहुत सी हैं गलियां सकरी और कीचड़ से भरी हुई बुरी गन्दी दुर्गन्धमय। सड़क के घर सुथरे बने हुए हैं नई सड़क बहुत चौड़ी और अच्छी है जहां पहिले जौहरी

बाज़ार और मीनाबाज़ार था वहां गदहे चरते हैं और सब इमामबाड़ों में किसी में डाकघर कहीं अस्पताल कहीं छापाखाना हो रहा है रूमी दर्वाजा नवाब आसिफुद्दौला की मसजिद और मच्छीभवन का सर्कारी किला बना है बेदमुश्क के हौजों में गोरे मूतते हैं केवल दो स्थान देखने योग्य बचे हैं पहिला हुसैनाबाद और दूसरा केसर बाग़। हुसैनाबाद के फाटक बाहर एक षट्कोण तालाब सुंदर बना है और एक बारहदरी भी उसके ऊपर है और हुसैनाबाद के फाटक के भीतर एक नहर बनी है और बाईं ओर ताजगंज का सा एक कमरा बना हुआ है वह मकान जिस्में बादशाह गड़े हैं देखने योग्य है बड़े बड़े कई सुंदर झाड़ रक्खे हुए हैं और इस हुसैनाबाद के दीवारों में लोहे के गिलास लगाने के इतने अंकुड़े लगे हैं कि दीवार काली हो रही है केसर बाग भी देखने योग्य है सुनहरे शिखर धूप में चमकते हैं बीच में एक बारादरी रमणीय बनी है और चारों ओर अनेक सुन्दर २ बंगले बने हैं जिस्का नाम लंका है उस्में कचहरी होती है और औध के तअल्लुकेदारों को मिले हैं जहां मोती लुटते हैं वहां धूल उड़ती है यहां एक पीपल का पेड़ श्वेत रंग का देखने योग्य है॥

यहां के हिन्दू रईस धनिक लोग असभ्य हैं और पुरानी बातैं उनके सिर में भरी हैं मुझ से जो मिला उस ने मेरी आमदनी गांव रुपया पहिले पूछा और नाम पीछे बरन बहुत से आदमी संग में न लाने की निंदा सब ने किया पर जो लोग शिक्षित हैं वे सभ्य हैं परन्तु रंडियां प्रायः सब के पास नौकर हैं और मुसल्मान सब बाह्य सभ्य हैं बोलने में बड़े चतुर हैं यदि कोई भीख मांगता है या फल बेंचता है तो वह भी एक अच्छी चाल से थोड़ी अवस्था के पुरुषों में भी स्त्रीपन झलकाता है बातैं यहां की बड़ी लम्बी चौड़ी बाहर से स्वच्छ पर भीतर से मलीन स्त्रियां सुन्दर तो ऐसी वहीं पर आंख लड़ाने में बड़ी चतुर यहां भंगेड़िने रंडियों के भी कान काटती हैं हुक्के की भंग की दूकानों पर सज सज के बैठती हैं और नीचे चाहने वालों की भीड़ खड़ी रहती है पर सुन्दर कोई नहीं।

और भी यहां अमीनाबाद हज़रतगंज सौदागरों की दूकानै, चौक, मुनशी नवलकिशोर का छापाखाना और नवाब मशकूरुद्दौला की चित्र की दूकान इत्यादि स्थान देखने योग्य हैं॥

जैसा कुछ है फिर भी अच्छा है॥

ईश्वर यहां के लोगों को विद्या का प्रकाश दें और पुरानी बातैं ध्यान से निकालैं।

आप का चिरानुगत

यात्री

हिन्दी भाषा ।

(खड्ग विलास प्रेस 1890, व्रजरत्नदास जी का कहना है कि इसका पहला संस्करण इसी प्रेस से सं० १८८३ में छपा)

(हिंदी भाषा के विभाग देश देशान्तर की भाषा की कविता आदि का उदाहरण, मिश्रित और शुद्ध हिन्दी का वर्णन)

भाषाओं के तीन विभाग होते हैं यथा घर में बोलने की भाषा कविता की भाषा और लिखने की भाषा । अब पश्चिमोत्तर देश में घर में बोलने की भाषा कौन है यह निश्चय नहीं होता क्यों कि दिल्ली प्रान्त के वा अन्य नगरों में भी खत्रियों वा पछाहीं अगरवालों वा और पछाहीं जातियों के अतिरिक्त घर में हिंदी कोई नहीं बोलते बरंच यहां पर तो कोस कोस पर भाषा बदलती है। इसी बनारस में जो बनारस के पुराने रहवासी हैं उनके घर में विचित्र विचित्र बोलियां बोली जाती हैं जैसे पुरबियों की बोलो आईला जाईला प्रसिद्ध ही है परन्तु यहां के पुराने कसेरे लोग 'बाटः' शब्द का बहुत प्रयोग करते हैं जैसा 'आवत हई' के स्थान पर 'आवत बाटी' 'का करत हौवः' वा ' का करल ' के स्थान पर ' का करत बाट्य वा बाटो वा बाटः ' । इस दशा में बनारस की मुख्य बोली यह और वह बोली है जिसका उदाहरण में नं० ७ कलकत्ते की शोभा में मिलैगा अर्थात् वह पुरबिये बनियों की बोली है० वरंच यह बोली यहां के प्रसिद्ध धनिकों के घर में बोली जाती है परन्तु इन दोनों बोलियों को छोड़ कर बनारस में बदमाशों की भाषा अलग ही है जिसमें कितने ऐसे व्यर्थ शब्द हैं जिनका न सिर है न पैर है जैसा झांझ, गोजर इत्यादि ० वरन वे जिस ईकारान्त (वा कभी कभी ओकारान्त वा कदाचित् आकारान्त) शब्द के पीछे क लगा देंगे उसका अर्थ गाली होगा । इसका विशेष वर्णन हम काशी की दशा के वर्णन में लिखैंगे पर यहां इतना ही समझ लेना चाहिए कि इन की भाषा भी अब काशी की भाषा में स्वतंत्र हो गई है ।

कोई कहते हैं कि काशी की सब से प्राचीन भाषा वह है जो डोम लोग बोलते हैं क्यों कि वे ही यहां के प्राचीन वासी हैं और उन की भाषा में प्रायः दीर्घ मात्रा होती है। जो हो यह तो सिद्धान्त है कि जो यहां के शिष्ट लोग बोलते हैं वह परदेशी भाषा है और यहां पश्चिम से आई है । काशी के उस पार ही रामनगर में यहां की बोली से कुछ विलक्षण बोली बोली जाती है और वह मिर्जापुर की भाषा

से बहुत मिलती है। ऐसे ही पश्चिमोत्तर देश में अनेक भाषा हैं पर उन में ऐसे नगर थोड़े हैं जिन में आबाल वृद्ध वनिता सब खड़ी भाषा बोलते हों अतएव यद्यपि काशी ऐसे पूर्व्व प्रदेशों की मातृभाषा वा घर में बोलचाल की भाषा हिंदी है यह तो हम नहीं कह सकते पर हां यह कह सकते हैं कि इसी पश्चिमोत्तर देश में कई नगर ऐसे हैं जहां यही खड़ी बोली मातृभाषा है ॥

पश्चिमोत्तर देश की कविता की भाषा व्रजभाषा है यह निर्णीत हो चुकी है और प्राचीन काल से लोग इसी भाषा में कविता करते आते हैं परन्तु यह कह सकते हैं कि यह नियम अकबर के समय के पूर्व्व नहीं था क्यों कि मुहम्मद मलिक जाइसी और चंद की कविता विलक्षण ही है और वैसे ही तुलसीदास जी ने भी व्रजभाषा का नियम भंग कर दिया। जो हो मैं ने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊं पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं बनी इस से यह निश्चय होता है कि व्रजभाषा ही में कविता करना उत्तम होता है और इसी से सब कविता व्रजभाषा में ही उत्तम होती है। जैसे व्रजभाषा में कविता होती है वैसे ही बुंदेलखंड की बोली में भी कविता बनती आती है और अब कविता में यह दोनों बोली मिल गई हैं। परन्तु पूरब में कवियों की वृद्धि होने से उन लोगों ने उस कविता की भाषा अपने चाल पर एक नई भाषा बना ली है यहां यह भी कहना आवश्यक है कि कविता ने पंजाबी और माड़वारी बोली भी ग्रहण किया है और इस भाषा में भी कविता बनाई है। इन सब के उदाहरण नीचे नई और पुरानी कविता में दिखाए जाते हैं जिन से पूर्वोक्त वर्णन स्पष्ट हो जायगा ॥

(व्रजभाषा, बुदेलखंड की बोली के उदाहरण। नागभाषा की कविता—"चंद की भाषा में ऐसे शब्द बहुत हैं, अब तक जोधपुर उदयपुर के कवि 'नच्चिम' 'बड़ढिया' इत्यादि शब्द का बहुत प्रयोग करते हैं और इसी में बड़ा पांडित्य मानते हैं।")

·········**कजली की कविता**—कजली की कविता बड़ी विचित्र होती है इस के उदाहरण के पूर्व हम इस नष्ट वस्तु की कुछ उत्पत्ति भी लिखते हैं। कन्तित देश में गहरवार क्षत्री दादूराय नामक राजा हुए और माड़ा बिजैपुर इत्यादि देश में उन का राज था बिन्ध्याचल देवी के मंदिर के नाले के पास उन के टूटे गढ़ का चिन्ह अब तक मिलता है उन्हों ने चार भैरवों के बीच में अपना गढ़ बनाया था और वह अपने राज में मुसल्मानों को गंगा जी नहीं छूने देते थे। उस के देश में अनावृष्टि हुई और उस ने उस के निवारणार्थ बड़ा धर्म किया और फिर वृष्टि हुई इसी में उस की कीर्ति को जो कन्तित की स्त्रियों ने उस के

मरने और उस की रानी नागमती के सती होने पर एक मनमाने राग और धुन में बांध कर गाया इसी से उस का नाम कजली हुआ। कजली नाम के दो कारण हैं एक तो उस राजा का एक वन था उस का नाम कजली वन था दूसरे उस तृतीया का नाम पुराणों में कजली तीज लिखा है जिस में यह कजली बहुत गाई जाती है।

उस की कीर्ति में ग्रामीणों ने उसी काल में ये छंद बनाये थे। 'कहा गए दांडुरैया बिन जग सून। तुरकन गांग जुठारा बिन अरजून।'.........इस नष्ट कजली को प्रायः स्त्रियां आप ही बना लेती हैं परन्तु पुरुषों में भी इस के कवि होते हैं सांप्रत एक पंखा वाला है उस ने अनेक कजली बनाई है परन्तु इन सबों में पंडित वेणीराम नामक एक ब्राह्मण थे उन ने अच्छी कजली बनाई है।

.........बंग भाषा की कविता

बंग भाषा अब हिंदी से बिल्कुल विलक्षण है यह प्रत्यक्ष है। पूर्व काल के बंग भाषा के कविगण की जो भाषा है वह बिल्कुल व्रजभाषा ही है। बंगाली विद्वानों में इस विषय में अनेक वादानुवाद है किंतु हम को ऐसा निश्चय होता है कि उन कवियों ने व्रजभाषा ही में कविता करने की चेष्टा की हो तो क्या आश्चर्य है। कवि कङ्कण, चण्डी, विद्यापति, गोविंददास इत्यादि इन के प्राचीन कविगण की भाषा वर्तमान ब्रजभाषा और मैथिली से बिल्कुल मिली हुई है। यह कोई कविता पांच सौ वर्ष के ऊपर की नहीं किन्तु धन्य काल जिस ने भाषा का अब इतना रूपान्तर कर दिया। इन्हीं प्राचीन कवियों में से गोविंददास की कविता कौतुकार्थ यहां प्रकाश की जाती है। इस कविता में एक अपूर्व और सहज माधुर्य्य ऐसा है कि अनुभव में बड़ा आनंद होता है।

.........नई भाषा की कविता

"भजन करो श्रीकृष्ण का, मिल कर के सब लोग।
सिद्ध होयगा काम और छूटैगा सब सोग॥"

अब देखिये यह कैसी भोंड़ी कविता है मैं ने इस का कारण सोचा कि खड़ी बोली में कविता मीठी क्यों नहीं बनती तो मुझ को सब से बड़ा कारण यह जान पड़ा कि इस में क्रिया इत्यादि में प्रायः दीर्घ मात्रा होती हैं इस्से कविता अच्छी नहीं बनती।

आप लोगों को ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा कि कविता की भाषा निस्सन्देह ब्रजभाषा ही है और दूसरे भाषाओं की कविता इतना चित्त को नहीं

पकड़ती। यदि हमारे पाठक लोग इच्छा करैंगे तो कविता में नायिकाभेद, अलंकार और कवियों के स्वतन्त्र प्रयोग कैसे कैसे बदल गए इन का वर्णन फिर कभी करूंगा।'

हिन्दी कविता—संस्कृत यद्यपि परम मधुर है तथापि भाषा भी मधुरई में किसी प्रकार से घट के नहीं है—इस के उदाहरण में हम एक श्रीजयदेव जी की अष्टपदी और एक उस का अनुवाद देते हैं अब हमारे पाठक लोग दोनों भाषा की माधुरी का प्रमाण जान लें।

........अथ लिखने की भाषा के उदाहरण—

भाषा का तीसरा अंग लिखने की भाषा है और इस में बड़ा झगड़ा है कोई कहता है कि उरदू शब्द मिलने चाहिए कोई कहता है कि संस्कृत शब्द होने चाहिए और अपनी अपनी रुचि के अनुसार सब लिखते हैं और इस के हेतु कोई भाषा अभी निश्चित नहीं हो सकती।

हम सब भाषाओं के नीचे उदाहरण दिखाते हैं॥

वर्षा वर्णन।

नं० १ जिस में संस्कृत के शब्द बहुत हैं।

अहा पर कैसी अपूर्व्व और विचित्र वर्षा ऋतु साम्प्रत प्राप्त हुई है अनवर्त्त आकाश मेघाच्छन्न रहता है और चतुर्दिक कुज्झटिका पात से नेत्र की गति स्तम्भित हो गई है प्रतिक्षण अभ्र में चंचला पुंश्चली स्त्री की भांति नर्तन करती है और वैसे ही बकावली उड्डीयमाना होकर—इतस्ततः भ्रमण कर रही है मयूरादि अनेक पक्षिगण प्रफुल्लित चित्त से रव कर रहे हैं और वैसे ही दर्दरगण भी पंकाभिषेक करके कुकवियों की भांति कर्णवेधक ढक्का झंकार सा भयानक शब्द करते हैं।

नं० २ जिस में संस्कृत के शब्द थोड़े हैं!

सब विदेशी लोग घर फिर आए और व्यापारियों ने नौका लादना छोड़ दिया पुल टूट गए बांध खुल गए पंक से पृथ्वी भर गई पहाड़ी नदियों ने अपने बल दिखाए बहुत वृक्ष कूल समेत तोड़ गिराए सर्प बिलों से बाहर निकले महानदियों ने मर्यादा भंग कर दी और स्वतन्त्रता स्त्रियों की भांति उमड़ चली।

नं० ३ जो शुद्ध हिन्दी है।

पर मेरे प्रीतम अब तक घर न आए क्या उस देश में बरसात नहीं होती या किसी सौत के फेर में पड़ गये कि इधर की सुध ही भूल गए। कहां तो वह प्यार की बातैं कहां एक संग ऐसा भूल जाना कि चिट्ठी भी न भिजवाना। हा! मैं

कहां जाऊं कैसी करूं मेरी तो ऐसी कोई मुंहबोली—सहेली नहीं कि उस से दुखड़ा रो सुनाऊं कुछ इधर उधर की बातों ही से जी बहलाऊं।

नं० ४ जिस में किसी भाषा के शब्द मिलने का नेम नहीं है।

ऐसी तो अंधेरी रात उस में अकेली रहना कोई हाल पूछने वाला भी पास नहीं रह रह कर जी घबड़ाता है कोई खबर लेने भी नहीं आता और न कोई इस विपत्ति में सहाय होकर जान बचाता।

नं० ५ जिस में फारसी शब्द विशेष हैं।

खुदा इस आफत से जी बचाये प्यारे का मुंह जल्द दिखाए कि जान में जान आए। फिर वही ऐश की घड़ियां आए शबोरोज दिलबर की सुहबत रहे रंजो गम दूर हो दिल मसरूर हो।

कलकत्ते की शोभा

नं० ६ जिस में अंगरेजी शब्द हिन्दी ही के मिल गए हैं।

वहां हौसों में हजारों बक्स माल रक्खे हैं—कम्पनियों के सैकड़ों बक्स इधर से उधर कुली लोग लिये फिरते हैं लालटेन में गिलास चारों तरफ बल रहे हैं सड़क की लैन सीधी और चौड़ी है पालकी गाड़ी बग्गी चिरिट-फिटिन दौड़ रही हैं रेलवे के स्टेशनों पर टिकट बंट रहा है कोई फस्ट क्लास में बैठता है कोई सेकेण्ड में कोई थर्ड में बैठता है ट्रैन को इञ्जिन इधर से उधर खींच कर ले जाती है बड़े से छोटे तक उहदेदार जज मजिस्टर कलक्टर पोस्ट मास्टर डिपटी साहब स्टेशन मास्टर करनैल जनरैल कमानियर किरानी और कांस्टेबल वगैरह चारों ओर घूम रहे हैं कोई कोट पहिने है कोई बूट पहिने है कोई पाकेट में लोट भरे हैं लाट साहिब भी इधर उधर आते जाते हैं डांक दौड़ती है बोट तिरते हैं पादरी लोग गिरजों में क्रिस्तानों को बैबिल सुनाते हैं पंप में पानी दौड़ता है कंप में लंप रौशन हो रही है।

नं० ७ जिस में पुरबियों की बोली वा काशी की देशभाषा है।

क साहेब आप कब्बौं कलकत्ता गये हो कि नाहीं? जो न गए हो तो एक बेर हमरे कहे से आप ऊ शहर को जरूर देखो देख ही के लायक है आप से हम ओकी तारीफ का करी अपनी आंखी से देखे बिना ओका मजे नहीं मिलता आप तौ बहुत परदेस जाथौ एक बेर ओहरो झुक पड़ो।

नं० ८ जो काशी के अर्धशिक्षित बोलते हैं।

महाराज मै सच कहता हौं कलकत्ता देखने ही के योग्य है आप देखियेगा तो खुस हो जाइयेगा हम एक दफे गए रहे से ऐसा जी प्रसन्न हो गया कि क्या पूछना

नं० ९ दक्षिण के लोगों की हिंदी ।

सो तो ठीक है कलकत्ते तो आप कं एक बेर अवश्य जाना हमारे कूं तो ऐसा जान पड़ता है कि जावत् पृथ्वी तल में दूसरा ऐसा कोई नगर ही नहीं है ।

नं० १० बंगालियों की हिन्दी ।

सच है उधर राजा बाजार का बड़ा बड़ा दोकान है उधर मछुआ बाजार में बहुत अच्छा अच्छा सामान है कहीं गाड़ी खड़ा है कहीं केली फला है कहीं गोरा की समाज की समाज आती है कहीं अमारा देश का बंगाली बाबू लोगों का पल्टन जाती है के कोम्पानी लोग दीवालिया होया जाता है कहीं मारवाड़ी माल लेकर घर पराता है ।

नं० ११ अंगरेजों की हिंदी ।

बेशक इस में कुछ शक नहीं कैलकटा देखने का जगह है हम वहां अकसर रहता आप एक बार जाने मांगो वहां जाकर थोड़ा सबुर करो देखो बहुत लोग जाता तो आप घर में पड़ा पड़ा क्यों सड़ता जाओ जाओ हमारा कहने से जाओ ।

नं० १२ रेलवे की भाषा । ईष्टइण्डिया रेलवे । इस्तहार—(इस में दो इश्तहार दिये हैं जिन में से एक उद्धृत किया जाता है) ।

कजरा स्टेशन में एक मिसत्री जिसका नाम वसी था एक चारपाई नेआ सिलिपर के चोरा कर के बनवाने के वास्ते अगस्त सन १८८३ ई० साल में गिरफतार कीया गेया था और मजिस्ट्रेट साहब ने उस को मोजरिम ठहरा कर **एक बरस के वास्ते** सख्त मेहनत के साथ कैद किया ।

District Engineer's Office Dinapore
17th Aug. 1883

S. Carringlon
Offis. District
Engineer.

हम इस स्थान पर वाद नहीं किया चाहते कि कौन भाषा उत्तम है और वही लिखनी चाहिए पर हां मुझ से कोई अनुमति पूछे तो मैं यह कहूंगा कि नम्बर २ और ३ लिखने के योग्य हैं ।

यदि इसका विचार कीजिये कि यह देशभाषा कहां से आई है तो यह निश्चय होता है कि पश्चिम से आई है और पंजाबी व्रजभाषा इत्यादि भाषाओं से बिगड़ कर बनी है पर उनका आदि किसी समय में नागभाषा रही हो तो आश्चर्य नहीं ।

हरिद्वार।

[१]

(कविवचनसुधा 30 अप्रैल 1871 Vol. III No. 1. P. 10.)

श्रीमान क० व० सु० सम्पादक महोदयेषु

श्री हरिद्वार को रुड़की के मार्ग से जाना होता है रुड़की शहर अंगरेजों का बसाया हुआ है इसमें दो तीन वस्तु देखने योग्य हैं एक तो (कारीगरी) शिल्प विद्या का बड़ा कारखाना है जिस में जल चक्की पवन चक्की और भी कई बड़े २ चक्र अनवर्त खचक्र में सूर्य्य चन्द्र पृथ्वी मंगल आदि ग्रहों की भांति फिरा करते हैं और बड़ी बड़ी धरन ऐसी सहज में चिर जाती हैं कि देख कर आश्चर्य होता है बड़े बड़े लोहे के खम्भे कल से एक छड़ में ढल जाते हैं और सैकड़ों मन आंटा घड़ी भर में पिस जाता है जो बात है आश्चर्य की है इस कारखाने के सिवा यहां सब से आश्चर्य श्री गंगा जी की नहर है पुल के ऊपर से तो नहर बहती है और नीचे से नदी बहती है यह एक बड़े आश्चर्य का स्थान है इस के देखने से शिल्प विद्या का बल और अंगरेजों का चातुर्य्य और द्रव्य का व्यय प्रगट होता है न जानैं वह पुल कितना दृढ़ बना है कि उस पर से अनवर्त कई लाख मन बरन करोड़ मन जल बहा करता है और वह तनिक नहीं हिलता स्थल में जल कर रक्खा है और स्थानों में पुल के नीचे से नाव चलती है यहां पुल के ऊपर नाव चलती है और उसके दोनों ओर गाड़ी जाने का मार्ग है और उस के परले सिरे पर चूने के सिंह बहुत ही बड़े बड़े बने हैं हरिद्वार का एक मार्ग इसी नहर की पटरी पर से है और मैं इसी मार्ग से गया था ॥

विदित हो कि यह श्री गंगा जी की नहर हरिद्वार से आई है और इसके लाने में यह चातुर्य किया है कि इसके जल का वेग रोकने के हेतु इस को सीढ़ी की भांति लाए हैं कोस कोस डेढ़ डेढ़ कोस पर बड़े बड़े पुल बनाए हैं वही मानो सीढ़ियां हैं और प्रत्येक पुल के ताखों से जल को नीचे उतारा है जहां जहां जल को नीचे उतारा है वहां वहां बड़े बड़े सीकड़ों में कसे हुए दृढ़ तखते पुल के ताखों के मुंह पर लगा दिये हैं और उनके खींचने के हेतु ऊपर चक्कर रक्खे हैं उन तखतों से ठोकर खाकर पानी नीचे गिरता है वह शोभा देखने योग्य है एक तो उस का महान शब्द दूसरे उस में से फुंहारे की भांति जल का उबलना और छींटों का उड़ना मन को बहुत लुभाता है और जब कभी जल विशेष लेना होता है तो तखतों को उठा लेते हैं फिर तो इस वेग से जल गिरता है जिसका वर्णन नहीं हो सकता और ये

मल्लाह दुष्ट वहां भी आश्चर्य करते हैं कि उस जल पर से नाव को उतारते हैं या चढ़ाते हैं जो नाव उतरती है तो यह ज्ञात होता है कि नाव पाताल को गई पर वे बड़ी सावधानी से उसे बचा लेते हैं और क्षण मात्र में बहुत दूर निकल जाती है पर चढ़ाने में बड़ा परिश्रम होता है यह नाव का उतरना चढ़ना भी एक कौतुक ही समझना चाहिये ॥

इसके आगे और भी आश्चर्य है कि दो स्थान नीचे तो नहर है और ऊपर से नदी बहती है वर्षा के कारण वे नदियां क्षण में तो बड़े वेग से बढ़ती थीं और क्षण भर में सूख जाती हैं और भी मार्ग में जो नदी मिली उन की यही दशा थी उन के करारे गिरते थे तो बड़ा भयंकर शब्द होता था और वृक्षों को जड़ समेत उखाड़ २ के बहाये लाती थीं वेग ऐसा कि हाथी न सम्हल सके पर आश्चर्य यह कि जहां अभी डुबाव था वहां थोड़ी देर पीछे सूखी रेत पड़ी है और आगे एक स्थान पर नदी और नहर को एक में मिला के निकाला है यह भी देखने योग्य है सीधी रेखा की चाल से नहर आई है और बेंड़ी रेखा की चाल से नदी गई है जिस स्थान पर दोनों का सङ्गम है वहां नहर के दोनों ओर पुल बने हैं और नदी जिधर गिरती है उधर कई द्वार बनाकर उस में काठ के तखते लगाये हैं जिस से जितना पानी नदी में जाने देना चाहैं उतन्ना नदी में और जितना नहर में छोड़ना चाहैं उतना नहर में छोड़ैं ॥

जहां से नहर श्री गंगा जी में से निकाला है वहां भी ऐसा ही प्रबन्ध है और गंगा जी नहर में पानी निकल जाने से दुबली और छिछली हो गई हैं परन्तु जहां नील धारा आ मिली है वहां फिर ज्यौं की त्यौं हो गई हैं ॥

हरिद्वार के मार्ग में अनेक प्रकार के वृक्ष और पक्षी देखने में आए एक पीले रंग का पक्षी छोटा बहुत मनोहर देखा गया बया एक छोटी चिड़िया है उसके घोंसले बहुत मिले ये घोंसले सूखे बबूल कांटे के वृक्ष में हैं और एक एक डाल में लड़ी की भांति बीस बीस तीस तीस लटकते हैं इन पक्षियों की शिल्प विद्या तो प्रसिद्ध ही है लिखने का कुछ काम नहीं है इसी से इनका सब चातुर्य प्रगट है कि सब वृक्ष छोड़ के कांटे के वृक्ष में घर बनाया है इस के आगे ज्वालापुर और कनखल और हरिद्वार है जिनका वृत्तान्त अगले नम्बरों में लिखूंगा ॥

पुरुषोत्तम १०

आप का मित्र

यात्री ।

(14 Oct. 1871. P. 35, Vol. III. No. 11.)

श्रीमान क० व० सु० सम्पादक महामहिम मित्रवरेषु ।

मुझे हरिद्वार का शेष समाचार लिखने में बड़ा आनंद होता है कि मैं उस पुण्य भूमि का वर्णन करता हूं जहां प्रवेश करने से ही मन शुद्ध हो जाता है। यह भूमि तीन ओर सुन्दर हो हरे भरे पर्वतों से घिरी है जिन पर्व्वतों पर अनेक प्रकार की बल्ली हरी भरी सज्जनों के शुभ मनोरथों की भांति फैल कर लहलहा रही हैं और बड़े बड़े वृक्ष भी ऐसे खड़े हैं मानों एक पैर से खड़े तपस्या करते हैं और साधुओं की भांति घाम ओस और वर्षा अपने ऊपर सहते हैं अहा ! इनके जन्म भी धन्य हैं जिन से अर्थी विमुख जाते ही नहीं फल फूल गंध छाया पत्ते छाल बीज लकड़ी और जड़ यहां तक कि जले पर भी कोयले और राख से लोगों का मनोर्थ पूर्ण करते हैं सज्जन ऐसे कि पत्थर मारने से फल देते हैं। इन वृक्षों पर अनेक रंग के पक्षी चहचहाते हैं और नगर के दुष्ट बधिकों से निडर हो कर कलोल करते हैं वर्षा के कारण सब ओर हरियाली ही दृष्टि पड़ती थी। मानो हरे गलीचा की जात्रियों के विश्राम के हेतु बिछायत बिछी थी। एक ओर त्रिभुवन पावनी श्री गंगा जी की पवित्र धार बहती है जो राजा भगीरथ के उज्ज्वल कीर्ति की लता सी दिखाई देती है जल यहां का अत्यन्त शीतल है और मिष्ट भी वैसा ही है मानो चीनी के पने को बरफ में जमाया है रंग जल का स्वच्छ और श्वेत है और अनेक प्रकार के जल जन्तु कलोल करते हुए यहां श्री गंगा जी अपना नाम नदी सत्य करती हैं अर्थात् जल के वेग का शब्द बहुत होता है और शीतल वायु नदी के उन पवित्र, छोटे छोटे कनों को लेकर स्पर्श ही से पावन करता हुआ संचार करता है यहां पर श्री गंगा जी दो धारा हो गई हैं एक का नाम नीलधारा दूसरी श्री गंगा जी ही के नाम से, इन दोनों धारों के बीच में एक सुन्दर नीचा पर्व्वत है और नीलधारा के तट पर एक छोटा सा सुन्दर चुटीला पर्व्वत है और उस के शिखर पर चण्डिका देवी की मूर्ति है। यहां हरि की पैरी नामक एक पक्का घाट है और यहीं स्नान भी होता है। विशेष आश्चर्य का विषय यह है कि यहां केवल गंगा जी ही देवता हैं दूसरा देवता नहीं यों तो वैरागियों ने मठ मंदिर कई बना लिये हैं। श्री गंगा जी का पाट भी बहुत छोटा है पर वेग बड़ा है। तट पर राजाओं की धर्म्मशाला यात्रियों के उतरने के हेतु बनी हैं और दुकानें भी बनी हैं पर रात को बन्द रहती हैं यह ऐसा निर्मल तीर्थ है कि काम क्रोध की खानि

जो मनुष्य है सो वहां रहते ही नहीं पंडे दुकानदार इत्यादि कनखल वा ज्वालापुर से आते हैं पंडे भी यहां बड़े विलक्षण सन्तोषी हैं ब्राह्मण हो कर लोभ नहीं यह बात इन्हीं में देखने में आई एक पैसे को लाख कर के मान लेते हैं, इस क्षेत्र में ५ पांच तीर्थ मुख्य हैं हरिद्वार, कुशावर्त्त, नीलधारा, विल्व पर्व्वत और कनखल हरिद्वार तो हरि की पैंडी पर नहाते हैं, कुशावर्त्त भी उसी के पास है, नीलधारा वही दूसरी धारा, विल्व पर्व्वत भी एक सुहाना पर्व्वत है जिसपर विल्वेश्वर महादेव की मूर्ति है और कनखल तीर्थ इधर ही है। यह कनखल तीर्थ बडा उत्त किसी काल में दक्ष ने यहीं यज्ञ किया था और यहीं सती ने शिवजी का अपमान न सह कर अपना शरीर भस्म कर दिया। कुछ छोटे छोटे घर भी बने हैं और भारामल जैकृष्णदास खत्री यहां के प्रसिद्ध धनिक हैं। हरिद्वार में यह बखेड़ा कुछ नहीं है और शुद्ध निर्मल साधुओं के सेवन योग्य तीर्थ है मेरा तो चित्त वहां जाते ही ऐसा प्रसन्न और निर्म्मल हुआ कि वर्णन के बाहर है मैं दीवान कृपाराम के घर के ऊपर के बंगले पर टिका था यह स्थान भी उस क्षेत्र में टिकने योग्य ही है चारों ओर से शीतल पवन आती थी यहां रात्रि को ग्रहण हुआ और हम लोगों ने ग्रहण में बड़े आनंद पूर्व्वक स्नान किया और दिन में श्रीभागवत का परायण भी किया वैसे ही मेरे संग कन्नूजी मित्र भी परमानन्दी थे निदान इस उत्तम क्षेत्र में जितना समय बीता बड़े आनंद से बीता एक दिन मैंने श्री गंगा जी के तट पर रसोई कर के पत्थर ही पर जल के अत्यन्त निकट परोस कर भोजन किया जल के छलके पास ही ठंढे ठंढे आते थे उस समय पत्थर पर का भोजन का सुख सोने के थाल के भोजन से कहीं बढ़ के था चित्त में बारम्बार ज्ञान वैराग्य और भक्ति का उदय होता था झगड़े लड़ाई का कहीं नाम भी नहीं सुनाता था। यहां और भी कई वस्तु अच्छी बनती है। जनेऊ यहां का अच्छा महीन और और उज्ज्वल बनता है यहां की कुशा सब से विलक्षण होती है जिस में से दालचीनी जावित्री इत्यादि की अच्छी सुगंध आती है मानो यह प्रत्यक्ष प्रगट होता है कि यह ऐसी पुण्य भूमि है कि यहां की घास भी ऐसी सुगंधमय है, निदान यहां जो कुछ है अपूर्व्व है और यह भूमि साक्षात विरागमय साधुओं और विरक्तों के सेवन योग्य है और सम्पादक महाशय मैं चित्त से तो अब तक वहीं निवास करता हूँ और अपने वर्णन द्वारा आप के पाठकों को इस पुण्य भूमि का वृत्तान्त विदित कर के मौनावलम्बन करता हूं निश्चय है कि आप इस पत्र को स्थान दान दीजियेगा ॥

आप का मित्र

यात्री

वैद्यनाथ की यात्रा।

(From हरिश्चन्द्रचन्द्रिका और मोहनचन्द्रिका खंड ७ आषाढ़ १ सम्वत् १९३७ संख्या ४)

श्रीमन्महाराज काशिनरेश के साथ वैद्यनाथ की यात्रा को चले॰ दो बजे दिन के पैसेञ्जर ट्रेन में सवार हुए॰ चारों ओर हरी हरी घास का फ़र्श॰ ऊपर रंग रंग के बादल॰ गड़हों में पानी भरा हुआ॰ सब कुछ सुन्दर॰ मार्ग में श्री महाराज के मुख से अनेक प्रकार के अमृतमय उपदेश सुनते हुए चले जाते थे॰ सांझ को बकसर पहुंचे॰ बकसर के आगे बड़ा भारी मैदान पर सब्ज काशांनी मखमल से मढ़ा हुआ॰ सांझ होने से बादल के छोटे छोटे टुकड़े लाल पीले नीले बड़े सुहाने मालूम पड़ते थे॰ बनारस कालिज की रंगीन शीशे की खिड़कियों का सा सामान था॰ क्रम से अन्धकार होने लगा॰ ठंढी ठंढी हवा से निद्रादेवी अलग नेत्रों से लिपटी जाती थी॰ मैं महाराज के पास से उठ कर सोने के वास्ते दूसरी गाड़ी में चला गया॰ झपकी का आना था कि बौछारों ने छेड़ छाड़ करनी शुरू की॰ पटने पहुंचते पहुंचते तो घेर घार कर चारों ओर से पानी बरसने ही लगा॰ बस पृथ्वी आकाश सब नीर ब्रह्ममय हो गया॰ इस धूम धाम में भी रेल कृष्णाभिसारिका सी अपनी धुन में चली ही जाती थी॰ सच है सावन की नदी और दृढ़प्रतिज्ञ उद्योगी और जिन के मन पीतम के पास हैं वे कहीं रुकते हैं॰ राह में बाज पेड़ों में इतने जुगनू लिपटे हुए थे कि पेड़ सचमुच 'सर्वे चिरागां' बन रहे थे॰ जहां रेल ठहरती थी स्टेशन मास्टर और सिपाही बिचारे टुटरूं टूं छाता लालटैन लिए रोजी जगाते भींगते हुए इधर उधर फिरते हुए दिखलाई पड़ते थे॰ गार्ड अलग मैकिन्टाश का कवच पहिने अप्रतिहत गति से घूमते थे॰ आगे चल कर एक बड़ा विघ्न हुआ॰ खास जिस गाड़ी पर महाराज सवार थे उसके धुरे घिसने से गर्म होकर शिथिल हो गये॰ वह गाड़ी छोड़ देनी पड़ी॰ जैसे धूम धाम की अंधेरी वैसे ही जोर शोर का पानी॰ इधर तो यह आफत उधर फरजन बे सामान फरजन के बाबाजान रेलवालों की जल्दी॰ गाड़ी कभी आगे हटै कभी पीछे॰ खैर किसी तरह सब ठीक हुआ॰ इस पर भी बहुत सा असबाब और कुछ लोग पीछे छूट गए॰ अब आगे बढ़ते बढ़ते तो सबेरा ही होने लगा॰ निद्रावधू का संयोग भाग्य में न लिखा था न हुआ॰ एक तो सेकेंड क्लास की एक ही गाड़ी उस में भी लेडीज कम्पार्टमेन्ट निकल गया॰ बाकी जो कुछ बचा उस में बारह आदमी॰ गाड़ी भी ऐसी टूटी फूटी जैसे हिन्दुओं की किस्मत और हिम्मत॰ इस कम्बख्त गाड़ी से तीसरे दर्जे की गाड़ियों से कोई फर्क नहीं सिर्फ

एक एक धोखे की टट्टी का शीशा खिड़कियों में लगा था० न चौड़े बेंच न गद्दा न बाथरूम० जो लोग मामूली से तिगुना रूपया दें उन को ऐसी मनहूस गाड़ी पर बिठलाना जिस में कोई बात भी आराम की न हो रेलवे कम्पनी की सिर्फ बेइन्साफी ही नहीं वरंच धोखा देना है० क्यों नहीं ऐसी गाड़ियों को कम्पनी आग लगा कर जला देती या कलकत्ते में नीलाम कर देती० अगर मारे मोह के न छोड़ी जाय तो उस से तीसरे दर्जे का काम ले० नाहक अपने गाहकों को बेवकूफ बनाने से क्या हासिल० लेडीज़ कम्पार्टमेन्ट खाली था मैं ने गार्ड से कितना कहा कि इस में सोने दो न माना० और दानापुर से दो चार नीम अङ्गरेज़ (लेडी नहीं सिर्फ लैड) मिले उन को बेतकल्लुफ बैठा दिया० फर्स्ट क्लास की सिर्फ दो गाड़ी एक में महाराज दूसरी में आधी लेडीज़ आधी में अङ्गरेज अब कहां सोवैं कि नींद आवै० सचमुच अब तो तपस्या कर के गोरी गोरी कोख से जन्म ले तब संसार में सुख मिलै० मैं तो ज्यों ही फर्स्ट क्लास में अङ्गरेज कम हुए कि सोने की लालच से उस में घुसा० हाथ पैर चलाना था कि गाड़ी टूटने वाला विघ्न हुआ० महाराज के इस गाड़ी में आने से मैं फिर वहीं का वहीं० खैर इसी सात पांच में रात कट गई० बादल के परदों को फाड़ फाड़ कर उषा देवी ने ताक झांक आरम्भ कर दी० परलोक गत सज्जनों की कीर्ति की भांति सूर्य्य नारायण का प्रकाश पिशुन मेघों के वागाडम्बर से घिरा हुआ दिखलाई पड़ने लगा० प्रकृति का नाम काली से सरस्वती हुआ० ठंढी ठंढी हवा मन की कली खिलाती हुई बहने लगी० दूर से धानी और काही रंग के पर्वतों पर सुनहरापन आ चला० कहीं आधे पर्वत बादलों से घिरे हुए, कहीं एक साथ बाष्प निकलने से उनकी चोटियां छिपी हुई और कहीं चारों ओर से उन पर जलधारा पात से बुक्के की होली खेलते हुए बड़े ही सुहाने मालूम पड़ते थे० पास से देखने से भी पहाड़ बहुत ही भले दिखलाई पड़ते थे० काले पत्थरों पर हरी हरी घास और जहां तहां छोटे बड़े पेड़ बीच बीच में मोटे पतले झरने नदियों की लकीरैं, कहीं चारों ओर से सघन हरियाली, कहीं चट्टानों पर ऊंचे नीचे अनगढ़ ढोके, और कहीं जलपूर्ण हरित तराई विचित्र शोभा देता थी० अच्छी तरह प्रकाश होते होते तो वैद्यनाथ के स्टेशन पर पहुंच गए० स्टेशन से वैद्य नाथ जी कोई तीन कोस हैं० बीच में एक नदी उतरनी पड़ती है जो आज कल बरसात में कभी घटती कभी बढ़ती है० रास्ता पहाड़ के ऊपर ही ऊपर बड़ा सुहाना हो रहा है० पालकी पर हिलते हिलते चले० श्री महाराज के सोंचने के अनुसार कहारों की गति ध्वनि में भी परमेश्वर ही का चरचा है० पहले 'कोहं कोहं' की ध्वनि सुन पड़ती है फिर 'सोहं सोहं' 'हसंस्मोहं' की एकाकार पुकार मार्ग में भी उस से तन्मय किए देती थी।

मुसाफिरों को अनुभव होगा कि रेल पर सोने से नाक थर्राती है और वही दशा

कभी कभी और सवारियों पर भी होती है इसी से मुझे पालकी पर नींद नहीं आई और जैसे तैसे बैजनाथ जी पहुंच ही गए० ॥

बैजनाथ जी एक गांव है जो अच्छी तरह आबाद है मैजिस्ट्रेट मुनसिफ वगैरह हाकिम और जरूरी सब आफिस हैं० नीचा और तर होने से देस बातुल गन्दा और द्वारा है० लोग काले काले हतोत्साह मूर्ख गरीब हैं० यहां सौंथाल एक जंगली जाति होती है० ये लोग अब तक निरे बहशी हैं० खाने पीने की जरूरी चीज़ें यहा मिल जाती हैं० सर्प विशेष हैं० राम जी की घोड़ी जिसको कुछ लोग ग्वालिन भी कहते हैं एक बालिश्त लम्बी और दो दो उंगल मोटी देखने में आई० ॥

मन्दिर बैजनाथ जी का टोप की तरह बहुत ऊंचा शिखरदार है चारों ओर देवताओं के मन्दिर और बीच में फर्श है० मन्दिर भीतर से अंधेरा है० क्यों कि सिर्फ एक दरवाज़ा है बैजनाथ जी की पिण्डी जलधरी से तीन चार उंगल ऊंची बीच में से चिपटी है० कहते हैं कि रावन ने मूका मारा है इस से यह गड़हा पड़ गया है० वैद्यनाथ, बैजनाथ, रावणेश्वर यह तीन नाम महादेव जी के हैं० यह सिद्धपीठ और ज्योतिर्लिंग स्थान है० हरिद्वार पीठ इसका नाम है० और सती का हृदय देश यहां गिरा है० जो पार्व्वती अरोगा दुर्गा नाम की सामने एक देवी हैं वही यहां की मुख्य शक्ति हैं० इनके मन्दिर और महादेव जी के मन्दिर से गांठ जोड़ी रहती है० रात को महादेव जी के ऊपर बेल पत्र का बहुत लम्बा चौड़ा एक ढेर कर के ऊपर से कमखाब या ताश का खोल चढ़ा कर श्रृंगार करते हैं या बेल पत्र के ऊपर से बहुत सी माला पहना देते हैं० सिर के गड़हे में भी रात को चन्दन भर देते हैं० वैद्यनाथ की कथा यह है कि एक बेर पार्वती जी ने मान किया था और रावण के शोर करने से वह मान छूट गया० इस पर महादेव जी ने प्रसन्न हो कर वर दिया कि हम लंका चलैंगे और लिंग रूप से उस के साथ चले० राह में जब वैद्यनाथ जी पहुंचे तो ब्राह्मण रूपी विष्णु के हाथ में वह लिङ्ग देकर रावण पेशाब करने लगा० कई घड़ी तक माया मोहित हो कर वह मूतता ही रह गया और घबड़ा कर विष्णु ने उस लिंग को वहीं रख दिया० रावण से महादेव जी से करार था कि जहां रख दोगे वहां से आगे न चलैंगे इस से महादेव जी वहीं रह गये वरञ्च इसी पर खफा होकर रावण ने उन को मूका भी मार दिया ॥

वैद्यनाथ जी का मन्दिर राजा पूरणमल का बनवाया हुआ है० लोग कहते हैं कि रघुनाथ ओझा नामक एक तपस्वी इसी वन में रहते थे० उनको स्वप्न हुआ कि हमारी एक छोटी सी मढ़ी झाड़ियों में छिपी है तुम उस का एक बड़ा मन्दिर बनाओ० उसी स्वप्न के अनुसार किसी वृक्ष के नीचे उन को तीन लाख रूपया मिला० उन्हों ने राजा पूरनमल को वह रूपया दिया कि वे अपने प्रबन्ध में मन्दिर बनवा दें० वे बादशाह के काम से कहीं चले गए और कई बरस तक न लौटे०

तब रघुनाथ ओझा ने दुखित हो कर अपने व्यय से मन्दिर बनवाया० जब पूरनमल लौट कर आए और मन्दिर बना देखा तो सभा मण्डप बनवा कर मन्दिर के ऊपर अपनी प्रशस्ति लिख कर चले गए० यह देख कर रघुनाथ ओझा ने इस बात से दुखित हो कर कि रूपया भी गया कीर्ति भी गई एक नई प्रशस्ति बनाई और बाहर के दरवाज़े पर खुदवा कर लगा दी० वैद्यनाथ महात्म्य भी मालूम होता है कि इन्हीं महात्मा का बनाया है क्यों कि उस में छिपाकर रघुनाथ ओझा को रामचन्द्र का अवतार लिखा है० प्रशस्ति का काव्य भी उत्तम नहीं है जिस से बोध होता है कि ओझा जी श्रद्धालु थे किंतु उद्धत पंडित नहीं थे० गिद्धौर के महाराज सर जगमङ्गल सिंह के० सी० एस० आई कहते हैं कि पूरणमल्ल उन के पुरखा थे० एक विचित्र बात यहां और भी लिखने के योग्य है० गोवर्द्धन पर्वत पर श्री नाथ जी का मन्दिर सं० १५५६ में एक राजा पूरणमल्ल ने बनाया और यहां सं० १६५२ (१५६४ ई०) में एक पूरणमल्ल ने वैजनाथ जी का मन्दिर बनाया० क्या यह मन्दिरों का काम पूरणमल्ल ही को परमेश्वर ने सौंपा है ॥

[इसके बाद संस्कृत में निज मन्दिर का लेख और सभा मण्डप का लेख है]

मन्दिर के चारों ओर और देवताओं के मन्दिर हैं० कहीं २ प्राचीन जैन मूर्तियां हिन्दू मूर्ति बन कर पुजती हैं एक पद्मावती देवी की मूर्ति बड़ी सुन्दर है जो सूर्य्य नारायण के नाम से पुजती है० यह मूर्ति पद्म पर बैठी है इस पर अत्यन्त प्राचीन पाली अक्षरों में कुछ लिखा है जो मैंने श्रीबाबू राजेन्द्रलाल मित्र के पास पढ़ने को भेजा है० दो भैरव की मूर्ति जिसमें एक तो किसी जैन सिद्ध की और एक जैन क्षेत्रपाल की है बड़ी ही सुन्दर है० लोग कहते हैं कि भागलपुर के जिले में किसी तालाब में से निकली थी ॥

ग्रीष्म ऋतु।

(हरिश्चन्द्र मैगज़ीन May, 15, 1874)

(मैगज़ीन की यह प्रति अधरी है अतः लेख भी अधूरा मिला)

अहा हा यह भी कैसा भयंकर ऋतु है "ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयांच्छरणां" इसमें प्रचंड मार्तण्ड अपनी घोर किरणों से स्थावर जंगम और जल सब का रस खींच लेता है, जीते ही जीते सब जीव निर्जीव हो जाते हैं। जीवन केवल जीवन में आ अटकता है और वह जल भी इस उग्र सूर्य से इस ऋतु में इतना डरता है कि प्रायः छोटी नदी और छोटे सरोवर तो शुष्क ही हो जाते हैं, कूपों में यद्यपि जल इतना नीचे छिपा रहता है कि सूर्य के दुखदाई किरण बाण वहां न पहुंचे तौ भी मारे डर के थर २ कांपता है। पर देखो शत्रु के घर में कैसा भी बलिष्ठ फंस जाता है तो शत्रु निर्बल होने पर भी अपना दाव लिये बिना नहीं छोड़ते, इन्हीं सूर्य की खरतर किरणों को जब अपने तरंग भुजाओं से पकड़ लेता है तो टुकड़े टुकड़े कर इधर उधर बहा देता है और जब अपनी किरणों का अपने सामने हज़ारों टुकड़े होना देखता है तो सूर्य भी जल में थर थर कांपता है; मत्स्य, कच्छ इत्यादि जीव गरमी के मारे भीतर से उबल उबल कर ऊपर उछले पड़ते हैं और ऊद भैंस सूकर इत्यादि स्थल के पशु भी जल में जा बैठते हैं; हंस, बगले, बतक, जलकुक्कुट, पनडुब्बे और चकई चकवे पक्षी हो कर भी इस ऋतु में शुद्ध जलचर जान पड़ते हैं; अन्न का आदर घट जाता है। शान्ति केवल जल में होती है, स्त्रियों को यद्यपि सहज ही वस्त्राभूषण से प्रीति है परन्तु इस ऋतु में वे भी उन्हें उतार उतार कर फेंक देती हैं और वन की भीलिनों की भांति फूल पत्तों से ही अपने को सज बज कर प्रीतम की बड़ी प्यारी भुजा को भी धर्म के भय बारंबार कंठ पर धरती और उतारती रहती हैं काशी से प्रस्तरमय नगर का तो कुछ पूछना ही नहीं घर सब तनदूर हो जाते हैं छत के पत्थरों को चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों से प्रातःकाल की वायु से भी सहायता लेकर नहीं ठंढा कर सकता, यदि किसी छोटी खिड़की के पास मुंह ले जाओ तो अजगरों की श्वास और लोहारों की धौंकनी के सामने बैठने का आनंद मिलता है, यद्यपि नीची गलियों में सूर्य की उल्वण किरणें नहीं पहुंचती तौ भी वे उन संतप्त गृहों के संताप से ऐसी संतप्त हो जाती हैं और उमस जाती हैं कि संकेत बदे हुए नायिका नायक के अतिरिक्त जिन को ऐसे

प्राणों का शत्रु सूर्य भी शरद्दतु के चन्द्रमा सा आनंददायक होता है, एक "चिड़िया का पूत" भी नहीं रहता, पृथ्वी तवा सी संतत हो जाती है लोग तहखानों में वृक्षों की छाया में, टट्टियों की आड़ में, पौसरों में जलाशयों के निकट और छाया के स्थानों में दिन भर अधमरे से पड़े रहते हैं, और अपने इस दिन पर वियोगिनियों की रातें निछावर किया करते हैं। गऊ, घोड़े इत्यादि घरैले पशु और सुग्गा, कौआ इत्यादि पक्षी भी व्याकुल होकर हांफा करते हैं और दीन कुत्ते तो साहिब मजिस्ट्रेट की आज्ञा से भी विशेष त्रस्त हो कर जीभ निकाले दुम दबाये इधर उधर आकुल हो दौड़ा करते हैं. कहीं शरण नहीं मिलती; जहां कहीं पौसरों का पानी गिरा रहता है या पनघट होता है वहां घड़ी दो घड़ी पड़े रह कर कुछ विश्रामाभास कर लिया करते हैं वायू का प्राण नामकरण इसी ऋतु में हुआ होगा; पंखे लोगों के ऐसे मित्र हो रहे हैं कि क्षण भर भी नहीं छूटते धनवान लोग खसखानों में थर्मेन्टीडोट के सामने बर्फ का पानी पिया करते हैं परन्तु धनहीन लोगों को तो किसी प्रकार से भी इस ऋतु में सुख नहीं मिलता कबूतर के दरबे की भांति किराये के घरों में कलौंजी से कसे सड़ा करते हैं और वायु के स्वच्छ न रहने से अनेक रोगों से भी पीड़ित रहते हैं। रेल पर जाने वाले पथिक कपड़ा पहिने बोझे से लदे सिपाहियों का धक्का खाए रूपया गवाये भूखे प्यासे बिना नहाये धोये गाड़ी की कोठड़ियों में अचार के मटके में पसीने से पसीजे नमकीन नीबू से ठसे जी से खट्टे होने को धूप में तपाये जाते हैं और उसमें भी जब गाड़ी स्टेशनों पर पानी लेने को खड़ी हो जाती है तब तो संयमनी से यमराज आकर अपने शतावधि नरकों को एक एक कोठरियों पर न्योछावर करके फेंक देते हैं क्योंकि चलने में तो कुछ हवा लगती भी है पर रुक जाने से तो ट्रेन की ट्रेन कलकत्ते की ब्लैक होल हो जाती है पहिले तो पथिक प्रायः बेसुध पड़े रहते हैं और यदि कभी चौंक उठते हैं तो केवल पानी पानी का शब्द उन के मुख से सुन पड़ता है। जैसे बहेलिये के पिटारियों में त्रारे फेरे की सिरोहियां कसी रहती हैं वही दशा इन जात्रियों की भी होती है यद्यपि यम लोक और रेल लोक की यात्रा को साथ ही प्रस्थान करते हैं पर न जानैं किन पुन्यों से वे बच कर घर पहुंचते हैं।

बन और पहाड़ों की भी यही दशा है। हरने चौकड़ी भूले मृगतृष्णा के दौड़ते फिरते हैं मोर मुह खोले इधर से उधर दौड़ते हैं छोटी छोटी चिड़ियां तो भुन भुन के डाल पर से नीचे गिर गिर पड़ती हैं, सिंह तराइयों में से सिकार देख कर भी नहीं उठते; पर्व्वत आंवा से हो जाते हैं, वृक्ष सब मुरझाये हुए, दूब सूखी हुई, कहीं कोकिल और कठफोड़वा के शब्द कान में पड़ते हैं, कहीं पनडुब्बी बोलती है; जहां कहीं सोते वा झरने वा कुंड वा झील होती है वहां चारों ओर

जीवों का झुण्ड घिरा रहता है ऐसे कठिन और भीषण ग्रीष्म ऋतु में भी जो श्री वृन्दावन की लीला में भीगे रहते हैं और प्रेम में जिनके नेत्र से फुहारे चलते हैं वे शीतल चित्त रहते हैं क्यों कि सच "वृन्दावने गुणैर्वसन्त इव लक्ष्यते" यह लिखा है, वही ग्रीष्म ऋतु श्री वृन्दावन में वसन्त सा ज्ञात होता है जिस का पाठक जनों को इस पत्र के सम्पादक के पिता के इस ग्रीष्म वर्णन से स्पष्ट अनुभव होगा ॥

[इसके बाद गिरधर दास के पद्यों का उद्धरण है। यह पत्रिका अपूर्ण हैं इससे पता नहीं चलता कि लेखक ने इसका अन्त किस प्रकार किया।]

———

दिल्ली दरबार दर्पण।

सब राजाओं की मुलाकातों का हाल अलग अलग लिखना आवश्यक नहीं, क्योंकि सब के साथ वही मामूली बातें हुईं। सब बड़े बड़े शासनाधिकारी राजाओं को एक एक रेशमी झंडा और सोने का तगमा मिला। झंडे अत्यन्त सुन्दर थे। पीतल के चमकीले मोटे मोटे डंडों पर राजराजेश्वरी का एक एक मुकुट बना था और एक एक पटरी लगी थी जिस पर झंडा पाने वाले राजा का नाम लिखा था, और फरहरे पर जो डंडे से लटकता था स्पष्ट रीति पर उन के शस्त्र आदि के चिन्ह बने हुए थे। झंडा और तगमा देने के समय श्रीयुत वाइसराय ने हरएक राजा से ये वाक्य कहे...

"मैं श्रीमती महारानी की तरफ से यह झंडा खास आप के लिये देता हूं, जो उन के हिन्दुस्तान की राजराजेश्वरी की पदवी लेने का यादगार रहेगा। श्रीमती को भरोसा है कि जब कभी यह झंडा खुलेगा आप को उसे देखते ही केवल इसी बात का ध्यान न होगा कि इंगलिस्तान के राज्य के साथ आप के खैरखाह राजसी घराने का कैसा दृढ़ संबंध है बरन यह भी कि सरकार की यह बड़ी भारी इच्छा है कि आप के कुल को प्रतापी, प्रारब्धी और अचल देखे। मैं श्रीमती महारानी हिन्दुस्तान की राजराजेश्वरी की आज्ञानुसार आप को यह तगमा भी पहनाता हूं। ईश्वर करे आप इसे बहुत दिन तक पहिनें और आप के पीछे यह आप के कुल में बहुत दिन तक रह कर उस शुभ दिन को याद दिलावे जो इस पर छपा है।"

शेष राजाओं को उन के पद के अनुसार सोने या चांदी के केवल तगमे ही मिले। किलात के खां को भी झंडा नहीं मिला, पर उन्हें एक हाथी, जिस पर ४००० की लागत का हौदा था, जड़ाऊ गहने, घड़ी, कारचोबी कपड़े, कमखाब के थान वग़ैरह सब मिलाकर २५,००० की चीजें तुहफे में मिलीं। यह बात किसी दूसरे के लिये नहीं हुई थी। इस के सिवाय जो सरदार उन के साथ आए थे उन्हें भी किश्तियों में लगा कर दस हज़ार रुपये की चीज़ें दी गईं। प्रायः लोगों को इस बात के जानने का उत्साह होगा कि खां का रूप और वस्त्र कैसा था। निस्सन्देह जो कपड़ा खां पहने थे वह उनके साथियों से बहुत अच्छा था तौ भी उन की या उन के किसी साथी की शोभा उन मुगलों से बढ़ कर न थी जो बाज़ार में मेवा लिये घूमा करते हैं। हां, कुछ फर्क था तो इतना था कि लम्बी गफ्फिन दाढ़ी के कारण खां साहिब का चिहरा बड़ा भयानक था। इन्हें झंडा न मिलने कारण यह समझना चाहिये कि यह बिल्कुल स्वतन्त्र हैं। इन्हें

आने और जाने के समय श्रीयुत वाइसराय गलीचे के किनारे तक पहुंचा गए थे, पर बैठने के लिये इन्हें भी वाइसराय के चबूतरे के नीचे वही कुर्सी मिली थी जो और राजाओं को। खां साहिब के मिज़ाज में रूखापन बहुत है। एक प्रतिष्ठित बंगाली इनके डेरे पर मुलाकात के लिये गए थे। खां ने पूछा, क्यों आए हो बाबू साहिब ने कहा, आपकी मुलाकात को। इस पर खां बोले कि अच्छा, आप हम को देख चुके और हम आप को, अब जाइये।

बहुत से छोटे छोटे राजाओं की बोल चाल का ढंग भी, जिस समय वे वाइसराय से मिलने आए थे, संक्षेप के साथ लिखने के योग्य है। कोई तो दूर ही से हाथ जोड़े आए, और दो एक ऐसे थे कि जब एडिकांग के बदन झुकाकर इशारा करने पर भी उन्हों ने सलाम न किया तो एडिकांग ने पीठ पकड़ कर उन्हें धीरे से झुका दिया। कोई बैठ कर उठना जानते ही न थे, यहां तक कि एडिकांग को "उठो" कहना पड़ता था। कोई झंडा, तगमा, सलामी और खिताब पाने पर भी एक शब्द धन्यवाद का नहीं बोल सके और कोई बिचारे इन में से दो ही एक पदार्थ पा कर ऐसे प्रसन्न हुए कि श्रीयुत वाइसराय पर अपनी जान और माल निछावर करने को तैयार थे। सब से बढ़कर बुद्धिमान हमें एक महात्मा देख पड़े जिन से वाइसराय ने कहा कि आप का नगर तो तीर्थ गिना जाता है। पर हम आशा करते हैं कि आप इस समय दिल्ली को भी तीर्थ ही के समान पाते हैं। इस के जबाब में वह बेधड़क बोल उठे कि यह जगह तो सब तीर्थों से बढ़ कर है, जहां आप हमारे "खुदा" मौजूद हैं। नौवाब लुहारु की भी अंगरेजी में बात चीत सुन कर ऐसे बहुत कम लोग होंगे जिन्हें हंसी न आई हो। नौबाब साहिब बोलते तो बड़े बेधड़क धड़ाके से थे, पर उसी के साथ कायदे और मुहावरे के भी खूब हाथ पांव तोड़ते थे। कितने वाक्य ऐसे थे जिनके कुछ अर्थ ही नहीं हो सकते, पर नौबाब साहिब को अपनी अंगरेजी का ऐसा कुछ विश्वास था कि अपने मुंह से केवल अपने ही को नहीं वरन अपने दोनों लड़कों को भी अंगरेजी, अरबी, ज्योतिष, गणित आदि ईश्वर जाने कितनी विद्याओं का पंडित बखान गए। नौबाब साहिब ने कहा कि हम ने और रईसों की तरह अपनी उमर खेल कूद में नहीं गवाई वरन लड़कपन ही से विद्या के उपार्जन में चित्त लगाया और पूरे पंडित और कवि हुए। इस के सिवाय नौबाब साहिब ने बहुत से राजभक्ति के वाक्य भी कहे। वाइसराय ने उत्तर दिया कि हम आप की अंगरेजी विद्या पर इतना मुबारक बाद नहीं देते जितना अंगरेज़ों के समान आप का चित्र होने के लिये। फिर नौबाब साहिब ने कहा कि मैं ने इस भारी अवसर के वर्णन में अरबी और फारसी का एक पद्य ग्रन्थ बनाया है जिसे मैं चाहता हूं कि किसी समय श्रीयुत को सुनाऊं। श्रीयुत ने जबाब दिया कि मुझे भी कविता का बड़ा अनुराग

है और मैं आपसा एक भाई कवि (Brother-Poet) देख कर बहुत प्रसन्न हुआ, और आप की कविता सुनने के लिये कोई अवकाश का समय अवश्य निकालूंगा।

२६ तारीख को सब के अन्त में महारानी तंजौर वाइसराय से मुलाकात को आईं। ये तास का सब वस्त्र पहने थीं और मुंह पर भी तास का नक़ाब पड़ा हुआ था। इसके सिवाय उन के हाथ पांव दस्ताने और मोजे से ऐसे ढंके थे कि सब के जी में उन्हें देखने की इच्छा ही रह गई। महारानी के साथ में उन के पति राजा सखाराम साहिब और दो लड़कों के सिवाय उन की अनुवादक मिसेस फर्थ भी थीं। महारानी ने पहले आकर वाइसराय से हाथ मिलाया और अपनी कुर्सी पर बैठ गईं। श्रीयुत वाइसराय ने उन के दिल्ली आने पर अपनी प्रसन्नता प्रगट की और पूछा कि आप को इतनी भारी यात्रा में अधिक कष्ट तो नहीं हुआ। महारानी अपनी भाषा की बोलचाल में बेगम भूपाल की तरह चतुर न थीं, इसीलिये ज़ियादा बातचीत मिसेस फर्थ से हुई, जिन्हें श्रीयुत ने प्रसन्न हो कर "मनभावनी अनुवादक" कहा। वाइसराय की किसी बात के उत्तर में एक बार महारानी के मुंह से "यस" निकल गया, जिस पर श्रीयुत ने बड़ा हर्ष प्रगट किया कि महारानी अगरेजी भी बोल सकती हैं, पर अनुवादक मेम साहिब ने कहा कि वे अंगरेज़ी में दो चार शब्द से अधिक नहीं जानतीं।

इस वर्णन के अन्त में यह लिखना अवश्य है कि श्रीयुत वाइसराय लोगों से इतनी मनोहर रीति पर बात चीत करते थे जिस से सब मगन हो जाते थे और ऐसा समझते थे कि वाइसराय ने हमारा सब से बढ़ कर आदर सत्कार किया। भेंट होने के समय श्रीयुत ने हर एक से कहा कि आप से दोस्ती कर के हम अत्यन्त प्रसन्न हुए, और तगमा पहिनाने के समय भी बड़े स्नेह से उन की पीठ पर हाथ रख कर बात की।

१ जनवरी को दरबार का महोत्सव हुआ।

यह दरबार, जो हिन्दुस्तान के इतिहास में सदा प्रसिद्ध रहेगा, एक बड़े भारी मैदान में नगर से पांच मील पर हुआ था। बीच में श्रीयुत वाइसराय का षटकोण चबूतरा था, जिसकी गुम्बदनुमा छत पर लाल कपड़ा चढ़ा और सुनहला रुपहला तथा शीशे का काम बना था। कंगुरे के ऊपर कलसे की जगह श्रीमती राज-राजेश्वरी का सुनहला मुकुट लगा था। इस चबूतरे पर श्रीयुत अपने राजसिंहासन में सुशोभित हुए थे। उन के बगल में एक कुर्सी पर लेडी साहिब बैठी थीं और ठीक पीछे खवास लोग हाथों में चंवर लिये और श्रीयुत के ऊपर कारचोबी छत्र लगाए खड़े थे। वाइसराय के सिंहासन के दोनों तरफ दो पेज (दामन बरदार) जिन

में एक श्रीयुत महाराज जम्बू का अत्यन्त सुन्दर सब से छोटा राजकुमार, और दूसरा कर्नल बर्न का पुत्र था, खड़े थे और उनके दहने बाएं और पीछे मुसाहिब और सेक्रेटरी लोग अपने अपने स्थानों पर खड़े थे। वाइसराय के चबूतरे के ठीक सामने कुछ दूर पर उस से नीचा एक अर्द्ध चंद्राकार चबूतरा था, जिस पर शासनाधिकारी राजा लोग और उनके मुसाहिब, मदरास और बंबई के गवरनर, पंजाब, बंगाल और पश्चिमोत्तर देश के लेफ़टिनेन्ट गवरनर, और हिन्दुस्तान के कमान्डरइनचीफ़ अपने २ अधिकारियों समेत सुशोभित थे। इस चबूतरे की छत बहुत सुन्दर नीले रंग के साटन की थी, जिस के आगे लहरियादार छज्जा बहुत सजीला लगा था। लहरिये के बीच २ में सुनहले काम के चांद तारे बने थे। राजाओं की कुर्सियां भी नीली साटन से मढ़ी थी और हर एक के सामने वे झन्डे गड़े थे जो उन्हें वाइसराय ने दिये थे, और पीछे अधिकारियों की कुर्सियां लगी थीं। जिन पर भी नीली साटन चढ़ी थीं। हर एक राजा के साथ एक २ पोलिटिकल अफसर भी था। इनके सिवाय गवर्नमेन्ट के भारी २ अधिकारी भी यहीं बैठे थे। राजा लोग अपने २ प्रान्तों के अनुसार बैठाए गए थे, जिस से ऊपर नीचे बैठने का बखेड़ा बिल्कुल निकल गया था। सब मिला कर ६३ शासनधिकारी राजाओं को इस चबूतरे पर जगह मिली थी, जिन के नाम नीचे लिखे हैं:—

महाराज अजयगढ़, बड़ोदा, बिजावर, भरतपुर, चरखारी, दतिया, ग्वालियर, इन्दौर, जयपुर, जम्बू, जोधपुर, करौली, किशुनगढ़, पन्ना, मैसूर, रीवां, उर्छा, महाराना उदयपुर, महाराव राजा अलवर, बूंदी, महाराज राना झलावर, राना धौलपुर, राजा बिलासपुर, बमरा, बिरौंदा, चम्बा, छतरपुर, देवास, धार, फ़रीदकोट, जींद, खरोंद, कूचबिहार, मन्डी, नाभा नाहन, राजपीपला, रतलाम, समथर, सुकेत, टिहरी, रावा जिगनो टोरी, नौवाब टोंक, पटौदी, मलेरकोटला, लुहारू, जूनागढ़, जौरा, दुजाना, बहावलपुर, जागीरदार अलीपुरा, बेगम भूपाल, निज़ाम हैदराबाद, सरदार कलसिया, ठाकुर साहिब भावनगर, मुर्बी, पिपलोदा, जागीरदार पालदेव, मीर खैरपुर, महन्त कोंदका, नन्दगांव, और जाम नवानगर।

वाइसराय के सिंहासन के पीछे, परन्तु राजसी चबूतरे की अपेक्षा उस से अधिक पास, धनुषखण्ड के आकार की श्रेणियां चबूतरों की ओर बनी थीं जो दस भागों में बांट दी गई थीं। इन पर आगे की तरफ थोड़ी सी कुर्सियां और पीछे सीढ़ीनुमा बेन्चें लगी थीं, जिन पर नीला कपड़ा मढ़ा था। यहां ऐसे राजाओं को जिन्हें शासन का अधिकार नहीं है और दूसरे सरदारों, रईसों, समाचारपत्रों के सम्पादकों और यूरोपियन तथा हिन्दुस्तानी अधिकारियों को, जो गवर्न्मेन्ट के नेवते में आये थे या जिन्हें तमासा देखने के लिये टिकट मिले थे, बैठने की जगह दी गई

थी। ये २००० के अनुमान होंगे। क़िलात के खां, गोश्रा के गवरनर जेनरल, विदेशी राजदूत, बाहरी राज्यों के प्रतिनिधि समाज और अन्य देश सम्बन्ध कान्सल लोगों की कुर्सियां भी श्रीयुत वाइसराय के पीछे सरदारों और रईसों की चौकियों के आगे लगी थीं।

दरबार की जगह दक्खिन तरफ़ १५००० से ज़ियादा सरकारी फौज हथियार बांधे लैस खड़ी थी, और उत्तर तरफ़ राजा लोगों की सजीली पलटनें भांति २ की वरदी पहने और चित्र विचित्र शस्त्र धारण किये परा बांधे खड़ी थीं। इन सब की शोभा देखने से काम रखती थीं। इस के सिवाय राजा लोगों के हाथियों के परे जिन पर सुनहली अमारियां कसी थीं। और कारचोबी झूलें पड़ी थीं, तोपों की क़तारें, सवारों की नंगी तलवारों और भालों की चमक, फरहरों का उड़ना, और दो लाख के अनुमान तमासा देखने वालों की भीड़ जो मैदान में डटी थी ऐसा समा दिखलाती थी जिसे देख जो जहां था वहीं हक्का बक्का हो खड़ा रह जाता था। वाइसराय के सिंहासन के दोनों तरफ़ हाइलैन्डर लोगों का गार्ड आव आनर और बाजेवाले थे, और शासनाधिकारी राजाओं के चबूतरे पर जाने के जो रास्ते बाहर की तरफ़ थे उन के दोनों ओर भी गार्ड आव आनर खड़े थे। पौने बारह बजे तक सब दरबारी लोग अपनी अपनी जगहों पर आ गए थे। ठीक बारह बजे श्रीयुत वाइसराय की सवारी पहुंची और धनुष्खण्ड आकार के चबूतरों की श्रेणियों के पास एक छोटे से खेमे के दरवाजे पर ठहरी। सवारी पहुंचते ही बिल्कुल फौज ने शस्त्रों से सलामी उतारी पर तोपें नहीं छोड़ी गईं। खेमे में श्रीयुत ने जा कर स्टार आव इण्डिया के परम प्रतिष्ठित पद के ग्रांड मास्टर का वस्त्र धारण किया। यहां से श्रीयुत राजसी छत्र के तले अपने राजसिंहासन की ओर बढ़े। श्री लेडी लिटन श्रीयुत के साथ थीं और दोनों दामनबरदार बालक, जिनका हाल ऊपर लिखा गया है, पीछे दो तरफ से दामन उठाए हुए थे। श्रीयुत के आगे आगे उनके स्टाफ के अधिकारी लोग थे। श्रीयुत के चलते ही बन्दीजन (हेरल्ड लोगों) ने अपनी तुरहियां एक साथ मधुर रीति पर बजाईं और फौजी बाजे से ग्रांड मार्च बजने लगा। जब श्रीयुत राजसिंहासन वाले मनोहर चबूतरे पर चढ़ने लगे तो ग्रांडमार्च का बाजा बन्द हो गया और नेशनल ऐन्थेम अर्थात् (गौड सेव दि क्वीन—ईश्वर महारानी को चिरंजीवी रक्खे) का बाजा बजने लगा और गार्ड्स आव आनर ने प्रतिष्ठा के लिये अपने शस्त्र झुका दिये। ज्यों ही श्रीयुत राजसिंहासन पर सुशोभित हुए बाजे बन्द हो गए और सब राजा महाराजा, जो वाइसराय के आने के समय खड़े हो गए थे, बैठ गए। इस के पीछे श्रीयुत ने मुख्यबन्दी (चीफ़ हेरल्ड) को आज्ञा की कि श्रीमती महारानी के राजराजेश्वरी की पदवी लेने के विषय में अंगरेज़ी में राजाज्ञापत्र पढ़ो। यह आज्ञा होते ही बन्दीजनों ने, जो दो पांती में

राज्यसिंहासन के चबूतरे के नीचे खड़े थे, तुरही बजाई और उसके बन्द होने पर मुख्य बन्दी ने नीचे की सीढ़ी पर खड़े होकर बड़े ऊंचे स्वर से राजाज्ञापत्र पढ़ा, जिसका उल्था यह है...

महारानी विक्टोरिया।

ऐसी अवस्था में कि हाल में पार्लियामेंट की जो सभा हुई उन में एक ऐक्ट पास हुआ है जिस के द्वारा परम कृपालु महारानी को यह अधिकार मिला है कि यूनाइटेड किंगडम और उस के आधीन देशों की राजसम्बन्धी पदवियों और प्रशस्तियों में श्रीमती जो कुछ चाहें बढ़ा लें और इस ऐक्ट में यह भी वर्णन है कि ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्ड के एक में मिल जाने के लिये जो नियम बने थे उन के अनुसार भी यह अधिकार मिला था कि यूनाइटेड किंगडम और उस के आधीन देशों की राजसम्बन्धी पदवी और प्रशस्ति इस संयोग के पीछे वही होगी जो श्रीमती ऐसे राजाज्ञापत्र के द्वारा प्रकाश करेंगी, जिस पर राज की मुहर छपी रहे। और इस ऐक्ट में यह भी वर्णन है कि ऊपर लिखे हुए नियम और उस राजाज्ञापत्र के अनुसार जो १ जनवरी सन् १८०१ को राजसी मुहर होने के पीछे प्रकाश किया गया, हम ने यह पदवी ली "विक्टोरिया ईश्वर की कृपा से ग्रेट ब्रिटेन और आयर-लेण्ड के संयुक्त राज की महारानी स्वधर्म रक्षिणी", और इस ऐक्ट में यह भी वर्णन है कि उस नियम के अनुसार जो हिन्दुस्तान के उत्तम शासन के हेतु बनाया गया था हिन्दुस्तान के राज का अधिकार, जो उस समय तक हमारी ओर से ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सपुर्द था, अब हमारे निज अधिकार में आ गया और हमारे नाम से उसका शासन होगा। इस नये अधिकार की हम कोई विशेष पदवी लें, और इन सब वर्णनों के अनन्तर इस ऐक्ट में यह नियम सिद्ध किया गया है कि ऊपर लिखी हुई बात के स्मरण निमित्त कि हम ने अपने किये हुए राजाज्ञापत्र के द्वारा हिन्दुस्तान के शासन का अधिकार अपने हाथ में ले लिया हम को यह योग्यता होगी कि यूनाइटेड किंगडम और उस के आधीन देशों की राजसम्बन्धी पदवियों और प्रशस्तियों में जो कुछ उचित समझें बढ़ा लें। इसलिये अब हम अपने प्रिवी-काउन्सिल की सम्मति से योग्य समझ कर यह प्रचलित और प्रकाशित करते हैं कि आगे को, जहां सुगमता के साथ हो सके, सब अवसरों में और सम्पूर्ण राजपत्रों पर जिन में हमारी पदवियां और प्रशस्तियां लिखी जाती हैं, सिवाय सनद, कमिशन, अधिकारदायक पत्र, दानपत्र, आज्ञापत्र, नियोगपत्र, और इसी प्रकार के दूसरे पत्रों के जिन का प्रचार यूनाइटेड किंगडम के बाहर नहीं है, यूनाइटेड किंगडम और उस के आधीन देशों की राजसम्बन्धी पदवियों में नीचे लिखा हुआ वाक्य मिला दिया जाय, अर्थात् लैटिन भाषा में "इन्डिई एम्परेट्रिक्स" [हिन्दुस्तान की राज-

राजेश्वरी] और अंगरेजी भाषा में "एम्प्रेस आव इन्डिया" । और हमारी यह इच्छा और प्रसन्नता है कि उन राजसम्बन्धी पत्रों में जिन का वर्णन ऊपर हुआ है यह नई पदवी न लिखी जाय । और हमारी यह भी इच्छा और प्रसन्नता है कि सोने, चांदी और तांबे के सब सिक्के, आज कल यूनाइटेड किंगडम में प्रचलित हैं और नीतिविरुद्ध नहीं गिने जाते और इसी प्रकार तथा आकार के दूसरे सिक्के जो हमारी आज्ञा से अब छापे जायंगे, हमारी नई पदवी लेने से भी नीतिविरुद्ध न समझे जायंगे, और जो सिक्के यूनाईटेड किंगडम के आधीन देशों में छापे जायंगे और जिन का वर्णन राजाज्ञापत्र में उन जगहों के नियमित और प्रचलित द्रव्य करके किया गया और जिन पर हमारी सम्पूर्ण पदवियां या प्रशस्तियां उन का कोई भाग रहे, और वे सिक्के जो राजाज्ञापत्र के अनुसार अब छापे और चलाए जायेंगे इस नई पदवी के बिना भी उस देश के नियमित और प्रचलित द्रव्य समझे जायेंगे, जब तक कि इस विषय में हमारी कोई दूसरी प्रसन्नता न प्रगट की जायगी ।

हमारी विन्डसर की कचहरी से २८ अपरेल को एक हजार आठ सौ छिहत्तर के सन् में हमारे राज के उनतालीसवें बरस में प्रसिद्ध किया गया ।

ईश्वर महरानी को चिरंजीवी रक्खे ।

जब चीफ़ हेरल्ड राजाज्ञापत्र को अंग्रेजी में पढ़ चुका तो हेरल्ड लोगों ने फिर तुरही बजाई । इस के पीछे फारेन सेक्रेटरी ने उर्दू में तर्जुमा पढ़ा । इस के समाप्त होते ही बादशाही झंडा खड़ा किया गया और तोपखाने से, जो दरबार के मैदान में मौजूद था, १०१ तोपों की सलामी हुई । चौंतीस २ सलामी होने के बाद बन्दूकों की बाढ़ें दग़ीं और जब १०१ सलामियां तोपों से हो चुकीं तब फिर बाढ़ छूटी और नैशनल ऐन्थेम का बाजा बजने लगा ।

इस के अनन्तर श्रीयुत वाइसराय समाज को ऐड्रेस करने के अभिप्राय से खड़े हुए । श्रीयुत वाइसराय के खड़े होते ही सामने के चबूतरे पर जितने बड़े २ राजा लोग और गवरनर आदि अधिकारी थे खड़े हो गए पर श्रीयुत ने बड़े ही आदर के साथ दोनों हाथों से हिन्दुस्तानी रीति पर कई बार सलाम करके सब से बैठ जाने का इशारा किया । यह काम श्रीयुत का, जिस से हम लोगों की छाती दूनी हो गई, पायोनियर सरीखे अंगरेजी समाचार पत्रों के सम्पादकों को बहुत बुरा लगा, जिन की समझ में वाइसराय का हिन्दुस्तानी तरह पर सलाम करना बड़े हेठाई और लज्जा की बात थी । खैर, यह तो इन अंगरेजी अखबारवालों की मामूली बातें हैं । श्रीयुत वाइसराय ने जो उत्तम ऐड्रेस पढ़ा उसका तर्जमा हम नीचे लिखते हैं :—

सन् १८५८ ईसवी की १ नवम्बर को श्रीमती महारानी की ओर से एक इश्तिहार जारी हुआ था जिस में हिन्दुस्तान के रईसों और प्रजा को श्रीमती की कृपा का विश्वास कराया गया था जिस को उस दिन से आज तक वे लोग राज-सम्बन्धी बातों में बड़ा अनमोल प्रमाण समझते हैं।

वे प्रतिज्ञा एक ऐसी महारानी की ओर से हुई थीं जिन्हों ने आज तक अपनी बात को कभी नहीं तोड़ा, इस लिये हमें अपने मुंह से फिर उन का निश्चय कराना व्यर्थ है। १८ बरस की लगातार उन्नति ही उन को सत्य करती है और यह भारी समागम भी उन के पूरे उतरने का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस राज के रईस और प्रजा जो अपनी २ परम्परा की प्रतिष्ठा निर्विघ्न भोगते रहे और जिन की अपने उचित लाभों की उन्नति के यत्न में सदा रक्षा होती रही उन के वास्ते सरकार की पिछले समय की उदारता और न्याय आगे के लिये पक्की ज़मानत हो गई है।

हम लोग इस समय श्रीमती महारानी के राजराजेश्वरी की पदवी लेने का समाचार प्रसिद्ध करने के लिये इकट्ठे हुए हैं, और यहां महारानी के प्रतिनिधि होने की योग्यता से मुझे अवश्य है कि श्रीमती के उस कृपायुक्त अभिप्राय को सब पर प्रगट करूं जिस के कारण श्रीमती ने अपने परम्परा की पदवी और प्रशस्ति में एक पद और बढ़ाया।

पृथ्वी पर श्रीमती महारानी के अधिकार में जितने देश हैं जिन का विस्तार भूगोल के सातवें भाग से कम नहीं है और जिन में तीस करोड़ आदमी बसते हैं। उन में से इस और प्राचीन राज के समान श्रीमती किसी दूसरे देश पर कृपा-दृष्टि नहीं रखतीं।

सब जगह और सदा इगलिस्तान के बादशाहों की सेवा में प्रवीण और परि-श्रमी सेवक रहते आए हैं, परन्तु उन से बढ़ कर कोई पुरुषार्थी नहीं हुए, जिन की बुद्धि और वीरता से हिन्दुस्तान का राज सरकार के हाथ लगे और बराबर अधिकार में बना रहा। इस कठिन काम में जिस में श्रीमती की अंगरेजी और देशी प्रजा दोनों ने मिल कर भली भांति परिश्रम किया है श्रीमती के बड़े २ स्नेही और सहायक राजाओं ने भी शुभचिंतकता के साथ सहायता दी है जिन की सेना ने लड़ाई की मिहनत और जीत में श्रीमती की सेना का साथ दिया है, बुद्धिपूर्वक सत्यशीलता के कारण मेल के लाभ बने रहे और फैलते गए हैं, और जिन का आज यहां वर्त्तमान होना, जो कि श्रीमती के राजराजेश्वरी की पदवी लेने का शुभ दिन है, इस बात का प्रमाण है कि वे श्रीमती के अधिकार की उत्तमता में विश्वास रखते हैं और उन के राज में एका बने रहने में अपना भला समझते हैं।

श्रीमती महारानी इस राज को जिसे उन के पुरुषों ने प्राप्त किया और श्रीमती ने दृढ़ किया एक बड़ा भारी पैतृक धन समझती हैं जो रक्षा करने और

अपने वंश के लिये संपूर्ण छोड़ने के योग्य है, और उस पर अधिकार रखने से अपने ऊपर यह कर्त्तव्य जानती हैं कि अपने बड़े अधिकार को इस देश की प्रजा की भलाई के लिये यहां के रईसों के हकों पर पूरा २ ध्यान रख कर काम में लावें। इस लिये श्रीमती का यह राजसी अभिप्राय है कि अपनी पदवियों पर एक और ऐसी पदवी बढ़ावें जो आगे सदा को हिन्दुस्तान के सब रईसों और प्रजा के लिये इस बात का चिन्ह हो कि श्रीमती के और उन के लाभ एक हैं और महारानी की ओर राजभक्ति और शुभचिंतकता रखनी उन पर उचित है।

वे राजसी घरानों की श्रेणियां जिन का अधिकार बदल देने और देश की उन्नति करने के लिये ईश्वर ने अंगरेजी राज को यहां जमाया, प्रायः अच्छे और बड़े बादशाहों से खाली न थीं परन्तु उन के उत्तराधिकारियों के राज्यप्रबन्ध से उन के राज्य के देशों में मेल न बना रह सका। सदा आपस में झगड़ा होता रहा और अंधेर मचा रहा। निबल लोग बली लोगों के शिकार थे और बलवान् अपने मद के। इस प्रकार आपस की काट मार और भीतरी झगड़ों के कारण जड़ से हिल कर और निर्जीव होकर तैमूरलंग का भारी घराना अन्त को मिट्टी में मिल गया, और उस के नाश होने का कारण यह था कि उस से पश्चिम के देशों की कुछ उन्नति न हो सकी।

आजकल ऐसी राजनीति के कारण जिस से सब जाति और सब धर्म के लोगों की समान रक्षा होती है श्रीमती की हर एक प्रजा अपना समय निर्विघ्न सुख से काट सकती है। सरकार के समभाव के कारण हर आदमी बिना किसी रोक टोक के अपने धर्म के नियमों और रीतों को बरत सकता है। राजराजेश्वरी का अधिकार लेने से श्रीमती का अभिप्राय किसी को मिटाने या दबाने का नहीं है बरन रक्षा करने और अच्छी तरह राह बतलाने का। सारे देश की शीघ्र उन्नति और उस के सब प्रान्तों की दिन पर दिन वृद्धि होने से अंगरेजी राज के फल सब जगह प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं।

हे अंगरेजी राज के कार्यकर्त्ता और सच्चे अधिकारी लोग,—वह आप ही लोगों के लगातार परिश्रम का गुण है कि ऐसे २ फल प्राप्त हैं, और सब के पहले आप ही लोगों पर मैं इस समय श्रीमती की ओर से उन की कृतज्ञता और विश्वास को प्रगट करता हूं। आप लोगों ने इस भारी राज की भलाई के लिये उन प्रतिष्ठित लोगों से जो आप के पहले इन कामों पर नियत थे किसी प्रकार कम कष्ट नहीं उठाया है और आप लोग बराबर ऐसे साहस, परिश्रम और सचाई के साथ अपने तन, मन को अर्पण करके काम करते रहे जिस से बढ़ कर कोई दृष्टांत इतिहासों में न मिलेगा।

कीर्त्ति के द्वार सब के लिये नहीं खुले हैं परन्तु भलाई करने का अवसर सब किसी को जो उसकी खोज रखता हो मिल सकता है। यह बात प्रायः कोई गवर्नमेन्ट नहीं कर सकती कि अपने नौकरों के पदों को जल्द २ बढ़ाती जाय, परन्तु मुझे विश्वास है कि अंगरेजी सरकार की नौकरी में 'कर्त्तव्य का ध्यान' और 'स्वामी की सेवा में तन, मन को अर्पण कर देना' ये दोनों बातें 'निज प्रतिष्ठा' और 'लाभ' की अपेक्षा सदा बढ़ कर समझी जायंगी। यह बात सदा से होती आई है और होती रहेगी कि इस देश के प्रबन्ध के बहुत से भारी २ और लाभदायक काम प्रायः बड़े २ प्रतिष्ठित अधिकारियों ने नहीं किये हैं वरन ज़िले के उन अफ़सरों ने जिन की धैर्यपूर्वक चतुराई और साहस पर सम्पूर्ण प्रबन्ध का अच्छा उतरना सब प्रकार आधीन है।

श्रीमती की ओर से राजकाज सम्बन्धी और सेना सम्बन्धी अधिकारियों के विषय में जितनी गुणग्राहकता और प्रशंसा प्रगट करूं थोड़ी है क्योंकि ये तमाम हिन्दुस्तान में ऐसे सूक्ष्म और कठिन कामों को अत्यन्त उत्तम रीति पर करते रहे हैं और जिन से बढ़कर सूक्ष्म और कठिन काम सरकार अधिक से अधिक विश्वासपात्र मनुष्य को नहीं सौंप सकती। हे राजकाज सम्बन्धी और सेना सम्बन्धी अधिकारियो,—जो कमसिनी में इतने भारी ज़िम्मे के कामों पर मुक़र्रर होकर बड़े परिश्रम चाहनेवाले नियमों पर तन, मन से चलते हो और जो निज पौरुष से उन जातियों के बीच राज्य प्रबन्ध के कठिन काम को करते हो जिन की भाषा धर्म और रीतें आप लोगों से भिन्न हैं—मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि अपने २ कठिन कामों को दृढ़ परन्तु कोमल रीत पर करने के समय आप को इस बात का भरोसा रहे कि जिस समय आप लोग अपने जाति की बड़ी कीर्त्ति को थामे हुए हैं और अपने धर्म के दयाशील आज्ञाओं को मानते हैं उसी के साथ आप इस देश के सब जाति और धर्म के लोगों पर उत्तम प्रबन्ध के अनमोल लाभों को फैलाते हैं।

उस पच्छिम की सभ्यता के नियमों को बुद्धिमानी के साथ फैलाने के लिये जिस से इस भारी राज का धन बराबर बढ़ता गया हिन्दुस्तान पर केवल सरकारी अधिकारियों ही का एहसान नहीं है, बरन यदि मैं इस अवसर पर श्रीमती की उस यूरोपियन प्रजा को जो हिन्दुस्तान में रहती है पर सरकारी नौकर नहीं हैं, इस बात का विश्वास कराऊं कि श्रीमती उन लोगों के केवल उस राजभक्ति ही की गुणग्राहकता नहीं करतीं जो वे लोग उन के और उन के सिंहासन के साथ रखते हैं किन्तु उन लाभों को भी जानती और मानती हैं जो उन लोगों के परिश्रम से हिन्दुस्तान को प्राप्त होते हैं तो मैं अपनी पूज्य स्वामिनी के विचारों को अच्छी तरह न वर्णन करने का दोषी ठहरूंगा।

इस अभिप्राय से कि श्रीमती को अपने राज के इस उत्तम भाग की प्रजा को सरकार की सेवा या निज की योग्यता के लिये गुणग्राहकता देखाने का विशेष अवसर मिले श्रीमती ने कृपापूर्वक केवल स्टार आफ इन्डिया के परम प्रतिष्ठित पद वालों और आर्डर आफ ब्रूटिश इन्डिया के अधिकारियों की संख्या ही में थोड़ी सी बढ़ती नहीं की है किन्तु इसी हेतु एक बिलकुल नया पद और नियत किया है जो "आर्डर आफ दि इन्डियन एम्पायर" कहलावेगा।

हे हिन्दुस्तान की सेना के अंगरेजी और देशी अफ़सर और सिपाहियो,—आप लोगों ने जो भारी भारी काम बहादुरी के साथ लड़ भिड़ कर सब अवसरों पर किये और इस प्रकार श्रीमती की सेना की युद्धकीर्त्ति को थामे रहे उसका श्रीमती अभिमान के साथ स्मरण करती हैं। श्रीमती इस बात पर भरोसा रख कर कि आगे को भी सब अवसरों पर आप लोग उसी तरह मिल जुल कर अपने भारी कर्त्तव्य को सचाई के साथ पूरा करेंगे, अपने हिन्दुस्तानी राज में मेल और अमन चैन बनाए रखने के विश्वास का काम आप लोगों ही को सपुर्द करती हैं।

हे वालन्टियर सिपाहियो,—आप लोगों के राजभक्ति पूर्ण और सफल यत्न जो इस विषय में हुए हैं कि यदि प्रयोजन पड़े तो आप सरकार की नियत सेना के साथ मिल कर सहायता करें इस शुभ अवसर पर हृदय से धन्यवाद पाने के योग्य हैं।

हे इस देश के सरदार और रईस लोग,—जिन की राजभक्ति इस राज के बल को पुष्टकरनेवाली है और जिन की उन्नति इस के प्रताप का कारण है, श्रीमती महारानी आप को यह विश्वास करके धन्यवाद देती हैं कि यदि इस राज के लाभों में कोई विघ्न डाले या उन्हें किसी तरह का भय हो तो आप लोग उस की रक्षा के लिये तैयार हो जायंगे। मैं श्रीमती की ओर से उन के नाम से दिल्ली आने के लिये आप लोगों का जी से स्वागत करता हूं, और इस बड़े अवसर पर आप लोगों के इकट्ठे होने को इंगलिस्तान के राजसिंहासन की और आप लोगों की उस राजभक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण गिनता हूं और श्रीमान् प्रिन्स आफ वेल्स के इस देश में आने के समय आप लोगों ने दृढ़ रीत पर प्रगट की थी। श्रीमती महारानी आप के स्वार्थ को अपना स्वार्थ समझती हैं, और अंगरेजी राज के साथ उस के कर देने वाले और स्नेही राजा लोगों का जो शुभ संयोग से सम्बन्ध है उस के विश्वास को दृढ़ करने और उस के मेल जोल को अचल करने ही के अभिप्राय से श्रीमती ने अनुग्रह करके वह राजसी पदवी ली है जिसे आज हम लोग प्रसिद्ध करते हैं।

हे हिन्दुस्तान की राजराजेश्वरी के देसी प्रजा लोग,—इस राज की वर्त्तमान दशा और उस के नित्य के लाभ के लिये अवश्य है कि उस के प्रबन्ध को जांचने और सुधारने का मुख्य अधिकार ऐसे अंगरेज़ी अफ़सरों को सपुर्द किया जाय

जिन्हों ने राज काज के उन तत्वों को भली भांति सीखा है जिन का बरताव राज-राजेश्वरी के अधिकार स्थिर रहने के लिये अवश्य है। इन्हीं राजनीति जानने वाले लोगों के उत्तम प्रयत्नों से हिन्दुस्तान सभ्यता में दिन २ बढ़ता जाता है और यही उस के राजकाज सम्बन्धी महत्व का हेतु और नित्य बढ़नेवाली शक्ति का गुप्त कारण है, और इन्हीं लोगों के द्वारा पच्छिम देश का शिल्प, सभ्यता और विज्ञान, (जिन के कारण आज दिन यूरोप लड़ाई और मेल दोनों में सब से बढ़-चढ़ कर है) बहुत दिनों तक पूरब के देशों में वहां वालों के उपकार के लिये प्रचलित रहेगा।

परन्तु हे हिन्दुस्तानी लोग ! आप चाहे जिस जाति या मत के हों यह निश्चय रखिये कि आप इस देश के प्रबन्ध में योग्यता के अनुसार अंगरेज़ों के साथ भली भांति काम पाने के योग्य हैं, और ऐसा होना पूरा न्याय भी है, और इंगलिस्तान तथा हिन्दुस्तान के बड़े राजनीति जानने वाले लोग और महारानी की राजसी पार्लमेन्ट व्यवस्थापकों ने बार बार इस बात को स्वीकार भी किया है। गवर्नमेन्ट आव इण्डिया ने भी इस बात को अपने सम्मान और राजनीति के सब अभिप्रायों के लिये अनुकूल होने के कारण माना है। इसलिये गवर्नमेन्ट आव इंडिया इन बरसों में हिंदुस्तानियों की कारगुज़ारी के ढंग में, मुख्यकर बड़े बड़े अधिकारियों के काम में पूरी उन्नति देख कर संतोष प्रगट करती है।

इस बड़े राज्य का प्रबन्ध जिन लोगों के हाथ में सौंपा गया है उन में केवल बुद्धि ही के प्रबल होने की आवश्यकता नहीं है वरन उत्तम आचरण और सामाजिक योग्यता की भी वैसी ही आवश्यकता है। इस लिये जो लोग कुल, पद, और परम्परा के अधिकार के कारण आप लोगों में स्वाभाविक ही उत्तम हैं उन्हें अपने को और संतान की केवल उस शिक्षा के द्वारा योग्य करना है जिस से कि वे श्रीमती महारानी अपनी राजराजेश्वरी की गवर्नमेन्ट की राजनीति के तत्वों को समझें और काम में ला सकें और इस रीत से उन पदों के योग्य हों जिन के द्वार उनके लिये खुले हैं।

राजभक्ति, धर्म, अपक्षपात, सत्य और साहस देश सम्बन्धी मुख्य धर्म हैं उन का सहज रीत पर बरताव करना आप लोगों के लिये बहुत आवश्यक है, और तब श्रीमती की गवर्नमेन्ट राज के प्रबन्ध में आप लोगों की सहायता बड़े आनन्द से अंगीकार करेगी, क्योंकि पृथ्वी के जिन २ भागों में सरकार का राज है वहां गवर्नमेन्ट अपनी सेना के बल पर उतना भरोसा नहीं करती जितना कि अपनी सन्तुष्ट और एकजी प्रजा की सहायता पर जो अपने राजा के वर्त्तमान रहने ही में अपना नित्य मंगल समझ कर सिंहासन के चारों ओर जी से सहायता करने के लिये इकट्ठे हो जाते हैं।

श्रीमती महारानी निबल राज्यों को जीतने या आसपास की रियासतों को मिला लेने से हिन्दुस्तान के राजकी उन्नति नहीं समझतीं वरन इस बात में कि इस कोमल और न्याययुक्त राजशासन को निरुपद्रव बराबर चलाने में इस देश की प्रजा क्रम से चतुराई और बुद्धिमानी के साथ भागी हो। जो उन का स्नेह और कर्त्तव्य केवल अपने ही राज से नहीं है वरन श्रीमती शुद्ध चित्त से यह भी इच्छा रखती हैं कि जो राजा लोग इस बड़े राज की सीमा पर हैं और महारानी के प्रताप की छाया में रहकर बहुत दिनों से स्वाधीनता का सुख भोगते आते हैं उन से निष्कपट भाव और मित्रता को दृढ़ रक्खें। परन्तु यदि इस राज के अमन चैन में किसी प्रकार के बाहरी उपद्रव की शंका होगी तो श्रीमती हिन्दुस्तान की राजराजेश्वरी अपने पैतृक राज की रक्षा करना खूब जानती हैं। यदि कोई विदेशी शत्रु हिन्दुस्तान के इस महाराज पर चढ़ाई करे तो मानो उस ने पूरब के सब राजओं से शत्रुता की, और उस दशा में श्रीमती जो अपने राज के अपार बल, अपने स्नेही और कर देने वाले राजाओं की वीरता और राजभक्ति और अपनी प्रजा के स्नेह और शुभ चिन्तकता के कारण इस बात की भरपूर शक्ति है कि उसे परास्त कर के दंड दें।

इस अवसर पर उन पूरब के राजाओं के प्रतिनिधियों का वर्तमान होना जिन्हों ने दूर २ देशों से श्रीमती को इस शुभ समारम्भ के लिये बधाई दी है, गवर्नमेन्ट आव इन्डिया के मेल के अभिप्राय, और आस पास के राजाओं के साथ उस के मित्र का स्पष्ट प्रमाण है। मैं चाहता हूं कि श्रीमती की हिन्दुस्तानी गवर्नमेन्ट की तरफ से श्रीयुत खानक़िलात, और उन राजदूतों को जो इस अवसर पर श्रीमती के स्नेही राजाओं के प्रतिनिधि हो कर दूर २ से अंगरेज़ी राज में आए हैं, और अपने प्रतिष्ठित पाहुने श्रीयुत गवरनर जेनरल गोआ, और बाहरी कान्सलों का स्वागत करूं।

हे हिन्दुस्तान के रईस और प्रजा लोग,—मैं आनन्द के साथ आप लोगों को वह कृपा पूर्वक संदेशा जो श्रीमती महारानी आप लोगों की राजराजेश्वरी ने आज आप लोगों को अपने राजसी और राजेश्वरीय नाम से भेजा है सुनाता हूं। जो वाक्य श्रीमती के यहां से आज सवेरे तार के द्वारा मेरे पास पहुंचे हैं ये हैं :—

"हम विक्टोरिया ईश्वर की कृपा से, संयुक्त राज (ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैन्ड) की महारानी, हिन्दुस्तान की राजराजेश्वरी, अपने वाइसराय के द्वारा अपने सब राज काज सम्बन्धी और सेनासंबंधी अधिकारियों, रईसों, सरदारों और प्रजा को जो इस समय दिल्ली में इकट्ठे हैं अपना राजसी और राजराजेश्वरीय आशीर्वाद भेजते हैं और उस भारी कृपा और पूर्ण स्नेह का विश्वास कराते हैं जो हम अपने हिन्दुस्तान के महाराज्य की प्रजा की ओर रखते हैं।

हम को यह देख कर जी से प्रसन्नता हुई कि हमारे प्यारे पुत्र का इन लोगों ने कैसा कुछ आदर सत्कार किया, और अपने कुल और सिंहासन की ओर उन की राजभक्ति और स्नेह के इस प्रमाण से हमारे जी पर बहुत असर हुआ। हमें भरोसा है कि इस शुभ अवसर का यह फल होगा कि हमारे और हमारी प्रजा के बीच स्नेह और दृढ़ होगा, और सब छोटे बड़े को इस बात का निश्चय हो जायगा कि हमारे राज में उन लोगों को स्वतन्त्रता, धर्म और न्याय प्राप्त हैं, और हमारे राज का अभिप्राय और इच्छा सदा यही है कि उन के सुख की वृद्धि, सौभाग्य की अधिकता, और कल्याण की उन्नति होती रहे।"

मुझे विश्वास है कि आप लोग इन कृपामय वाक्यों की गुणग्राहकता करेंगे।

ईश्वर विक्टोरिया संयुक्त राज को महारानी और हिंदुस्तान की राजराजेश्वरी की रक्षा करे।

इस अड्रेस के समाप्त होते ही नैशनल ऐन्थेम का बाजा बजने लगा और सेना ने तीन बार हुर्रे शब्द की आनन्दध्वनि की। दरबार के लोगों ने भी परम उत्साह से खड़े होकर हुर्रे शब्द और हथेलियों की आनन्दध्वनि करके अपने जी का उमंग प्रगट किया। महाराज सेंधिया, निज़ाम की ओर से सर सालारजंग, राजपुताना के महाराजों की तरफ़ से महाराज जयपुर, बेगम भूपाल, महाराज कश्मीर, और दूसरे सरदारों ने खड़े होकर एक दूसरे को बधाई दी और अपनी राजभक्ति प्रगट की। इस के अनन्तर श्रीयुत वाइसराय ने आज्ञा की कि दरबार हो चुका और अपनी चार घोड़े की गाड़ी पर चढ़कर अपने खेमे को रवाने हुए।

हास्य और व्यंग लेख

१. कंकड़ स्तोत्र
२. अंग्रेज़ स्तोत्र
३. मदिरा स्तोत्र
४. स्त्री सेवा पद्धति
५. पांचवें पैगंबर
६. स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन
७. लेवी प्राण लेवी
८. जाति विवेकिनी सभा
९. सबै जाति गोपाल की

[इन निबंधों से भारतेंदु की हास्यपूर्ण और विनोदशील प्रवृत्ति का परिचय मिलता है और यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि विनोदशीलता के पीछे गंभीरता भी छिपी हुई है, और वह निरर्थक नहीं है। इन निबंधों में शुद्ध हास्य, वाक्यपटुता और व्यंग सभी के दर्शन होते हैं। इनके हास्य और व्यंग का उद्देश्य सामाजिक सुधार और संस्कार है। हास्यपूर्ण लेखों में ही किसी के भाषाधिकार की परीक्षा होती है। भारतेंदु इस परीक्षा में पूर्णतया सफल हुए हैं। इन लेखों की भाषा का चलतापन और बाँकापन देखने के योग्य है।

इन स्तोत्रों में हल्का व्यंग छिपा है। 'कंकड़ स्तोत्र' में काशी की म्यूनिसिपैलिटी के कुप्रबंध पर छींटे हैं। बरसात में सड़क के ठीक न होने पर क्या दशा होती है यही इस लेख का वस्तुविषय है। कंकड़ों की करामात पर लिखा गया यह लेख भारतेंदु के शुद्ध हास्य का उत्कृष्ट उदाहरण है।

' अंग्रेज स्तोत्र ' में अंग्रेजों पर व्यंग है, किन किन रूपों में उनकी भावना की गई है यह द्रष्टव्य है। 'मदिरा स्तोत्र' में मदिरा की व्याज-है। 'स्त्री सेवा पद्धति' में स्त्री जाति के संबंध में व्यंगात्मक उद्गार प्रकट किए गए हैं।

'पांचवें पैगंबर' में पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण पर व्यंग है। कहा जाता है कि 'चूसा' पैगंबर का रूप बना कर भारतेंदु स्वयं रंगमंच पर आए थे।

'स्वर्ग में विचार सभा' में भारतेंदु ने केशवचंद्र सेन और स्वामी दयानंद पर आक्षेप किए हैं। मनोरंजन की सामग्री के साथ बहुत सी ज्ञातव्य बातें भी इस लेख में मिलेंगी। इसकी कल्पनात्मक शैली उल्लेखनीय है।

'लेवी प्राण लेवी' में राजनीतिक व्यंग है। काशी में सरकार का जो दर्बार हुआ था उसमें वहां के रईसों की क्या दशा हो रही थी इसी का हास्यपूर्ण वर्णन है। इसी लेख के कारण भारतेंदु को सरकार का कोप-भाजन बनना पड़ा था।

'जाति विवेकिनी सभा' और 'सबै जाति गोपाल की' लेखों में सामाजिक व्यंग है। काशी के पंडित जो किसी लोभ वश जाति-व्यवस्था दिया करते थे वे ही इस के लक्ष्य हैं। ये दोनों लेख पत्र की संवाद वाली नाटकीय शैली में लिखे गए हैं। भारतेंदु-युग में इस प्रकार की नाटकीय शैली का बड़ा प्रचार था किंतु आगे चलकर हिंदी के लेखकों ने न जाने क्यों इसका परित्याग कर दिया।]

कङ्कड़ स्तोत्र।

कङ्कड़ देव को प्रणाम है ० देव नहीं महादेव क्योंकि काशी के कङ्कड़ शिव शङ्कर समान हैं ॥१॥

हे कङ्कड़ समूह ! आज कल आप नई सड़क से दुर्गा जी तक बराबर छाये हो इस से काशीखण्ड "तिले तिले" सच्च हो गया अतएव तुम्है प्रणाम है ॥२॥

हे लीलाकारिन् ! आप केशी शकट बृषभ खरादि के नाशक हो इस से मानो पूर्व्वार्द्ध की कथा हो अतएव व्यासों की जीविका हो ॥३॥

आप सिर समूह भञ्जन हो क्योंकि कीचड़ में लोग आप पर मुंह के बल गिरते हैं।

आप पिष्ट पशु की व्यवस्था हो क्यों कि लोग आप की कढ़ी बना कर आप को चूसते हैं ॥

आप पृथ्वी के अन्तरगर्भ से उत्पन्न हो ० संसार के गृह-निर्माण मात्र के कारण भूत हो० जल कर भी सफेद होते हो ० दुष्टों के तिलक हो० ऐसे अनेक कारण हैं जिन से आप नमस्करणीय हो ॥

हे प्रबल वेग अवरोधक ! गरुड़ की गति भी आप रोक सकते हो और की कौन कहै इस से आप को प्रणाम है ॥४॥

हे सुन्दरी सिङ्गार ! आप बड़ी के बड़े हो क्योंकि चूना पान की लाली का कारण है और पान रमणी गण के मुख शोभा का हेतु है इस से आप को प्रणाम है ॥५॥

हे चुङ्गी नन्दन ! ऐन सावन में आप को हरियाली सूझी है क्योंकि दुर्गा जी पर इसी महीने में भीड़ विशेष होती है तो हे हठ मूर्ते तुम को दण्डवत है ॥६॥

हे प्रबुद्ध ! आप शुद्ध हिन्दू हो क्योंकि शरह बिरुद्ध हो आब आया और आप न बर्खास्त हुए इस से आप को सलाम है ॥७॥

हे स्वेच्छाचारिन् ! इधर उधर जहां आप ने चाहा अपने को फैलाया है ० कहीं पटरी के पास पड़े हो। कहीं बीच में अड़े हो अतएव हे स्वतंत्र आप को नमस्कार है ॥८॥

हे ऊभड़ खाभड़ शब्द सार्थ कर्त्ता ! आप कोण मिति के नाशकारी हो क्योंकि आप अनेक विचित्र कोण सम्बलित हो अतएव हे ज्योतिषारि आप को नमस्कार है ॥ ९ ॥

हे शस्त्र समष्टि ! आप गोली गोला के चचा, छर्रों के परदादा, तीर के फल तलवार की धार और गदा के गोला हो इस से आप को प्रणाम है ॥ १० ॥

आहा ! जब पानी बरसता है तब सड़क रूपी नदी में आप द्वीप से दर्शन देते हौ इस से आप के नमस्कार में सब भूमि को नमस्कार हो जाता है ॥ ११ ॥

आप अनेकों के वृद्धतर प्रपितामह हो क्योंकि ब्रह्मा का नाम पितामह है उन का पिता पङ्कज है उस का पङ्क है और आप उस के भी जनक हौ इस से आप पूजनीयों में एल एल डी हौ ॥ १२ ॥

हे जोगा जिवलाल रामलालादि मिस्त्री समूह जीविका दायक ! आप कमानी भञ्जक धुरी विनाशक बारनिश चूर्णक हौ॰ केवल गाड़ी ही नहीं घोड़े की नाल सुम बैल के खुर और कटंक चूर्ण को भी आप चूर्ण करने वाले हौ इस से आप को नमस्कार है ॥ १३ ॥

आप में सब जातियों और आश्रमों का निवास है॰ आप वानप्रस्थ हौ क्योंकि जङ्गलों में लुड़कते हौ॰ ब्रह्मचारी हौ क्योंकि बटु हौ॰ गृहस्थ हौ, चूना रूप से, सन्यासी हौ क्योंकि घुट्टमघुट्ट हौ॰ ब्राह्मण हौ क्यों कि प्रथम वर्ण हो कर भी गली गली मारे २ फिरते हौ॰ क्षत्री हौ क्योंकि खत्रियों की एक जाति हौ॰ वैश्य हौ क्योंकि कांटा बांट दोनों तुम में है॰ शूद्र हौ क्योंकि चरण सेवा करते हौ॰ कायस्थ हौ क्योंकि एक तो ककार का मेल दूसरे कचहरीपथावरोधक तीसरे क्षत्रियत्व हम आप का सिद्ध कर ही चुके हैं॰ इस से हे सर्ववर्ण स्वरूप तुम को नमस्कार है ॥१४॥

आप ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य्य, अग्नि, जम, काल दक्ष और वायु के कर्त्ता हौ, मन्मथ की ध्वजा हौ, राजा पद दायक हौ, तन मन धन के कारण हौ, प्रकाश के मूल शब्द की जड़ और जल के जनक हौ, बरञ्च भोजन के भी स्वादु कारण हौ क्योंकि आदि व्यंजन के भी बाबा जान हौ इसी से हे कङ्कड़ तुम को प्रणाम है ॥१५॥

आप अंगरेजी राज्य में श्रीमती महाराणी विक्टोरिया और पार्लामेण्ट महा सभा के आछत, प्रबल प्रताप श्रीयुत गवर्नर जनरल और लेफ्टेण्ट गवर्नर के बर्तमान होते, साहिब कमिश्नर साहिब मेजिस्ट्रेट और साहिब सुपरइनटेण्डेण्ट के इसी नगर में रहते और साढ़े तीन तीन हाथ के पुलिस इंसपेक्टरों और कांस्टिबलों के जीते भी गणेश चतुर्थी की रात को स्वच्छन्द रूप से नगर में भड़ाभड़ लोगों के सिर पर पड़ कर रुधिर धारा से नियम और शान्ति का अस्तित्व बहा देते हौ अतएव हे अङ्गरेज़ी राज्य में नवाबी स्थापक ! तुम को नमस्कार है ॥

यह लम्बा चौड़ा स्तोत्र पढ़ कर हम विनती करते हैं कि आप अब सद्दे सिकन्दरी बाना छोड़ो या हटो या पिटो ॥

इति॰

अथ अंगरेज़ स्तोत्रं लिख्यते ॥

अस्य श्री अंगरेज स्तोत्र माला मंत्रस्य श्री भगवान मिथ्या प्रशंसक ऋषिः जगतीतलं छंदः कलियुगदेवता सर्व वर्ण शक्तयः शुश्रुषा वीजं वाक्स्तम्भ कीलकम् अंगरेज प्रसन्नार्थे पठे विनियोगः ॥ अथ ऋष्यादि न्यासः ॥ मिथ्या प्रशंसक ऋषये नमः शिरसि ॥ जगतीतलं छन्दसे नमः मुखे ॥ कलियुगो देवतायै नमः हृदि ॥ सर्व वर्ण शक्तयः भ्योनमः पादयोः ॥ शुश्रुषा वीजायनमः गुह्ये ॥ वाक्स्तम्भ कीलकाय नमः सर्वाङ्गे ॥ अथ मंत्र ॥ ओं नमः श्री अंगरेजेभ्यः मिथ्याप्रशंसक नाथेभ्यः सर्वशक्तिमद्भ्यः स्वाहाः ॥ अथ करन्यासः ॥ ओं अगुष्ठाभ्यांनमः ॥ नमस्तर्जनीभ्यांनमः ॥ श्री अंगरेज़ेभ्यः मध्यमाभ्यांनमः ॥ मिथ्याप्रशंसकनेथेभ्यः ॥ सर्वशक्तिमद्भ्यः कनिष्ठकाभ्यां नमः ॥ स्वाहा करतल करप्रष्ठाभ्यां नमः ॥ अथ ध्यानम् यं ब्रह्मा वरुणेंद्र रुद्र मरुत स्तुन्वंतिदिव्यैः स्तवैर्वेदैः सांग पदक्रमोपनिषदैर्गायंति यं सामगाः ॥ ध्यानावस्थित तद्गतेनमनसा पश्यंति यं योगिनो यस्यांतं न विदुः सुरासुरगणा देवायतस्मै नमः ॥ १ ॥ इति ध्यानम्

हे अंगरेज् ! हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥

तुम नानागुण विभूषित सुन्दर कान्ति विशिष्ट, बहुत संपद युक्त हो; अतएव हे अंगरेज़ । हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

तुम हर्त्ता—शत्रुदल के; तुम कर्त्ता आईनादि के; तुम विधाता—नौकरियों के; अतएव हे अंगरेज़ ! हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ ३ ॥

तुम समर में दिव्यास्त्रधारी—शिकार में बल्लमधारी, विचारागार में अर्ध इंचि परिमित व्यासविशिष्ट वेत्रधारी आहार के समय कांटा चिमचधारी; अतएव हे अंगरेज़ हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥

तुम एक रूप से पुरी के ईश होकर राज्य करते हो; एक रूप से पण्य वीथिका में व्यापार करते हो; और एक रूप से खेत में हल चलाते हो; अतएव हे त्रिमूर्ते ! हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ ५ ॥

आप के सत्वगुण आप के ग्रंथों से प्रगट; आप के रजो गुण आप के युद्धों से प्रकाशित; एवं आप के तमोगुण भत्रप्रणीत भारतवर्षीय सम्बाद पत्रादिकों से विकसित; अतएव हे त्रिगुणात्मक ! हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ ६ ॥

तुम हो अतएव सत् हो; तुम्हारे शत्रु युद्ध में चित्; उम्मेदवारों को आनन्द; अतएव हे सच्चिदानंद हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ ७ ॥

तुम इन्द्र हो—तुम्हारी सेना वज्र है; तुम चन्द्र हो—इनकम् टैक्स तुम्हारा कलंक है; तुम वायु हो—रेल तुम्हारी गति है, तुम वरुण हो—जल में तुम्हारा राज्य है; अतएव हे अंगरेज़ ! हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ ९ ॥

तुम दिवाकर हो—तुम्हारे प्रकाश से हमारा अज्ञानांधकार दूर होता है; तुम अग्नि हो—क्यों कि सब खाते हो; तुम यम हो—विशेष करके अमला वर्ग के; अतएव हे अंगरेज् ! हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ १० ॥

तुम वेद हो—और रिग्यजुस्साम को नहीं मानते; तुम स्मृति हो—मन्वादि भूल गए; तुम दर्शन हो—क्योंकि न्याय मीमांसा तुम्हारे हाथ हैं; अतएव हे अंगरेज़ ! हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ ११ ॥

हे श्वेतकांत—तुम्हारा अमलधवल द्विरद रद शुभ्र महाश्मश्रु शोभित मुख-मण्डल देख करके हमे वासना हुई कि हम तुम्हारी स्तुति करैं अतएव हे अंगरेज़ हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ १२ ॥

तुम्हारी हरित कपिश पिंगल लोहित कृष्ण शुभ्रादि नानावर्ण शोभित, अतिशयरंजित, भल्लुकमेदमार्जितकुंतलावलि देखकर के हमको वासना हुई कि हम तुम्हारा स्तव करैं; अतएव हे अंगरेज़ ! हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥१३॥

हे वरद ! हमको वर दो; हम सिर पर शमला बांध के तुम्हारे पीछे पीछे दौड़ेंगे; तुम हमको चाकरी दो हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ १४ ॥

हे शुभंकर ! हमारा शुभ करो; हम तुम्हारी खुशामद करैंगे, और तुम्हारे जी की बात कहेंगे, हमको बड़ा बनाओ हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ १५ ॥

हे मानद ! हमको टाइटल दो, खिताब दो, खिलत दो, हमको अपना प्रसाद दो हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ १६ ॥

हे भक्तवत्सल ! हम तुम्हारा पात्रावशेष भोजन करने की इच्छा करते हैं; तुम्हारे कर स्पर्श से लोकमण्डल में महामानास्पद होने की इच्छा करते हैं; तुम्हारे स्वहस्तलिखित दो एक पत्र बाक्स में रखने की स्पर्द्धा करते हैं; हे अंग्रेज़ ! तुम हम पर प्रसन्न हो हम तुमको नमस्कार करते हैं ॥ १७ ॥

हे अंतरयामिन् ! हम जो कुछ करते हैं केवल तुमको धोखा देने को; तुम दाता कहो इस हेतु हम दान करते हैं; तुम परोपकारी कहो इस हेतु हम परोपकार करते हैं, तुम विद्यावान कहो इस हेतु हम विद्या पढ़ते हैं; अतएव हे अंग्रेज ! तुम हम पर प्रसन्न हो हम तुमको नमस्कार करते हैं ॥ १८ ॥

हम तुम्हारी इच्छानुसार डिस्पेंसरी करैंगे, तुम्हारे प्रीत्यर्थ स्कूल करैंगे, तुम्हारी आज्ञा प्रमाण चंदा देंगे; तुम हम पर प्रसन्न हो हम तुमको नमस्कार करते हैं ॥१९॥

हे सौम्य ! हम वही करैंगे जो तुमको अभिमत है; हम बूट पतलून पहिरैंगे; नाक पर चश्मा देंगे; कांटा और चिमिचे से टिबिल पर खायंगे; तुम हम पर प्रसन्न हो हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ २० ॥

हे मिष्टभाषिण ! हम मातृभाषा त्याग करके तुम्हारी भाषा बोलैंगे, पैतृक धर्म छोड़ के ब्राह्म धर्मावलंब करैंगे; बाबू नाम छोड़ कर मिष्टर नाम लिखवावेंगे; तुम हम पर प्रसन्न हो हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ २१ ॥

हे सुभोजक ! हम चावल छोड़ कर पावरोटी खायंगे; निषिद्धमांसविना हमारा भोजन ही नहीं बनता; कुक्कुर हमारा जलपान है, अतएव हे अंगरेज़ ! तुम हमको चरण में रक्खो हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ २२ ॥

हम विधवा विवाह करैंगे, कुलीनों की जाति मारैंगे, जातिभेद उठा देंगे—क्योंकि ऐसा करने से तुम हमारी सुख्याति करोगे; अतएव हे अंगरेज़ ! तुम हम पर प्रसन्न हो हम तुमको नमस्कार करते हैं ॥ २३ ॥

हे सर्वद ! हमको धन दो, मान दो, यश दो, हमारी सब वासना सिद्ध करो; हमको चाकरी दो, राजा करो राय बहादुर करो कौंसिल का मिंबर करो हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ २४ ॥

यदि यह न हो तो हमको डिनर होम में निमंत्रण करो; बड़ी २ कमेटियों का मिंबर करो सीनट का मिंबर करो, जसटिस करो, आनरेरी मजेस्ट्रेट करो; हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ २५ ॥

हमारी स्पीच सुनो, हमारा एसे पढ़ो, हमको वाह वाही दो, इतना ही होने से हम हिन्दू समाज की अनेक निंदा पर भी ध्यान न करैंगे, अतएव हम तुम्हीं को नमस्कार करते हैं ॥ २६ ॥

हे भगवन—हम अकिञ्चन हैं और तुम्हारे द्वार पर खड़े रहेंगे, तुम हम को अपने चित्त में रक्खो हम तुमको डाली भेजैंगे, तुम अपने मन में थोड़ासा स्थान मेरी ओर से भी दो, हे अंग्रेज ! हम तुमको कोटि २ साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं ॥ २७ ॥

तुम दशावतारधारी हो तुम मत्स हो क्योंकि समुद्रचारी हो और पुस्तक छाप छाप के वेद का उद्धार करते हो; तुम कच्छ हो; क्योंकि मदिरा, हलाहल वारांगना धन्वन्तर और लक्ष्मी इत्यादि रत्न तुमने निकाले हैं पर वहां भी विष्णुत्व नहीं त्याग किया है अर्थात् लक्ष्मी उन रत्नों में से तुमने आप लिया है; तुम श्वेत बाराह हो क्योंकि गौर हो और पृथ्वी के पति हो; अतएव हे अवतारिन् ! हम तुमको नमस्कार करते हैं ॥ २८ ॥

म नृसिंह हो क्योंकि मनुष्य और सिंह दोनोपन तुम में हैं टैक्स तुम्हारा क्रोध है और परम विचित्र हो; तुम बामन हो क्योंकि तुम बामन कर्म्म में चतुर

हो; तुम परशुराम हो क्योंकि पृथ्वी निक्षत्री करदी है; अतएव हे लीलाकारिन्! हम तुमको नमस्कार करते हैं ॥ २९ ॥

तुम राम हो क्योंकि अनेक सेतु बांधे हैं; तुम बलराम हो क्योंकि मद्यप्रिय और हलधारी हो; तम बुद्ध हो क्योंकि वेद के विरुद्ध हो; और तुम कल्कि हो क्योंकि शत्रु संहारकारी हो; अतएव हे दशविधिरूप धारिन्! हम तुमको नमस्कार करते हैं ॥ ३० ॥

तुम मूर्त्तिमान् हो; राज्य प्रबन्ध तुम्हारा अंग है न्याय तुम्हारा शिर है; दूर-दर्शिता तुम्हारा नेत्र है; और कानून तुम्हारे केश हैं अतएव हे अंगरेज़! हम तुमको नमस्कार करते हैं ॥ ३१ ॥

कौंसिल तुम्हारा मुख है; मान तुम्हारी नाक है; देश पक्षपात तुम्हारी मोछ हैं और टैक्स तुम्हारे कराल दंष्ट्रा हैं अतएव हे अंगरेज़! हम तुमको प्रणाम करते हैं हमारी रक्षा करो ॥ ३२ ॥

चुंगी और पूलिस तुम्हारी दोनों भुजा हैं; अमेल तुम्हारे नख हैं; अन्धेर तुम्हारा पृष्ट है और आमदनी तुम्हारा हृदय है; अतएव हे अंगरेज़! हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ ३३ ॥

खजाना तुम्हारा पेट है; लालच तुम्हारी क्षुधा है; सेना तुम्हारा चरण है; खिताब तुम्हारा प्रसाद है; अतएव हे विराटरूप अंगरेज़! हम तुमको प्रणाम करते हैं ॥ ३४ ॥

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानयागादिकाः क्रियाः ।
अंगरेजस्तव पाठस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥ १ ॥
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ।
स्टारार्थी लभते स्टारम् मोक्षार्थी लभते गतिं ॥ २ ॥
एक कालं दिकालं च त्रिकालं नित्य मुत्पठेत् ।
भव पाश विनिर्मुक्तः अंगरेज़लोकं स गच्छति ॥ ३ ॥

———

अथ मदिरास्तवराज ।

मदिरामादकं मद्यं सुराहालाहलप्रिया ।
गन्धोत्तमाप्रसन्नेरा परिश्रुत्वरुणात्मजा ॥
कास्यंकादम्बरीगन्धमादनीचपरिश्रुता ।
मानिकाकपिशीमत्ता माधवीकापिशायनम् ॥
कत्तोयंकामिनीसीता मदगन्धामदप्रिया ।
माध्वीकंमधुसन्धानमासवोमदनामृता ॥
वीरामनोज्ञामेधावी विधाता मदनी हली ।
श्रीमेदिनी सुप्रतिभा महानन्दामधूलिका ॥
मदोत्कंठागुणारिष्ठं मैरेयं मदवल्लभा ।
कारणंसरकः सीधुर्मदिष्ठाचपरिप्लुता ॥
तत्वं कल्पं स्वादुरसा शुण्डाकपिशमब्धिजा ।
हराहरं देवश्रृष्टा मार्द्वीकं दुष्टमेवच ॥
खर्जूरंपानसंद्राक्षं माक्षिकंतालमैक्षरम् ।
टांकमन्नोविकोरीत्थं मधूकंनारिकेलजं ॥
गौड़ीमाध्वीतयापैष्टी माद्याचाद्यास्वरूपिणी ।
कुलीनकुलसर्वस्वा तन्त्रसारामनोहरा ॥
मकारपंचमध्यस्था देवीप्रीतिकरीशिवा ।
वीरपेयानित्यसिद्धा भैरवी भैरेव प्रिया ॥
शूद्रसेव्याराजपेया घुर्णाघूर्णितकारिणी ।
चन्द्रानुजादेवपीता दैत्यालक्ष्मीसहोदरा ॥
म्लेच्छप्रियादानवेज्या यादवान्वयनाशिनी ।
गोरण्डागौरसंसेव्या फ्रांसदेवसमुद्भवा ॥
शराबमयदुख्तरिरभवत्गुलगूंश्राफताबशर ।
ब्राण्डीशाम्पिन्पोर्टवाइन् क्लारेट्एकश्वास्तुहाकुज़िन ॥
मुज़ेलह्विस्कीमार्टल श्रोल्डटाम् हेनिसी शेरी ।
बीहाइववैडेलिस्मेनी रम्वीयर् बरमौथुज़ ॥
क्यूरेसिया कागनक्लेण्डर श्रएिटलोपिका ।
वाइन्मगैलिसाइवाइन् मरु वरमूएकावाईटा ॥
दुधिया दुधुवादुधधीदारूमददुलारिया ।
कलबारप्रियाकालीकलवरियानिवासिनी ॥

होटलीलोटलीलोटनाशिनीकोटलीचला।
धनमानादिसंहर्त्री ग्रैंएडटोटलकारिणी ॥
पंचापंचपरिव्यक्ता पंचपंचप्रपंचिता।
इमानि श्री महामद्य नामानिवदने सदा ॥
तिष्ठन्तुसेविनांसख्या क्रमात्सार्द्धशतानि च।
यः पठेत्थातरुत्पाय नामसार्द्धशतम्मुदा ॥
धनमानंपरित्यज ज्ञातिपंक्त्याच्युतोभवेत्।
निन्दितोबहुभिर्लोकैर्मुखस्वासपराङ्मुखैः ॥
बलहीनो क्रियाहीनो मूत्रकृत् लुंठतेद्वितौ।
पीत्वापीत्वापुनःपीत्वा यावल्लुठतिभूतले।
उत्थाय च पुनः पीत्वा नरोमुक्तिमवाप्नुयात् ॥

इति श्री पंचमहातंत्रे प्रपंचपटले पंचमकारवर्णने मदिरास्तवराजे मदिरा सार्द्ध-शत नाम संपूर्णम् ॥ अथ स्तवराज ॥

हे मदिरे तुम साक्षात् भगवती का स्वरूप हो जगत तुमसे व्याप्त है तुम्हारी स्तुति करने को कौन समर्थ है अतएव तुम्हे प्रणाम ही करना योग्य है ॥ हे मद्य ! तुम्हें सौत्रामणि यज्ञ में तो वेद ने प्रत्यक्ष आदर किया है परन्तु तुम अपने सेव्य रूप प्रच्छन्न अमृत प्रवाह में संपूर्ण वैदिक यज्ञ वितान को प्लावित करती हो अतएवं श्रुतिश्रुते तुम्हें—हे वारुणि ! स्मृतिकारों ने भी तुम्हारी प्रवृत्ति नित्य मानी है निवृत्ति केवल अपने पद्धतिपने के रक्षण के हेतु लिखी है अतएव हे स्मृतिस्मृते ! तुम्हें प्रणाम है ॥

हे गौड़ि ! पुराणों में तो तुम्हारी सुधा सारिणी कथा चारों ओर अति-वाहित है निषेध के बहाने भी तुम्हारी विधि ही विधि है इससे हे पुराणप्रति-पादिते ! तुम्हें प्रणाम है ॥

हे सोम सन्नते। चन्द्रमा में तुम्हारा निवास, समुद्र तुम्हारी उत्पत्ति का स्थान और सकल देव मनुष्य असुर तुम्हारे पति हैं अतएव हे त्रिलोकगामिनि ! तुम्हें प्रणाम है।

हे बोतल वासिनि ! देवी ने तुम्हारे बल से शुम्भादि को मारा यादव लोग तुम्हें पी के कट मरे बलदेव जी ने तुम्हारे प्रताप से सूत का सिर काटा अतएव हे शक्ति। तुम्हें प्रणाम है ॥

हे सकलमादकसामग्रीशिरोरत्ने। तन्त्र केवल प्रचार ही को बनाए हैं, और इनका कोई प्रयोजन नहीं था केवल तुममय जगत् करने को इनका अवतार है अतएव हे स्वतन्त्रे ! तुम्हें प्रणाम हैं ॥

हे ब्रांडि ! बौद्ध और जैन धर्म की तुम सारभूत हो। मुसलमानों में मुफ्त के मिस हलाल हो। क्रिस्तानों में भी साक्षात् प्रभु की रुधिर रूप हो और ब्राह्मोधर्म की तो तुम एकमात्र आड़ हो अतएव हे सर्वधर्ममर्मरूपे ! तुम्हें प्रणाम है ॥

हे शाम्पिन् ! आगे के लोग सब तुम्हारे सेवक थे यह श्लोकों के प्रमाण सहित बाबू राजेन्द्र लाल के लेकचर से सिद्ध है तो अब तुम्हारा कैसे त्याग हो सकता है अतएव हे सिद्धे ! तुम्हें प्रणाम है ॥

हे ओल्डटाम ! तुम्हें भारतवर्षियों ने उत्पन्न किया रूम चीन इत्यादि देश के लोगों को कुछ परिष्कृत किया अब अंग्रेजों और फ़रासीसियों ने तुम्हें फिर से नए भूषण पहिराए अतएव हे सर्व विलायतभूषिते ! तुम्हें प्रणाम है ॥

हे कुलमर्य्यादासंहारकारिणि ! तुमसे बढ़ कर न किसी का बल है न आग्रह न मान तुम्हारे हेतु तुम्हारे प्रेमी कुल धन नाम मान बल मेल रूप वरञ्च प्राण का भी परित्याग करते हैं अतएव हे प्रणयैक पात्रे। तुम्हें—

हे प्रेजुडिस विध्वंसिनि ! तुम्हारे प्रताप से लोग अनेक प्रकार की शंका परित्याग करके स्वच्छन्द विहार करते हैं जिनके बाप दादे हुक्का भांग सुरती से भी परहेज़ करते थे वे अब सभ्यों की मजलिस में तुम्हारा सेवन करके जाना ऐब नहीं समझते अतएव हे बोल्डनेस जननि तुम्हें—

हे सर्वानन्दसार भूते ! तुम्हारे बिना किसी बात में मज़ा ही नहीं मिलता रामलीला तुम्हारे बिना निरी सुपनखा की नाक मालूम पड़ती है नाच निरे फूटे कांच और नाटक निरे उच्चाटक बेवकूफी के फाटक दिखाई पड़ते हैं अतएव हे मजे की पोटरी तुम्हें प्रणाम है ॥

हे मुखकज्जलावलेपके ! होटल नाच जाति पांति घाट बाट मेला तमाशा दरबार घोड़दौर इत्यादि स्थान में तुम्हें लेकर जाने से लोग देखो कैसी स्तुति करते हैं अतएव हे पूर्वपुरुषसंचितविद्याधनराजसंपदर्कादिजन्यकठिनप्राप्यप्रतिष्ठासमूहसत्यानाशनि ! तुम्हें बारंबार प्रणाम ही करना योग्य है ॥

इति।

———

स्त्री सेवा पद्धति।

(हिन्दी प्रदीप से)

इस पूजा मे अश्रु जल ही पाद्य है, दीर्घ श्वास ही अर्घ्य है, आश्वासन ही आचमन है, मधुर भाषण ही मधुपर्क है, सुवर्णालङ्कार ही पुष्प हैं, धैर्य ही धूप है दीनता ही दीपक है, चुप रहना ही चन्दन है और बनारसी साड़ी ही बिल्वपत्र हैं, आयुरूपी आंगन में सौन्दर्य्य तृष्णा रूपी खूंटा है, उपासक का प्राण पुञ्ज छाग उस में बंध रहा है, देवी के सुहाग का खप्पर और प्रीति की तरवार है, प्रत्येक शनिवार की रात्रि इस में महाष्टमी है, और पुरोहित यौवन है ।।

पाद्यादि उपचार करके होम के समय यौवन पुरोहित उपासक के प्राण समिधो में मोहाग्नि लगाकर सर्व नाश तन्त्र के मन्त्रों से आहुति दे "मान खण्डन के लिये निद्रा स्वाहा" "बात मानने के लिये मा बाप बन्धन स्वाहा" वस्त्रालङ्कारादि के लिये यथा सर्वस्व स्वाहा" "मन प्रसन्न करने के लिये यह लोक परलोक स्वाहा" इत्यादि, होम के अनन्तर हाथ जोड़ कर स्तुति करै ।।

हे स्त्री देवी ! संसार रूपी आकाश में तुम गुब्बारा हो, क्यों कि बात २ में आकाश में चढ़ा देती हो, पर जब धक्का दे देती हो तब समुद्र में डूबना पड़ता है अथवा पर्वत के शिखरों पर हाड़ चूर्ण हो जाते हैं, जीवन के मार्ग में तुम रेलगाड़ी हो जिस समय रसना रूपी एञ्जिन तेज करती हो एक घड़ी भर में चौदहो भुवन दिखला देती हो, कार्य्यक्षेत्र में तुम इलेक्ट्रिक टेलीग्राफ हो, बात पड़ने पर एक निमेष में उसे देश देशान्तर में पहुंचा देती हो तुम भवसागर में जहाज़ हो, बस अधम को पार करो ।।

तुम इन्द्र हो श्वसुर कुल के दोष देखने के लिये तुम्हारे सहस्र नेत्र हैं स्वामी के शासन करने में तुम वज्रपाणि हो । रहने का स्थान अमरावती है क्योंकि जहां तुम हो वहीं स्वर्ग है ।।

तुम चन्द्रमा हो तुम्हारा हास्य कौमुदी है उस से मन का अन्धकार दूर होता है तुम्हारा प्रेम अमृत है जिसकी प्रारब्ध में होता है वह इसी शरीर से स्वर्ग सुख अनुभव करता है और लोक में जो तुम व्यर्थ पराधीन कहलाती हो यही तुम्हारा कलङ्क है ।।

तुम वरुण हो क्योंकि इच्छा करते ही अश्रुजल से पृथ्वी आर्द्र कर सकती हो। तुम्हारे नेत्र जल की देखा देखी हम भी गल जाते हैं ।

तुम सूर्य्य हो तुम्हारे ऊपर आलोक का आवरण है पर भीतर अन्धकार का वास है, हमें तुम्हारे एक घड़ी भर भी आखों के आगे न रहने से दसों दिशा अन्धकारमय मालूम होता है पर जब माथे पर चढ़ जाती हो तब तो हम लोग उत्ताप के मारे मर जाते हैं। किम्बहुना देश छोड़ कर भाग जाने की इच्छा होती है ॥

तुम वायु हो क्योंकि जगत की प्राण हो तुम्हें छोड़ कर कितनी देर जी सक्ते हैं ? एक घड़ी भर तुम्हें बिना देखे प्राण तड़फड़ाने लगते हैं, जल में डूब जाने की इच्छा होती है पर तुम प्रखर वहती हो किसके बाप की सामर्थ्य है कि तुम्हारे सामने खड़ा रहै ॥

तुम यम हो यदि रात्रि को बाहर से आने में बिलम्ब हो, तो तुम्हारी वक्तृता नरक है। यह यातना जिसे न सहनी पड़े वही पुण्यवान है उसी की अनन्त तपस्या है ॥

तुम अग्नि हो क्योंकि दिन रात्रि हमारी हड्डी हड्डी जलाया करती हो ॥

तुम विष्णु हो तुम्हारी नथ तुम्हारा सुदर्शन चक्र है उस के भय से पुरुष असुर माथा मुड़ा कर तटस्थ हो जाते हैं एक मन से तुम्हारी सेवा करै तो सशरीर बैकुण्ठ को प्राप्त कर सक्ता है।

तुम ब्रह्मा हो तुम्हारे मुख से जो कुछ बाहर निकलता है वही हम लोगों का बेद है और किसी बेद को हम नहीं मानते तुम को चार मुख हैं क्योंकि तुम बहुत बोलती हो सृष्टिकर्ता प्रत्यक्ष ही हो पुरुषों के मनहंस पर चढ़ती हौ चारो वेद तुहारे हाथ में हैं इस्से तुम को प्रणाम है ॥

तुम शिव हौ सारे घर का कल्याण तुम्हारे आधीन है भुजंग बेनी धारिणी हौ (३) तृशूल तुम्हारे हाथ में हैं क्रोध में और कंठ में विष है तौ भी आशुतोष हौ॰

इस दिव्य स्तोत्र पाठ से तुम हम पर प्रसन्न हो॰ समय पर भोजनादि दो॰ बालकों की रक्षा करो॰ भृगुटी धनु के सन्धान में हमारा बध मत करो॰ और हमारे जीवन को अपने कोप से कंटकमय मत बनाओ ॰

पांचवें पैगम्बर ।

(Dec. 15th 1873 हरिश्चन्द्र मैगज़ीन)

लोगो दौड़ो, मैं पांचवां पैगम्बर हूं, दाऊद, ईसा, मूसा, मुहम्मद ये चार हो चुके मेरा नाम चूसा पैगम्बर है, मैं विधवा के गर्भ से जन्मा हूं और ईश्वर अर्थात् खुदा की ओर से तुम्हारे पास आया हूं इस्से मुझ पर ईमान लाओ नहीं तो ईश्वर के कोप में पड़ोगे ।।

मुझ को पृथ्वी पर आए बहुत दिन हुए पर अब तक भगवान का हुक्म नहीं था इस्से मैं कुछ नहीं बोला । बोलना क्या वल्कि जानवर बना घात लगाए फिरता था और मेरा नाम लोगों ने हूश, बन्दर, लंका की सैना और म्लेच्छ रक्खा था पर अब मैं उन्हीं लोगों का गुरु हूं क्यौंकि ईश्वर की आज्ञा ऐसी है इस्से लोगो ईमान लाओ ।।

जैसे मुहम्मदादि के अनेक नाम थे वैसे ही मेरे भी तीन नाम हैं। मुख्य चूसा पैगम्बर दूसरा डब्ल और तीसरा सुफ़ैद और पूरा नाम मेरा श्रीमान आनरेबल हज़रत डबल सुफ़ैद चूसा अलैहुस्सलाम पैग़म्बर आखिर कुन जमां है ।।

मुझ को कोह चूर पर खुदा ने जल्वा दिखलाया और हुक्म दिया कि मैंने पैग़म्बर किया तुझ को तू लोगों को ईमान में ला । दाऊद ने बेला बजा के मुझे पाया तू हारमोनियम बजावैगा, मूसा ने मेरी खुदाई रौशनी से कोहतूर जलाया तू आप अपनी रौशनी से जमाने को जला कर काला करैगा, ईसा मर के जिया था तू मरा हुआ जीता रहैगा, मुहम्मद ने चांद को बीच में से काटा तू चांद का कलंक मिटा अपनी टीका बनावैगा ।।

(ख़ुदा कहता है) देख मूर्त्तिपूजन अर्थात् बुत परस्ती को ज़माने से उठा देना क्योंकि मैं ने हाफ् सिविलाइज्ड किया दुनिया को पूरा तुझ को; जो शराब सब पैग़म्बरों पर हराम थी मैं ने हलाल किया तेरे पर, बल्कि तेरे मज़हब की निशानी है जो तेरे आस्मान पर आने के बाद रूए ज़मीन पर क़ायम रहैगी क्यौंकि यद्यपि "तेरा राज्य सर्व्वदा न रहैगा पर यह मत यहां सर्व्वदा दृढ़ रहैगा ।।"

(ख़ुदा कहता है) मैं ने हलाल किया तुझ पर गऊ, सूअर, मेडक, कुत्ता वगैरह सब जानवर जो कि हराम हैं; मैं ने हलाल किया तुझ पर, अपने मज़हब के वास्ते झूठ बोलना, और हुकुम दिया तुझ को औरतों की इज्ज़त करने, और उनको अपने बराबर हिस्सा देने की, बल्कि यारों के संग जाने की; और सिवाय पब्लिक प्रेमों के कोहे चूर पर जहां मैंने जलवा दिखाया तुझ को तीन आराम गाह फ़रिश्तों

से बनवा कर तुझे बख्शीं और तुझ पर हलाल कीं जिन तीनों का नाम कुर्सी, झुर्सी और दगली है ॥

(खुदा कहता है) देख; खबरदार, मुंह वगैरह किसी बदन को साफ न रखना नहीं तो तुझे शैतान बहका देंगे, लिबास सियाह हमेशः पहिरना और मेरी याद में सिर खुला रखना ॥

मैं ख़ुदा के इन हुक्मों को मान कर तुम्हारे पास आया हूं, मेरा कहा मानो और ईमान लाओ मैं ख़ुदा का प्यारा पुत्र, माशूक़, जोरु, नायब नहीं हूं बल्कि ख़ुदा का दूसरा हूं। यह इज्ज़त किसी पैग़म्बर को नहीं मिली थी ॥

लोगो ! मेरा कहा मानो ख़ुदा मुझ से डरता है क्योंकि मैं प्रच्छन्न नास्तिक हूं पर पैगम्बरिन के डर से आस्तिक हो गया हूं इस से ख़ुदा को हमेशः हमारी दलीलों से अपने उड़ जाने का डर रहता है तो जब खुदा मुझ से डरता है तब उस के बन्दो तुम मुझ से बहुत ही डरो ॥

मेरे प्यारे अंगरेजो ! तुम खौफ मत करो मैं तुमको सब गुनाहों से बरी कराऊंगा क्योंकि नाशिनैलिटी बड़ी चीज़ है पैगम्बरिन और तुम्हारा रंग एक है इससे मैं तुम्हारे पापों को छिपा दूंगा ॥

प्यारे मुसलमानो ! मैं कुछ तुम से डरता हूं क्योंकि तुम को मार डालने में देर नहीं लगती इस्से मैं तुम्हारी बेहतरी के वास्ते अपनी धर्म पुस्तक में लिख जाऊंगा कि हमारे सक्सेसर लोग तुम्हारी खातिर करें तुम्हारे न पढ़ने पर अफसोस करें और तुम्हारे वास्ते स्कूल और कालेज बनावें ॥

मगर मेरे मेमने हिन्दुओ ! तुम को मैं सब प्रकार नीच समझूंगा क्योंकि यह वह देश है जो ईश्वर के क्रोध रूपी अग्नि से जल रहा है और जलैगा और ईश्वर के कोप से तुम्हारा नाम जीते हुए, हाफ सिविलाइज्ड, रूड, काफिर, बुत-परस्त, अंधेरे में पड़े हुए, बारबरस, वाजिबुल क़त्ल होगा ॥

देखो हम भविष्य बानी कहते हैं तुम रोते और सिर टकराते भागते भागते फिरोगे, बुद्धि सीखते ही नहीं बल नाश हो चुका है एक केवल धन बचा है सो भी सब निकल जायगा, यहां महंगी पड़ैगी पानी न बरसैगा, हैजा डेंगू वगैरह नए नए रोग फैलेंगे, परस्पर का द्वेष और निन्दा करना तुम्हारा स्वभाव हो जायगा, आलस छा जायगी, तब तुम उस के कोप अग्नि से जल के खाक के सिवा कुछ न बचोगे।

पर प्यारो ! जो मुझ सच्चे पैगम्बर पर ईमान लावेगा वह छुड़ाया जायगा क्योंकि मैं खुशामद पसंद और घूस लेने वाला ज़ाहिरा नहीं हूं मैं ईश्वर का सच्चा पैग़म्बर और दुनिया का सच्चा बादशाह हूं क्योंकि सूरज को खुदा ने रौशनी

मेरे लिये इनायत की चांद में ठंढक सिर्फ मेरे लिए बख्शी गई और ज़मीन आस्मान मेरे लिए पैदा किया बल्कि फरिश्ते भी मेरे लिए बनाए गए।

ईमान लाओ मुझ पर, डाली चढ़ाओ मुझ को, जूता उतार के आओ मेरी मज़ारेपाक पर, पगड़ी पहन कर आओ मेरे मकबरे में, इनाम दो इनको और धक्का खाओ उनका जो मेरे मुजाविर हैं क्योंकि वे मूजिब होंगे तुम्हारी नज़ात के, और जो कुछ मैं कहूं उसे सुनकर हुजूर, साहब बहुत ठीक फरमाते हैं, बजा इरशाद, बेशक, ठीक है, सत्त बचन जा आज्ञा, जे आज्ञा, जो आज्ञा, इसमें क्या शक, ऐसा ही है, मेरे मालिक, मेरे बाबाजान, सब सच फरमाते हो—कहो क्योंकि जो मैं कहता हूं वह ईश्वर कहता है; और मेरे अनादरों को सहो अगर मेरी दरगाह में तुम्हें गरदनिया दी जाय तो उस की कुछ लाज मत करो फिर घुसो क्योंकि मेरी दरगाह से निकलना दुनिया से निकल जाना है।

देखो शराब पियो, विधवाविवाह करो, बालपाठशाला करो, आगे से लेने जाओ, बाल्यविवाह उठाओ, जातिभेद मिटाओ, कुलीन का कुल सत्यानाश में मिलाओ, होटल में लव करना सीखो, स्पीच दो, क्रिकेट खेलो, शादी में खर्च कम करो, मेमबर बनो, मेम्बर बनो, दरबारदारी करो, पूजा पत्री करो, चुस्त चालाक बनो, हम नहीं जानते को हम नहीं जानता कहो, चक्कर दार टोपी पहिनो, वा सिर खुला रक्खो पर पौशाक सब तंग रक्खो, नाच बाल थियेटर अंटा गुड़गुड़ बंक प्रिवी सिवी मैं घरों में लाओ क्योंकि ये काम मूजिब होंगे ख़ुदा और मेरी खुशी को।

शराब पियो, कुछ शंका मत करो, देखो मैं पीता हू क्यौंकि यह ख़ुदा का ख़ून है जो उस ने मुझे पिलाया और मैंने दुनिया को और यह उस के दोनों बादशाहत की निशानी है जो बाद मेरे बहुत दिन तक कायम रहैगी क्यौंकि उसने हुक्म दिया है कि औरों की तरह तू मकान बहुत पक्का न बनवा क्यौंकि दुनिया खुद नापायदार है मगर मेरे खून के बोतलों के टुकड़े जो कि (ख़ुदा कहता है) मेरी हड्डियां हैं बहुत दिनों तक न गलैंगी और मेरे सच्चे राज की निशानी क़ायम रहेगो।

देखो मेरा नाम चूसा है क्यौंकि मैं सब का पापरूपी पैसा चूस लेता हूं क्यौं कि खुदा ने फरमाया है कि मेरे बन्दे पैसा के बहकाने से गुनाह करते हैं अगर उनके पास पैसा न रहै तो ख़ुद गुनाह न करें इस्से तू सब से पहिले इनका पैसा चूस ले।

मेरा दूसरा नाम डबल है क्यौंकि डबल हिन्दी में पैसे को कहते हैं और अंगरेज़ी में दूने को और पच्छिम में उस बरतन को जिस्से घी वा अनाज निकाला जाता है और मेरा तीसरा नाम सुफैद है क्यौंकि मैं रौशनी बख्शने वाला हूं और दिल मेरा साफ चिट्टा चमकीली चीनी की जात है और चमड़ा मेरा गोरा है और भी मैं सफेद करूंगा लोगों को अपने दीन की चांदनी से इनलाइटेन्ड करके।

मेरे पहाड़ का नाम कोहेचूर है क्योंकि मैं सब के पापी दिलों को और पापों को तथा प्रेजुडिसों को लोगों के बल और धन को चूर करूंगा, और मेरी पहली आरामगाह कुर्सी है क्योंकि अब वहां की आब हवा साफ होकर बेवकूफी की शिकायत रफ़ा हो गई और दूसरी कुरसी है जहां जलती आग पर मेरे से पैगम्बर के सिवा दूसरा नहीं बैठ सकता और तीसरी दगली है उस में चारों ओर दगल भरा है और बीच में मेरा सिंहासन है।

जहां पर खुदा ने हलाल किया है शराब, बीफ, मटन, बग्गी, दग़ल, फसल नैशानलिटी, लालटैन, कोट, बूट, छड़ी, जेबी घड़ी, रेल धुआंकस, विधवा, कुमारी परकीया, चाबुक, चुरुट, सड़ी मछली, सड़ी पनीर, सड़े अचार, मुंह की बू, अधो भाग के केश, बिना पानी के मल धोना, रुमाल; मौसी, मामी, बुआ, चाची मै अपनी बेटी पोतियों के; कज़िन, फ्रेंड लेपालट की बहू, खान सामा खान सामिन, हुक्का, थुक्का, लुक्का, बुक्का और आज़ादी को और हराम किया बुतपरस्ती, बेईमानी, सच बोलना, इन्साफ करना; धोती पहरना, तिलक लगाना, कंठी पहरना, नहाना, दतुअन करना, स्वच्छंद होना, उदार होना, निर्भय होना, कथा, पुराण, जाति भेद, बाल्यविवाह, भाई वा मा वा पिता के साथ रहना, मूर्त्तिपूजन तथा आर्थोडाक्स की सुहबत, सच्ची प्रीति, परस्पर उपकार, आपस का मेल बुरी बातैं घातैं फातैं छातैं और प्रेजुडिस को ॥

लोगो! दौड़ो ईमान लाओ मुझ पर, देखो पीछे पछताओगे और हाथ मलते रह जाओगे मैं ईश्वर का प्यारा दूसरा और पांचवां पैगम्बर केवल तुम्हारे उद्धार के वास्ते पृथ्वी पर आया हूं ईनाम लाओ मुझ पर हुकम मानो मेरा, मेरा दाहिना हाथ जो तुम लोगों के सामने उठा है खुदा का हाथ है इस को सिजदा करो, झुको, अदब करो, ईमान लाओ और इस शराब को खून समझ कर पिओ पिओ पिओ ॥

———

स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन

(मित्र विलास कविवचनसुधा अंक ८ सन् १८७५ ता० १ जून)

स्वामी दयानन्द सरस्वती और बाबू केशव चन्द्र सेन के स्वर्ग में जाने से वहां एक बेर बड़ा आन्दोलन हो गया। स्वर्गवासी लोगों में बहुतेरे तो इन से घृणा करके चीक्कार करने लगे और बहुतेरे इन को अच्छा कहने लगे। स्वर्ग में कंसरवेटिव और लिबरल दो दल हैं। जो पुराने ज़माने के ऋषी मुनी यज्ञ कर करके या तपस्या करके अपने अपने शरीर को सुखा २ कर और कर्म में पच पच कर मरके स्वर्ग गए हैं उन के आत्मा का दल 'कंसरवेटिव' है, और जो अपनी आत्मा ही की उन्नति से, वा अन्य किसी सार्वजनीन भाव उच्च भाव सम्पादन करने से या परमेश्वर की भक्ति से स्वर्ग में गए हैं वे लिबरल दल भक्त हैं। वैष्णव दोनों दल के क्या दोनों से खारिज़ थे, क्योंकि इन के स्थापकगण तो लिबरल दल के थे किन्तु अब ये लोग 'रेडिकल्स' क्या महा महा रेडिकल्स हो गए हैं। बिचारे बूढ़े व्यासदेव को दोनों दल के लोग पकड़ २ कर ले जाते अपनी २ सभा का 'चेयरमैन' बनाते थे और बिचारे व्यास जी भी अपने प्राचीन, अव्यवस्थित स्वभाव और शील के कारण जिस की सभा में जाते थे वैसी ही वक्तृता कर देते थे। कंसरवेटियों का दल प्रबल था; इस का मुख्य कारण यह था कि स्वर्ग के ज़मींदार इन्द्र गणेश प्रभृति भी उन के साथ योग देते थे क्योंकि बंगाल के जमींदारों की भांति उदार लोगों की बढ़ती से उन बेचारों को विविध सर्वोपरि बलि और भाग न मिलने का डर था।

कई स्थानों पर प्रकाश सभा हुई। दोनों दल के लोगों ने बड़े आतङ्क से वक्तृता दी। कंसरवेटिव लोगों का पक्ष समर्थन करने को देवता लोग भी आ बैठे और अपने २ लोकों में भी उस सभा की शाखा स्थापन करने लगे। इधर लिबरल लोगों की सूचना प्रचलित होने पर मुसलमानी-स्वर्ग और जैन स्वर्ग तथा क्रिस्तानी स्वर्ग से पैगम्बर, सिद्ध, मसीह प्रभृति, हिन्दू स्वर्ग में उपस्थित हुए और 'लिबरल' सभा में योग देनें लगे। वैकुंठ में चारों ओर इसी की धूम फैल गई' 'कंसरवेटिव' लोग कहते "छिः ! दयानन्द कभी स्वर्ग में आने के योग्य नहीं; इस ने १ पुराणों का खंडन किया २ मूर्ति पूजा की निंदा किया, ३ वेदों का अर्थ उलटा पुलटा कर डाला, ४ दश नियोग करने की विधि निकाली, ५ देवताओं का अस्तित्व मिटाना चाहा, और अन्त में सन्यासी होकर अपने को जलवा दिया। नारायण! नारायण! ऐसे मनुष्य की आत्मा को कभी स्वर्ग में स्थान मिल सकता है, जिसने ऐसा धर्म विप्लव कर दिया और आर्यावर्त को धर्म बहिर्मुख किया ?"

एक सभा में काशी के विश्वनाथ जी ने उदयपुर के एकलिंग जी से पूछा "भाई ! तुम्हारी क्या मत मारी गई जो तुम ने ऐसे पतित को अपने मुंह लगाया और अब उस के दल के सभापति बने हो, ऐसा ही करना है तो जाओ लिबरल लोगों से योग दो।" एकलिंग जी ने कहा "भाई, हमारा मतलब तुम लोग नहीं समझे। हम उसकी बुरी बातों को न मानते न उसका प्रचार करते, केवल अपने यहां के जंगल की सफाई का कुछ दिन उस को ठेका दिया, बीच में वह मर गया अब उस का माल मता ठिकाने रखवा दिया तो क्या बुरा किया।"

कोई कहता "केशव चन्द्र सेन ! छि छि ! इसने सारे भारतवर्ष का सत्यानाश कर डाला। १ वेद पुराण सब को मिटाया, २ क्रिस्तान मुसलमान सब को हिन्दू बनाया, ३ खाने पीने का विचार कुछ न रक्खा, ४ मद्य की तो नदी बहा दी। हाय हाय ! ऐसी आत्मा क्या कभी बैकुण्ठ में आ सकती है।"

ऐसे ही दोनों के जीवन की समालोचना चारों ओर होने लगी। लिबरल लोगों की सभा भी बड़े धूम धाम से जमती थीं। किन्तु इस सभा में दो दल हो गए थे। एक जो केशव की विशेष स्तुति करते, दूसरे वे जो दयानंद को विशेष आदर देते थे। कोई कहता, अहा धन्य दयानंद, जिसने आर्यावर्त के निंदित आलसी मूर्खों की मोह निद्रा भंग कर दी। हज़ारों मूर्खों को ब्राह्मणों के (जो कंसरवेटिवों के पादरी और व्यर्थ प्रजा का द्रव्य खाने वाले हैं) फन्दे से छुड़ाया। बहुतों को उद्योगी और उत्साही कर दिया। वेद में रेल, तार, कमेटी, कचहरी, दिखाकर आर्यों की कटती हुई नाक बचा ली। कोई कहता धन्य केशव ! तुम साक्षात दूसरे केशव हो। तुम ने बंग देश की मनुष्य नदी के उस वेग को जो क्रिश्चन समुद्र में मिल जाने को उच्छलित हो रहा था रोक दिया। ज्ञान कर्म का निरादर करके परमेश्वर का निर्मल भक्तिमार्ग तुम ने प्रचलित किया।

कंसरवेटिव् पार्टी में देवताओं के अतिरिक्त बहुत लोग थे जिन में, याज्ञवल्क्य प्रभृति कुछ तो पुराने ऋषि थे और कुछ नारायण भट्ट, रघुनन्दन भट्टाचार्य, मण्डन मिश्र प्रभृति, स्मृति ग्रन्थकार थे। सुना है कि विदेशी स्वर्ग के कुछ 'शीआ' लोगों ने भी इन के साथ योग दिया है।

लिबरल दल में चैतन्य प्रभृति आचार्य, दादू नानक कबीर प्रभृति भक्त और ज्ञानी लोग थे। अद्वैतवादी भाष्यकार आचार्य पंचदशीकार प्रभृति पहले दल भुक्त नहीं होने पाए। मिस्टर जैडला की भांति इन लोगों पर कंसरवेटिवों ने बड़ा आक्षेप किया किन्तु अन्त में लिबरलों की उदारता से उन के समाज में इन को स्थान मिला था।

दोनों दलों के मेमोरियल तयारकर स्वाक्षरित होकर परमेश्वर के पास भेजे गए। एक में इस बात पर युक्ति और आग्रह प्रकट किया था कि केशव और

दयानन्द कभी स्वर्ग में स्थान न पावैं और दूसरे में इसका वर्णन था कि स्वर्ग में इनको सर्वोत्तम स्थान दिया जाय।

ईश्वर ने दोनों दलों के डेप्यूटेशन को बुला कर कहा "बाबा अब तो तुम लोगों की 'सैलफ गवर्नमेंट' है। अब कौन हम को पूछता है, जो जिस के जी में आता है करता है। अब चाहे वेद क्या संस्कृत का अक्षर भी स्वप्न में भी न देखा हो पर लोग धर्म विषय पर वाद करने लगते हैं। हम तो केवल अदालत या व्यवहार या स्त्रियों के शपथ खाने को ही मिलाए जाते हैं। किसी को हमारा डर है ? कोई भी हमारा सच्चा 'लायक' है ? भूत प्रेत ताज़िया के इतना भी तो हमारा दर्जा नहीं बचा। हम को क्या काम चाहे वैकुंठ में कोई आवे। हम जानते हैं चारों लड़कों (सनक आदि) ने पहले ही से चाल बिगाड़ दी है। क्या हम अपने बिचारे जय विजय को फिर राक्षस बनवावें कि किसी का रोक टोक करें। चाहे सगुन मानो चाहे निर्गुन, चाहे द्वैत मानो चाहे अद्वैत; हम अब न बोलेंगे। तुम जानो स्वर्ग जाने।

डेप्यूटेशन वाले परमेश्वर की कुछ ऐसी खिजलाई हुई बात सुनकर कुछ डर गए। बड़ा निवेदन सिवेदन किया। कोई प्रकार से परमेश्वर का रोष शांत हुआ। अन्त में परमेश्वर ने इस विषय के विचार के हेतु एक 'सिलेक्ट कमेटी' स्थापन की। इस में राजाराममोहनराय, व्यासदेव, टोडरमल्ल, कबीर प्रभृति भिन्न भिन्न मत के लोग चुने गए। मुसलमानी-स्वर्ग से एक 'इमाम', क्रिस्तानी से 'लूथर', जैनी से 'पारसनाथ', बौद्धों से नागार्जुन, और आफरीका से सिटोवायो के बाप को इस कमेटी का 'एक्स आफीशियो' मेम्बर किया। रोम के पुराने 'हरकलिस' प्रभृति देवता जो अब गृह सन्यास लेकर स्वर्ग ही में रहते हैं और पृथ्वी से अपना सम्बन्ध मात्र छोड़ बैठे हैं, तथा पारसियों के 'ज़रदुश्त जी' को 'कारेस्पाडिङ्ग आनरेरी मेम्बर' नियत किया और आज्ञा दिया कि तुम लोग इस के (१) कागज़ पत्र देख कर हम को रिपोर्ट करो। उन को ऐसी भी गुप्त आज्ञा थी कि एडिटरों की आत्मागण को तुम्हारी किसी 'कारवाई' का समाचार तक न मिलै जब तक कि रिपोर्ट हम न पढ़ लें नहीं वे व्यर्थ चाहे कोई सुनै चाहे न सुनै अपनी टांय टांय मचा ही देंगे।

सिलेक्ट कमेटी का कई अधिवेशन हुआ। सब कागज़ पत्र देखे गए। दयानन्दी और केशवी ग्रंथ तथा उन के प्रत्युत्तर और बहुत से समाचार पत्रों का मुलाहिज़ा हुआ। बाल शास्त्री प्रभृति कई कंसरवेटिव और द्वारकानाथ प्रभृति लिबरल नव्य आत्मागणों की इस में साक्षी ली गई अन्त में कमेटी या कमीशन ने जो रिपोर्ट किया उस की मर्म बात यह थी कि:—

"हम लोगों की इच्छा न रहने पर भी प्रभु की आज्ञानुसार हम लोगों ने इस मुकद्मे के सब कागज़ पत्र देखे। हम लोगों ने इन दोनों मनुष्यों के विषय में जहां तक समझा और सोचा है निवेदन करते हैं। हम लोगों की सम्मति में इन दोनों पुरुषों ने प्रभु की मंगलमयी सृष्टि का कुछ विघ्न नहीं किया वरंच उसमें सुख और संतति अधिक हो इसी में परिश्रम किया। जिस चण्डाल रूपी आग्रह और कुरीति के कारण मनमाना पुरुष धर्मपूर्वक न पाकर लाखों स्त्री कुमार्ग गामिनी हो जाती हैं, लाखों विवाह होने पर भी जन्म भर सुख नहीं भोगने पातीं, लाखों गर्भ नाश होते और लाखों ही बाल हत्या होती है, उस पापमयी परम नृशंस रीति को इन लोगों ने उठा देने में अपने शक्य भर परिश्रम किया। जन्म पत्री की विधि के अनुग्रह से जब तक स्त्री पुरुष जीएँ एक तीर घाट एक मीर घाट रहैं, बीच में इस वैमनस्य और असंतोष के कारण स्त्री व्यभिचारिणी और पुरुष विषयी हो जायं, परस्पर नित्य कलह हो, शान्ति स्वप्न में भी न मिलै, वंश न चलै, यह उपद्रव इन लोगों से नहीं सहे गए। विधवा गर्भ गिरावैं, पण्डित जी या बाबू साहब यह सह लेंगे, परञ्च चुपचाप उपाय भी करा देंगे, पाप को नित्य छिपावैंगे, अन्ततोगत्वा निकल ही जाय तो संतोष करेंगे, पर बिधवा का विधिपूर्वक विवाह न हो, फूटी सहैंगे आंजी न सहैंगे, इस दोष को इन दोनों ने निःसन्देह दूर करना चाहा। सवर्ण पात्र न मिलने से कन्या को वर मूर्ख अंधा वरञ्च नपुसंक मिले, तथा वर को काली कर्कश कन्या मिले जिस के आगे बहुत बुरे परिमाण हों, इस दुराग्रह को इन दोनों ने दूर किया चाहे पढ़े हों चाहे मूर्ख, सुपात्र हो कि कुपात्र, चाहे प्रत्यक्ष व्यभिचार करें या कोई भी बुरा कर्म करें, पर गुरु जी हैं......इनका दोष मंत कहो, कहोगे तो पतित होगे, इन को दो इन को राजी रक्खो; इस सत्यानाश संस्कार को इन्होंने दूर किया, आर्य जाति दिन दिन हो, लोग स्त्री के कारण, धन के वा नौकरी व्यापार आदि के लोभ से, मद्यपान के चसके से, वाद में हार कर, राजकीय विद्या का अभ्यास करके मुसलमान या क्रिस्तान हो जांय, आमदनी एक मनुष्य की भी बाहर से न हो केवल नित्य व्यय हो, अन्त में आर्यों का धर्म और जाति कथाशेष रह जाय किन्तु जो बिगड़ा सो बिगड़ा फिर जाति में कैसे आवेगा, कोई भी दुष्कर्म किया तो छिप के क्यों नहीं किया, इसी अपराध पर हज़ारों मनुष्य हर साल छूटते थे। उस को इन्हों ने रोका, सब से बढ़कर इन्होंने यह कार्य किया सारा आर्यावर्त जो प्रभु से विमुख हो रहा था, देवता बिचारे तो दूर रहे भूत प्रेत पिसाच मुरदे, सांप के काटे, बाघ के मारे, आत्महत्या करके मरे, जल, दब या डूब कर मरे लोग, यही नहीं मुसल्मानी पीर पैग़म्बर औलिया शहीद वीर ताजिया; गाज़ीमियां, जिन्हों ने बड़ी बड़ी मूर्त्ति तोड़ कर और तीर्थ पाट कर आर्य धर्म विध्वंस किया,

उनको मानने और पूजने लग गए थे, विश्वास तो मानो........का अंग हो रहा था देखते सुनते लज्जा आती थी कि हाय ये कैसे आर्य हैं किससे उत्पन्न हैं इस दुराचार की ओर से लोगों का अपनी वक्तृताओं के थपेड़े के बल से मुंह फेर कर सारे आर्यावर्त को शुद्ध 'लायल' कर दिया।

भीतरी चरित्र में इन दोनों के जो अन्तर हैं यह भी निवेदन कर देना उचित है दयानन्द की दृष्टि हम लोगों की बुद्धि में अपनी प्रसिद्धि पर विशेष रही। रंग रूप भी इन्होंने कई बदले। पहले केवल भागवत का खंडन किया फिर सब पुराणों का। फिर कई ग्रन्थ माने कई छोड़े, अपने काम के प्रकरण माने अपने विरुद्ध को क्षेपक कहा। पहले दिगम्बर मिट्टी पोते महा त्यागी थे फिर संग्रह करते करते सभी वस्त्र धारण किए। भाष्य में रेल तार आदि कई अर्थ जबरदस्ती किए इसी से संस्कृत विद्या को भली भांति न जानने वाले ही प्रायः इन के अनुयायी हुए। जाल को छुरी से न काट कर......(दूसरे बल ही से) जिसका काटना चाहा, इसी से दोनों आपस में उलझ गए और...(उसका) परिणाम गृह विच्छेद उत्पन्न हुआ।

केशव ने इन के विरुद्ध जाल काट कर परिष्कृत पथ प्रकट किया। परमेश्वर से मिलने का...आड़ या बहाना नहीं रक्खा। अपनी भक्ति की उच्छलित लहरों...(से भक्तों) का चित्त आर्द्र कर दिया। यद्यपि ब्राह्म लोगों में सुरा मांसादि का प्रचार विशेष है किन्तु इस में केशव का कोई दोष नहीं केशव अपने विश्वास पर अटल खड़ा रहा, यद्यपि कूच विहार के सम्बन्ध करने से और यह कहने से कि ईसामसीह आदि उस से मिलते हैं, अन्तावस्था से कुछ पूर्व उन के चित्त की दुर्बलता प्रकट हुई थी किन्तु वह एक प्रकार का उन्माद होगा वा जैसे बहुतेरे धर्मप्रचारकों ने बहुत बड़ी बातें ईश्वर की आज्ञा बतला दीं वैसे ही यदि इन बेचारे ने एक दो बात कही तो क्या पाप किया। पूर्वोक्त कारणों ही से केशव का मरने पर जैसे सारे संसार में आदर हुआ वैसा दयानन्द का नहीं हुआ इस के अतिरिक्त इन लोगों के हृदय के भीतर छिपा कोई पुन्य-पाप रहा हो तो उस को हम लोग नहीं जानते उस का जानने वाला केवल तू ही है।"

इस रिपोर्ट पर मेम्बरों ने कुछ क्रुद्ध हो कर हस्ताक्षर नहीं किया।

रिपोर्ट परमेश्वर के पास भेजी गई। इस को देख कर इस पर क्या आज्ञा हुई और वे लोग कहां भेजे गए यह जब हम भी वहां जायगे और फिर लौट कर आ सकेंगे तो पाठक लोगों को बतलावेंगे। या आप लोग कुछ दिन पीछे आप ही जानोगे॥

लेवी प्राण लेवी।

(Copied from कविवचनसुधा Vol. 2 No. 5.
कार्तिक शुक्ल १५ सं० १९२७)

श्रीयुत लार्ड म्यो साहिब बहादुर गवर्नर जेनरल हिन्द ने काशी में १ नवम्बर को एक "लेवी" का दर्बार किया था। यद्यपि "दर्बार" और "लेवी" में बहुत भेद है पर यह "लेवी" और "दर्बार" दोनों के बीच की अपूर्व्व वस्तु थी। श्रीमन्महाराजाधिराज काशीराज की कोठी में इस "लेवी" के हेतु एक डेरा दल बादल खड़ा किया गया था जो सूर्य्य नारायण और श्रीयुत लार्ड साहिब के तेज और प्रताप परम सुशीतल खसखाने की भांति हो गया था और गरमी भी मारे गरमी के इसी खसखाने में आ छिपी थी, डेरे के बीच में चंदवा के नीचे एक सोने की कुरसी धरी थी। नाम लिखने वाले मुनशी बद्रीनाथ फूले फाले अबा पहिने पगड़ी सजे पुराने दादुर की भांति इधर-उधर उछलते और शब्द करते फिरते थे और बाबू भी वैसे ही छोटे तेंदुए बने गरज रहे थे। पहिले लोगों ने यह प्रगट किया कि जूता पहिन कर जाने की आज्ञा नहीं है। फिर कोलाहल हुआ कि नहीं चाहो जैसे आओ तिस पर भी शाहजादों के अतिरिक्त केवल चार रईस जूता पहिरे हुए थे। इतने में बंगाली बाबू सब का नम्बर लगाने लगे और पण्डितों की दक्षिणा बटने वाली सभा की भांति एक-एक का नाम लेकर पुकार के बल्लमटेर की पल्टन की चाल से सब को खड़ा कर दिया बनारस के रईस भी कठपुतली बने हुए उसी गत नाचते रहे। जब खड़े खड़े बड़ी देर हुई और पैर टूटने लगे और इस तपस्या पर भी श्रीयुत लार्ड साहिब के दर्शन न हुए तब राय नारायण दास आनरेरी मैजिस्टेट हौलदार की भांति बोल उठे "सिट डौन" (बैठ जाओ) सब लोग खड़े खड़े थक तो गये ही थे मुंह के बल बैठ गये परन्तु राय साहब को यह "कवायद" कराना तभी अच्छा लगता जब उन के हाथ में एक लकड़ी भी होती। लार्ड साहिब की "लेवी" समझ कर कपड़े भी सब लोग अच्छे अच्छे पहिन कर आए थे पर वे सब उस गरमी में बड़े दुखदाई हो गये जामे वाले गरमी के मारे जामे के बाहर हुए थे पगड़ी वालों को पगड़ी सिर का बोझ सी हो रही थी औ दुशाले और कमखाब की चपकन वालों को गरमी ने अच्छी भांति जीत रक्खा था सब के अंगों से पसीने की नदी बहती थी मानों श्रीयुत को सब लोग आदर से "अर्घ्य पाद्य" देते थे। कोई खड़ा हो जाता था कोई बैठा ही रह जाता था कोई घबड़ा कर डेरे के बाहर घूमने

चला जाता था कि इतने मैं कोलाहल हुआ "लाट साहेब आते हैं" रामनरायन-दास साहिब ने फिर अपने मुख को खोला और पुकारे "स्टैंड अप" (खड़े हो जाव) सब के सब एक साथ खड़े हो गए राय साहिब का "सिट डौन" कहना तो सब को अच्छा लगा पर "स्टैंड अप"कहना तो सब को बुरा लगा मानों भले बुरे का फल देने वाले राय साहिब ही थे । इतने मैं फिर कुछ आने मैं देर हुई और फिर सब लोग बैठ गए । वाह वाह दर्बार क्या था "कठपुतली का तमाशा" था या बल्लमटेरों की "कबायद' थी या बन्दरों का नाच था या किसी पाप का फल भुगतना था या "फौजदारी की सज़ा थी" । बैठते देर न हुई थी कि श्रीयुत लार्ड साहिब आये फिर सब के सब उठ खड़े हुए श्रीमान के संग श्री काशीराज और उन के चिरञ्जीव राजकुमार और बहुत से साहिब लोग थे । श्रीयुत् लार्ड साहिब बीच मैं खड़े हो गये उन की दाहिनी ओर श्री काशिराज और उन के राजकुमार शोभित हुए । पहिले तैमूर के वंश वालों की मुलाकात हुई फिर श्री महाराज विजयानगरम् और उन के कुँअर की इसी भांति सब लोगों का नाम बोलते गए और सलाम होती गई श्री महाराज विजयानगर भी बांई ओर खड़े हो गए थे जब सब लोगों की हाजिरी हो चुकी श्रीयुत लार्ड साहिब कोठी पधारे और सब लोग इस बंदीगृह से छूट छूट कर अपने अपने घर आए । रईसों के नम्बर की यह दशा थी कि आगे के पीछे पीछे के आगे अंधेरनगरी हो रही थी बनारस वालों को न इस बात का ध्यान कभी रहा है और न रहेगा ये बिचारे तो मोम की नाक हैं चाहो जिधर फेर दो, हाय—पश्चिममोत्तर देश वासी कब कायरपन छोड़ैंगे और कब इन की उन्नति होगी और कब इन को परमेश्वर वह सभ्यता देगा जो हिन्दुस्तान के और खण्ड के वासियों ने पाई है ।।

जाति ..... सभा।

(प्रहसन पंचक—खड्ग विलास प्रेस 1889 हरिश्चन्द्राब्द ५ प्रथम वार)

(कविवचनसुधा नंबर १६ जिल्द ८ सन 1867 तारीख 11 दिसम्बर)

"विपिन राम शास्त्री सभा के सब पडितों से बोले;

"हे सभा के विराजमान पंडितो आज हम ने आप सब को इस लिये बुलाया है कि आप सब महात्मा हमारी विनती को सुनो और उस पर ध्यान दो। वह हमारी विनती यह है कि यह हमारे पुस्तैनी यजमान गडेरिये लोग जो परम सुशील और सत्कर्म लवलीन हैं इन्हें किसी वर्ण में दाखिल करैं अरे भाइयो यह बड़े सोच की बात है कि हमारे जीते जी यह हमारे जन्म के यजमान जो सब प्रकार से हम को मानते दानते हैं नीच के नीच बने रहें तो हमारी जिन्दगी को धिक्कार है। कोई वर्ष ऐसा नहीं होता कि इन बिचारों से दस बीस भेड़ा बकरा और कमरी आसनादि वस्तु और सीधा पैसा न मिलता होय। बिचारे बड़े भक्तिमान और ब्रह्मण्य होते हैं। इस लिये हमने इन के मूल पुरुष का निर्णय और वर्ण व्यवस्था लिखी है। हम को आशा है कि आप सब हमारी सम्मति से मेल करेंगे, क्यौंकि आज की हमारी कल की तुम्हारी! अभी चार दिन ही की बात है कि निवासीराम कायस्थ की गढ़ंत पर कैसा लम्बा-चौड़ा दस्तखत हमने कर दिया है, और हम क्या—आप सब ने ही कर दिया है। रह गई पांडित्य सो उसे आज कल्ह कौन पूछता है गिनती में नाम अधिक होने चाहिए।

"मैं ने कलि पुराण का आकाश खंड और निघण्ड पुराण का पाताल खण्ड देखा तो मुझे अत्यन्त खेद भया कि यह हमारे यजमान खासे अच्छे खत्री अब कालवशात् शूद्र कहलाते हैं अब देखिये इन के नामार्थ ही से क्षत्रियत्व पाया जाता है। गढ़ारि अर्थात् गढ़ जो किला है उस के अरि तोड़ने वाले यह काम सिवाय क्षत्री के दूसरे का नहीं है। यदि इसे गूढ़ारि का अपभ्रंश समझें तो यह शब्द भी क्षत्रियत्व का सूचक है गूढ़ मत्स्य का सूचक है तिन का अरि अर्थ लें तो यह भी ठीक है क्यौंकि जल स्थल सब का आखेट करना क्षत्रियों का काम है। सब अर्थ अनुमान मात्र है मुख्य इन का नाम गाडार्य अर्थात् गरुड़ के वंशी वा गरुड़ के भाई जो अरुण हैं उन के वंश में उत्पन्न। इसी से जो पंडित इन का नाम गरलारि अनुमान करते हैं सो भी ठीक है क्यौंकि गरलारि जो मरकत अथवा गरुड़ मणि है सो गरुड़ जी की कृपा से पूर्व काल में इन के यहां बहुत थे और इन को सर्प नहीं काटता था और ये सर्प विष निवारण में बड़े कुशल थे इसी से ये गरुड़ार्य्य कहलाते थे अब गड़रिया कहलाने लगे हैं।

इन की पूर्वकालिक प्रशस्तता और कुलीनता का वृत्तांत तो आकाश खण्ड ही कहे देता है कि इन का मूल पुरुष उत्तम क्षत्री वर्ण था। यद्यपि इस अवस्था में सब प्रकार से हीन दीन हो गए हैं तथापि बहुत से क्षत्रियत्व के चिन्ह इन में पाए जाते हैं। पहिले जब इन के पुरखे लोग समर भूमि में जुड़ते थे और लड़ने के लिये व्यूह-रचना करते थे तो अपने योद्धाओं के चेतने और सावधान करने के लिये संस्कृत में यह बोली बोलते थे। मत्तोहि २ दृढ़ं २। अर्थात् मतवाले हो गए हो संभलो चौकस रहो सो इस वाक्य के अपभ्रंश का लेश अब भी इन लोगों में पाया जाता है। देखो जब यह भेड़ी और बकरियों को डाटने लगते हैं तो "द्रहि २ मतवाही २" कहने लगते हैं तो इन के क्षत्री होने में भला कौन सन्देह कर सकता है। क्षत्री का परम धर्म वीरता, शूरता, निर्भयता और प्रजा पालन है सो इन में सहज ही प्राप्त है। सावन भादों की अंधेरी रात में जंगलों के बीच सिंह के समान गरजते हैं और अपनी प्रजा भेड़ी बकरी को बड़े भारी शत्रु वृक से बचाते हैं। शिकारी ऐसे होते हैं। कि शश प्रभृति बन जंतुओं को दण्डों से पीट लेते हैं। बड़े २ बेगवान आखेटकारी श्वान इन की सेवा करते और इन की छाग मेषमयी सेना की रक्षा में उद्यत रहते हैं। और दुख सुख की सहन शीलता इन्हीं के बांटे पड़ी है। जेठ की धूप सावन भादों की वर्षा और पूस माघ की तुषार के दुःख को सह कर न खेदित होना इन्हीं का काम है। जैसे इन के पुरखे लोग पूर्व काल में वाणों से विद्ध होने पर भी रण में पीछे को पांव नहीं देते थे ऐसे ही जब इन के पांव में भदई कुश का डाभा तीव्र चुभ जाता है तो ये उस असह्य व्यथा को सह कर आगे ही को बढ़ते हैं और धरती को सुधारने में तो इन की प्रत्यक्ष महिमा है कि जिस खेत में दो तीन रात ये गरुड़ वंशी नृपति छागमयी सेना को लेकर निवास करते हैं उस खेत के किसान को ऋद्धि सिद्धि से पूर्ण कर देते हैं फिर वह भूमि सबल और विकार रहित हो जाती है और मोटे नाजों की कौन कहे उस में गोधूम और इक्षुदण्ड अपरिमित उत्पन्न होता है तो इन से बढ़ कर भूमिपाल और प्रजारक्षक कौन होगा। और यज्ञ करना क्षत्रियों का मुख्य धर्म्म है सो इन में भली भांति पाया जाता है। शरत्कालीन और चैत्र मासिक नवरात्र में अच्छे हृष्ट तुष्ट छाग मेषों के बलिप्रदान से भद्रकाली और योगिनीगण को तृप्त करते हैं। और जब इन के यहां लोम कर्तनोत्सव होता है तो उस समय सब भाई बिरादरी इकट्ठे होकर खान पान के साथ परम आनन्द मनाते हैं। व्यवहार कुशल ऐसे होते हैं कि इन की सेना की कोई वस्तु व्यर्थ नहीं जाती। यहां तक कि मल मूत्र मांस चाम लोम उचित मूल्य से सब बिकता है और वैरी हंता ऐसे हैं कि सब से बड़े भारी शत्रु को पहिले ही इन्हों ने मार डाला है जैसे कहावत प्रसिद्ध है कि गड़रिया अपनी रिस को

मन ही में मार डालता है यदि ऐसा न करते तो इन की प्रजा की ऐसी वृद्धि काहे को होती। ये ऐसे नीतिज्ञ होते हैं कि मेष छाग को शक्ति के अनुसार हलकी लकड़ी से उन की ताड़ना करते हैं। वृक्ष और नदी से बढ़कर परोपकारी साधू कोई नहीं होता सो वहीं इन का रात दिन निवास रहता है इसलिए ये गरुड़ार्य सदैव सज्जनों की संगति में रहते हैं। मनोरञ्जन तन्त्र में लिखा है कि पूर्वकाल में यज्ञार्थ संचित पशुओं को राक्षस लोग उठा ले जाते थे तब उन की रक्षा का संभार ऋषियों ने इन गरुड़ वंशी क्षत्रियों को सौंपा तो इन्हों ने राक्षसों को जीत कर यज्ञ पशुओं की रक्षा की तभी से छाग मेष की रक्षा इन के कुल में चली आती है।

मैं अति प्रसन्न हुआ कि आप सब ने सम्मति से एकता करके मेरी बात रख ली और तंत्र के इन प्रामाणिक वचनों को सच्चा किया।

मेषचारणसंसक्ताः छागपालनतत्पराः।
बभूवुः क्षत्रिया देवि स्वाचारप्रतिवर्जनात्॥
कलौ पंचसहस्राब्दे किंचिदूने गते सति।
क्षत्रियत्वं गमिष्यन्ति ब्राह्मणानां व्यवस्थया॥

(तदनंतर गरुड़वंशियों के सम्मुख होकर)

हे गरुड़वंशियो आज इस सभा के ब्राह्मणों ने तुम्हारे पुनः अपने क्षत्रिय पद के ग्रहण और धारण करने की अभिलाषा को पूर्ण किया। अब सब दक्षिणा लाओ हम सब पंडित जन आपस में बांट ले और तुम्हारे क्षत्री बनने के कागद पर दस्तखत कर दें॥"

(कलऊ गड़ेरिया दक्षिणा देता है पंडित लोग लेते हैं)

कलऊ—सब महरजनन से मोरी इहै बिनती हौ कि जवन किछु किहा करावा हौ तवन पक्का पोढ़ा कर दिहः। हां महरज्जा जेहमा कोऊ दोषै न।

विपिन राम—दोषै का सारे?

कलऊ—अरे इहै कि धरमसास्तरवा में होइ तौने एइमां लिखिहः।

विपिन राम—अरे सरवा धरमसास्तर फास्तर का नांव मत लेइ ताइ तोप के काम चलाउ सास्तर का परमान ढूढ़े सरऊ, तौ तोहार कतहूं पता न लागी। और फिर धरम सास्तर को पूछत को है।

कलऊ—अरे महरज्जा पोथी पुरान कै अस्लोक फस्लोक लिख दीहा इहै और का महरज्जा तोहार परजा हौं।

विपिन राम—अरे सरवा परजा का नाम मत लेइ अस कहु कि हम छत्री हइ।

कलऊ—अच्छा महरज्जा हम क्षत्री हइ तोहरे सब के पायन परत हइ।

विपिन राम—अच्छा चिरंजू २ सुखी रहा। अच्छा कलऊ तुम दोऊ प्रानी एक विरहा गाइ के सुनाइ दो तो हम सब बिदा होंहि।

कलऊ—बहुत अच्छा २ महरज्जा २ (अपनी स्त्री से) आउ रे पवरी धीहर।

(दोनों स्त्री पुरुष मिल कर नाचते गाते हैं)

आउ मोरि जानी सकल रस खानी धरि कंध बहियां नाचु मन मानी।
मैं भैलो छतरि तु धन छतरानी, अब सब छुटि गै रे कुल कै रे कानी।
धन २ बाम्हना लै पोथिया पुरानी, जिन दियो छतरि बनाइ जग जानी॥

(सबका प्रस्थान भया)

इति

———

सबै जात गोपाल की।

(हरिश्चन्द्र मैगज़ीन नम्बर ६ जि० १ सन् १८७३ नवंबर)

एक पंडित और एक क्षत्री आते हैं।

क्ष०—महाराज देखिये बड़ा अन्धेर हो गया कि ब्राह्मणों ने व्यवस्था दे दी कि कायस्थ भी क्षत्री हैं, कहिए अब कैसे काम चलैगा।

पं०—क्यों इस में दोष क्या हुआ ? "सबै जात गोपाल की" और फिर यह तो हिंदुओं का शास्त्र पनसारी की दूकान है और अक्षर कल्प वृक्ष हैं इस में तो सब जात की उत्तमता निकल सकती है पर दक्षिणा आप को बाएँ हाथ से रख देनी पड़ैगी फिर क्या है फिर तो सबै जात गोपाल की।

क्ष०—भला महाराज जो चमार कुछ बनना चाहै तो उस (को) भी आप बना दीजियेगा।

पं०—क्या बनना चाहै

क्ष०—कहिए ब्राह्मण।

पं०—हां चमार तो ब्राह्मण हईं हैं इस में क्या सन्देह है ईश्वर के चर्म से इन की उत्पत्ति है इन को यमदंड नहीं होता चर्म का अर्थ ढ़ाल है इस से ये दंड रोक लेते हैं चमार में तीन अक्षर हैं 'च' चारो वेद 'म' महाभारत 'र' रामायन जो इन तीनों को पढ़ावै वह चमार पद्मपुराण में लिखा है इन चर्म्मकारों ने एक बेर बड़ा यज्ञ किया था उसी यज्ञ में से चर्मण्वती निकली है अब कर्म भ्रष्ट होने से अन्त्यज हो गए हैं नहीं तो हैं असिल में ब्राह्मण। देखो रैदास इन में कैसे भक्त हुए हैं लाओ दक्षिणा लाओ सबै०

क्ष०—और डोम।

पं०—डोम तो ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों कुल के हैं विश्वामित्र वशिष्ट वंश के ब्राह्मण डोम हैं और हरिश्चन्द्र और वेणु वंश के क्षत्रिय डोम हैं इस में क्या पूछना है लाओ दक्षिणा सबै०

क्ष०—और कृपानिधान ! मुसलमान।

पं०—मीयां तो चारों वर्णों में हैं बाल्मीकि रामायण में लिखा है जो वर्ण रामायण पढ़ै मीयां हो जाय।

पठन् द्विजो वाग् ऋषभत्वमीयात्।
स्यात् क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात्॥

अल्लहोपनिषत् में इन की बड़ी महिमा लिखी है द्वारिका में दो भांति के ब्राह्मण थे जिन को बलदेव जी (मुशली) मानते थे उन का नाम मुशलिमान्य हुआ और जिन्हें श्रीकृष्ण मानते उन का नाम कृष्णमान हुआ अब इन दोनों शब्दों का अपभ्रंश मुसलमान और कृस्तान हो गया।

क्ष०—तो क्या आप के मत से कृस्तान भी ब्राह्मण हैं?

पं०—हई हैं इस में क्या पूछना—ईशावास उपनिषद में लिखा है कि सब जग ईसाई है।

क्ष०—और जैनी?

पं०—जैनी ब्राह्मण हैं 'अर्हन्नित्यपि जैनशासनरताः' जैन इन का नाम तब से पड़ा जब से राजा अलर्क की सभा में इन्हें कोई जै न कर सका।

क्ष०—और बौद्ध?

पं०—बुद्धिवाले अर्थात् ब्राह्मण।

क्ष०—और धोबी।

पं०—अच्छे खासे ब्राह्मण जयदेव के जमाने तक धोबी ब्राह्मण होते थे। 'धोई कविः क्ष्मापतिः' ये शीतला के रज से हुए हैं इससे इन का नाम रजक पड़ा।

क्ष०—और कलवार?

पं०—क्षत्रिय हैं शुद्ध शब्द कुलवर है भट्टी कवि इसी जाति में था।

क्ष०—और महाराज जी कुहांर।

पं०—ब्राह्मण—घट खर्प्पर कवि था।

क्ष०—हां हां वेश्या।

पं०—क्षत्रियानी–रामजनी, कुछ बनियानी अर्थात् वैश्या।

क्ष०—अहीर।

पं०—वैश्य—नन्दादिकों के बालकों को द्विजाति संस्कार होता था 'कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्व्वकं' भागवत में लिखा है।

क्ष०—भुइंहार

पं०—ब्राह्मण

क्ष०—दूसर

पं०—ब्राह्मण, भृगुवंश के ज्वालाप्रसाद पंडित का शास्त्रार्थ पढ लीजिये!

क्ष०—जाट

पं०—जाठर क्षत्रिय।

क्ष०—और कोल।

पं०—कौल ब्राह्मण।

क्ष०—धिरकार।

पं०—क्षत्रिय शुद्ध शब्द धैर्यकार है।

क्ष०—और कुनबी और भर और पासी

पं०—तीनों ब्राह्मण वंश में हैं भरद्वाज से भर कन्व से कुनबी पराशर से पासी।

क्ष०—भला महाराज नीचों को तो आपने उत्तम बना दिया अब कहिए उत्तमों को भी नीच बना सकते हैं?

पं०—ऊंच नीच क्या सब ब्रह्म है सब ब्रह्म है। आप दक्षिणा दिये चलिए सब कुछ होता चलैगा सबै०।

क्ष०—दक्षिणा मैं दूंगा भला आप इस विषय में भी कुछ परीक्षा दीजिए।

पं०—पूछिए मैं अवश्य कहूंगा।

क्ष०—कहिए अगरवाले और खत्री।

पं०—दोनों बढ़ई हैं जो बढ़ियां अगर चंदन का काम बनाते थे उन की संज्ञा अगरवाले हुई और जो खाट बीनते थे वे खत्री हुए वा खेत अगोरने वाले खत्री कहलाए।

क्ष०—और महाराज नागर गुजराती।

पं०—संपेरे औ तेली नाग पकड़ने से नागर और गुल जलाने से गुजराती

क्ष०—और महराज भुइंहार और भाटिये और रोड़े।

पं०—तीनों शूद्र भूजा से भुइंहार भट्टी रखने वाले भाटिये रोड़ा ढोने वाले रोड़े।

क्ष०—(हाथ जोड़कर) महाराज आप धन्य हो। लक्ष्मी वा सरस्वती जो चाहैं सो करैं चलिए दक्षिणा लीजिए।

पं०—चलो इस सब का फल तो यही था।

(दोनों गए)

जीवन-चरित

१. सूरदास
२. जयदेव
३. मुहम्मद
४. फातिमा
५. लार्ड मेयो
६. राजाराम शास्त्री
७. एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती

[इस शीर्षक के अंतर्गत भारतेंदु-लिखित अनेक जीवन-चरित्रों में से कुछ यहाँ संगृहीत हैं। जीवन-चरित्रों की ओर अभिरुचि या उनकी लोकप्रियता किसी युग की जागरूकता और उन्नतिप्रियता का विशेष चिह्न होता है। भारतेंदु-युग जागरण का सचेष्ट युग था। इस समय के सभी लेखकों ने जीवन-चरित्र लिखे हैं।

इन जीवन-चरित्रों में किसी विशेष खोज और छानबीन की आशा दुराशा मात्र होगी। यद्यपि खोज की चेष्टा बराबर दिखाई पड़ती है (उदाहरणार्थ जयदेव)।

प्रस्तुत संग्रह में उन सब महान् व्यक्तियों का जीवन-परिचय है जिन्होंने धर्म, साहित्य, राजनीति आदि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को अपनी प्रतिभा से आलोकित किया। लेखक उनके जीवन से कहीं पर प्रफुल्ल हुआ है, कहीं मुग्ध हुआ और कहीं पर चमत्कृत हुआ है। लेखक के व्यक्तित्व पर पड़े इन्हीं भावों का प्रतिबिम्ब इन संक्षिप्त जीवनियों में है। भावों के समान इनका परिधान भी अनेक रूपात्मक है। इन छोटे-छोटे निबंधों में शैली की जो अनेकरूपता मिलती है वह भारतेंदु को भाषाधिकार का अच्छा परिचय देती है।

अंतिम निबंध 'एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती' कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। यह भारतेंदु का आत्मचरित है, खेद है कि यह आत्मचरित पूरा न हो सका, नहीं तो हिंदी में चलती भाषा की शैली में आत्मचरित लिखने की परंपरा की नीवँ पड़ जाती। इस निबंध की शैली कितनी वक्रतापूर्ण, प्रांजल, भावानुसारी और अत्यंत चलती हुई है।]

सूरदास जी का जीवनचरित्र।

दो०—हरि पद पंकज मत्त अलि, कविता रस भरपूर।
दिव्य चक्षु कवि कुल कमल, सूर नौमि श्री सूर॥

सब कवियों के वृत्तान्त में सूरदास जी का वृत्तान्त पहिले लिखने के योग्य है, क्योंकि यह सब कवियों के शिरोमणि हैं और कविता इन की सब भांति की मिलती है। कठिन से कठिन और सहज से सहज इन के पद बने हैं और किसी कवि में यह बात नहीं पाई जाती। और कवियों की कविता में एक एक बात अच्छी है और कविता एक ढंग पर बनती है, परन्तु इन की कविता में सब बात अच्छी है और इन की कविता सब तरह की होती है, जैसे किसी ने शाहनशाह अकबर के दरबार में कहा था—

दो०—उत्तम पद कवि गंग को, कविता को बलबीर।
केशव अर्थ गंभीर को, सूर तीन गुन धीर॥

और इस के सिवाय इन की कविता में एक असर ऐसा होता है कि जी में जगह करै। जैसे एक वार्ता है कि किसी समय में एक कवि कहीं जाता था और एक मनुष्य बहुत व्याकुल पड़ा था। उस मनुष्य को अति व्याकुल देख कर उस कवि ने एक दोहा पढ़ा।

दो०—किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद सुन्यौ, जो अस बिकल सरीर॥

इस वार्ता के लिखने का यह अभिप्राय है कि निस्सन्देह इन के पदों में ऐसा एक असर होता कि जो लोग कविता समझते हैं उन के जी पर इस की चोट लगै।

ये जाति के ब्राह्मण थे और इन के पिता का नाम बाबा रामदास जी था, जो गाना बहुत अच्छा जानते थे और कुछ धुरपद इत्यादि भी बनाते थे और देहली या आगरे या मथुरा इन्हीं शहरों में रहा करते थे और उस समय के नामी गुनियों में गिने जाते थे। उन के घर यह सूरदास जी पैदा हुए। यह इस असार संसार के प्रपञ्च को न देखने के वास्ते आंख बन्द किए हुए थे। इन के पिता ने इन को गाना सिखाने में बड़ा परिश्रम किया था और इन की बुद्धि पहले ही से बड़ी विलक्षण और तीव्र थी। सम्वत् १५४० के कुछ न्यूनाधिक में इन का जन्म हुआ था और आगरे में इन्हों ने कुछ फारसी विद्या भी सीखी थी। इन की जवानी ही में इन के पिता का परलोक हुआ और यह अपने मन के हो गए और भजन तभी से बनाने लगे। उस समय में इन के शिष्य भी बहुत से

हो गए थे और तब यह अपना नाम पदों में सूरस्वामी रखते थे। उन्हीं दिनों में इन ने महाराज नल और दमयन्ती के प्रेम की कथा में एक पुस्तक बनाई थी जो अब नहीं मिलती। उस समय इन की पूर्ण युवा अवस्था थी। और उन दिनों में ये आगरे से नौ कोस मथुरा के रास्ते के बीच में एक स्थान जिस का नाम गऊघाट है, वहीं रहते थे और बहुत से इन के शिष्य इन के साथ थे। फिर ये आचार्य्य कुल शिरोरत्न श्री श्री बल्लभाचार्य्य महाप्रभु के शिष्य हुए। तब से यह अपना नाम पदों में सूरदास रखने लगे। ये भजनों में नाम अपना चार तरह से रखते थे—सूर, सूरदास, सूरजदास और सूरश्याम। जब यह सेवक हुए थे तब इन्हों ने यह भजन बनाया था।

भजन—चकई री चलि चरन सरोवर, जहं नहिं प्रेम वियोग।
जहं भ्रम निसा होत नहिं कबहूं सो सागर सुख जोग॥१॥
सनक से हंस मीन शिव मुनि जन नख रवि प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल निमेषन ससि डर गुंजत निगम सुबास॥२॥
जेहि सर सुभग मुक्ति मुक्ताफल सुकृत विमल जल पीजै।
सो सर छाड़ि कुबुद्धि बिहङ्गम इहा कहां रहि कीजै॥२॥
जहां श्री सहस्र सहित नित क्रीड़त सोभित सूरज दास।
अवन सुहाई विषै रस छीलर वा समुद्र की आस॥४॥

फिर तो इन की सामर्थ्य बढ़ती ही गई और इन्हों ने श्री मद्भागवत को भी पदों में बनाया और भी सब तरह के भजन इन्हों ने बनाए। इन के श्री गुरु इन को सागर कह कर पुकारते थे, इसी से इन ने अपने सब पदों को इकट्ठा कर के उस ग्रन्थ का नाम सूरसागर रक्खा। जब यह वृद्ध हो गए थे और श्री गोकुल में रहा करते थे, धीरे धीरे इन के गुण शाहनशाह अकबर के कानों तक पहुंचे। उस समय ये अत्यन्त वृद्ध थे और बादशाह ने इन को बुलवा भेजा और गाने की आज्ञा किया। तब इन ने यह भजन बना कर गाया।

मन रे करि माधो सो प्रीति।

फिर इन से कहा गया कि कुछ शाहनशाह का गुणानुवाद गाइए उस पर इन्हों ने यह पद गाया।

केदारा—नाहिं न रह्यो मन में ठौर।
नन्द नन्दन अछत कैसे आनिये उर और॥१॥
चलत चितवत दिवस जागत सुपन सोवत राति।
हृदय तें वह मदन मूरति छिनु न इत उत जाति॥२॥

कहत कथा अनेक ऊधो लोग लोभ दिखाइ ।
कहौ करों चित प्रेम पूरन घट न सिंधु समाइ ॥३॥
श्यामगात सरोज आनन ललित गति मृदु हास ।
सूर ऐसे दरस कारन मरत लोचन खास ॥४॥

फिर सम्वत् १६२० के लगभग श्री गोकुल में इन्हों ने इस शरीर को त्याग दया। सूरदास जी ने अन्त समय यह पद किया था।

विहाग—खंजन नैन रूप रस माते ।
अतिशय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते ॥
चलि चलि जात निकट श्रवनन के उलटि फिरत ताटंक फंदाते ।
सूरदास अंजन गुन अटके नातरु अब उड़िजाते ॥

दोहा—मन समुद्र भयो सूर को, सीप भए चख लाल ।
हरि मुक्ताहल परतहीं, मूंदि गए तत काल ॥

संसार में जो लोग भाषा काव्य समझते होंगे वह सूरदास जी को अवश्य जानते होंगे और उसी तरह जो लोग थोड़े बहुत भी वैष्णव होंगे वह इन का थोड़ा बहुत जीवनचरित्र भी अवश्य जानते होंगे। चौरासी वार्ता, उस की टीका, भक्त-माल और उस की टीकाओं में इन का जीवन विवृत किया है। इन्हीं ग्रन्थों के अनुसार संसार को और हम को भी विश्वास था कि ये सारस्वत ब्राह्मण हैं, इन के पिता का नाम रामदास, इन के माता पिता दरिद्री थे, ये गऊघाट पर रहते थे, इत्यादि। अब सुनिए, एक पुस्तक सूरदास जी के दृष्टिकूट पर टीका [टीका भी संभव होता है उन्हीं की, क्योंकि टीका में जहां अलङ्कारों के लक्षण दिए हैं वह दोहे और चौपाई भी सूर नाम से अंकित हैं] मिली है। इस पुस्तक में ११६ दृष्टिकूट के पद अलङ्कार और नायिका के क्रम से हैं और उन का स्पष्ट अर्थ और उन के अलङ्कार इत्यादि सब लिखे हैं। इस पुस्तक के अन्त में एक पद में कवि ने अपना जीवनचरित्र दिया है, जो नीचे प्रकाश किया जाता है। अब इस को देख कर सूरदास जी के जीवनचरित्र और वंश को हम दूसरी ही दृष्टि से देखने लगे। वह लिखते हैं कि 'प्रथजगात [१] प्रार्थज गोत्र वंश में इन के मूल पुरुष

१—'प्रथ जगात' इस जाति वा गोत्र के सारस्वत ब्राह्मण सुनने में नहीं आए। पण्डित राधाकृष्ण संगृहीत सारस्वत ब्राह्मणों की जाति माला में 'प्रथ जगात' 'प्रथ' वा 'जगात' नाम के कोई सारस्वत ब्राह्मण नहीं होते। जगा वा जगातिआ तो भाट को कहते हैं।

ब्रह्मराव [२] हुए जो बड़े सिद्ध और देवप्रसाद लब्ध थे। इन के वंश में भौचन्द [३] हुआ। पृथ्वीराज [४] जिस को ज्वाला देश दिया उन के चार पुत्र, जिन में पहिला राजा हुआ। दूसरा गुणचन्द्र। उस का पुत्र सीलचन्द्र उस का वीरचन्द्र। यह वीरचन्द्र रत्नभ्रमर रणथम्भौर प्रसिद्ध हम्मीर [५] के साथ खेलता था। इस के वंश में हरिचन्द [६] हुआ उस के पुत्र को सात पुत्र हुए, जिन में सब से छोटा [कवि लिखता है] मैं सूरजचन्द था। मेरे छः भाई मुसलमानों के युद्ध [७] में मारे गए। मैं अन्धा कुबुद्धि था। एक दिन कुएं में गिर पड़ा तो सात दिन तक उस [अंधे] कुएं में पड़ा रहा, किसी ने न निकाला। सातएं दिन भगवान ने निकाला और अपने स्वरूप का (नेत्र दे कर) दर्शन कराया और मुझ से बोले कि वर मांग। मैं ने बर मांगा कि आप का रूप

२—ब्रह्मराव नाम से भी सन्देह होता है कि यह पुरुष या तो राजा रहा हो या भाट।

३—'भौ' का शब्द हुआ अर्थ में लीजिए तो केवल चन्द्र नाम था। चन्द्र नाम का एक कवि पृथ्वीराज की सभा में था ? आश्चर्य !!!

४—पृथ्वीराज का काल ११७६।

५—हम्मीर चौहान, भीमदेव का पुत्र था। रणथम्भौर के किले में इसी की रानी अलाउद्दीन (दुष्ट) के हाथ से मारे जाने पर सहस्रावधि स्त्री के साथ सती हुई थी। इसी का वीरत्व यश सर्व्वसाधारण में 'हम्मीर हठ' के नाम से प्रसिद्ध है। (तिरिया तेल हम्मीर हठ, चढ़ै न दूजो बार) इसी की स्तुति में अनेक कवियों ने वीर रस के सुन्दर श्लोक बनाए हैं 'मुञ्चति मुञ्चति कोषं भजति च भजति प्रकम्पमरिवर्गं। हमीर बीर खड्गे त्यजति च त्यजति क्षमा माशु'। इस का समय सन् १२९० (एक हमीर सन् ११९२ में भी हुआ है)।

६—संभव है कि हरिचन्द के पुत्र का नाम रामचन्द्र रहा हो जिसे वैष्णवों ने अपनी रीति के अनुसार रामदास कर लिया हो।

७—उस समय तुग़लकों और मुग़लों का युद्ध होता था।

८—शत्रुओं से लौकिक अर्थ लीजिए तो मुग़लों का कुल [इस से सम्भव होता है इन के पूर्व पुरुष सदा से राजाओं का आश्रय कर के मुसल्मानों को शत्रु समझते थे या तुग़लकों के आश्रित थे इस से मुग़लों को शत्रु समझते थे] यदि अलौकिक अर्थ लीजिए तो काम क्रोधादि।

देख कर अन्न और रूप न देखें और मुझ को दृढ़ भक्ति मिलै और शत्रुओं [८] का नाश हो। भगवान ने कहा ऐसा ही होगा। तू सब विद्या में निपुण होगा। प्रबल दक्षिण के ब्राह्मण-कुल [९] से शत्रु का नाश होगा। और मेरा नाम सूरजदास सूर सूरश्याम इत्यादि रख कर भगवान अन्तर्ध्यान हो गए। मैं ब्रज में बसने लगा। फिर गोसाईं [१०] ने मेरी अष्ट [११] छाप में थापना की। इत्यादि। इस लेख से और लेख अशुद्ध मालूम होते हैं, क्योंकि जैसा चौरासी वार्त्ता की टीका में लिखा है कि दिल्ली के पास सीही गांव में इन के दरिद्र माता पिता के घर इन का जन्म हुआ यह बात नहीं आई। यह एक बड़े कुल में उत्पन्न थे और आगरे वा गोपाचल में इन का जन्म हुआ। हां, यह मान लिया जाय कि मुसलमानों के युद्ध में इतने भाइयों के मारे जाने के पीछे भी इन के पिता जीते रहे और एक दरिद्र अवस्था में पहुंच गए थे और उसी समय में सीही गांव में चले गए हों तो लड़ मिल सकती है। जो हो, हमारी भाषा कविता के राजा- धिराज सूरदास जी एक इतने बड़े वंश के हैं यह जान कर हम को बड़ा आनन्द हुआ। इस विषय में कोई और विद्वान जो कुछ और विशेष पता लगा सके तो उत्तम हो।

भजन—प्रथम हो प्रथ जगते में प्रगट अद्भुत रूप।
ब्रह्मराव विचारि ब्रह्मा राखु नाम अनूप॥

९—सेवा जी के सहायक पेशवा का कुल जिस ने पीछे मुसल्मानों का नाश किया। अलौकिक अर्थ लीजिये तो सूरदास जी के गुरु श्रीवल्लभाचार्य्य दक्षिण ब्राह्मण-कुल के थे।

१०—'गोसाईं' श्री बिट्ठलनाथ जी श्रीवल्लभाचार्य्य के पुत्र।

११—अष्ट छाप यथा सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास और कृष्ण-दास ये चार महात्मा आचार्य्य जी के सेवक और छीत स्वामि गोविन्द स्वामि, चतुर्भुज दास और नन्ददास ये गोसाईं जी के सेवक। ये आठो महा कवि थे।

दोहा—श्री बल्लभआचार्य्य के, चारि शिष्य सुखरास।
परमानन्द अरु सूर पुनि, कृष्णरु कुंभन दास॥१॥
बिट्ठलनाथ गोसाईं के, प्रथम चतुर्भुज दास।
छीतस्वामि गोबिन्द पुनि, नन्ददास सुख बास॥२॥

पान पय देवी दियो सिव आदि सुर सुर पाय।
कह्यौ दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय॥
पारि पायन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन।
तासु बंस प्रसिद्ध मैं भौचन्द चारु नवीन॥
भूप पृथ्वीराज दीन्हों तिन्हैं ज्वाला देस।
तनय ताके चार कीन्हों प्रथम आप नरेस॥
दूसरे गुनचन्द ता सुत सीलचन्द सरूप।
बीरचन्द प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप॥
रत्नभार हमीर भूपत संग खेलत आय।
तासु वंस अनूप भो हरिचन्द अति विख्याय॥
आगरे रहि गोपचल में रहौ ता सुत वीर।
पुत्र जनमैं सात ताके महा भट गम्भीर॥
कृष्णचन्द[1] उदारचन्द जु रूपचन्द सुभाइ।
बुद्धिचन्द प्रकाश चौथो चन्द भे सुखदाइ॥
देवचन्द प्रबोध संसृत चन्द ताको नाम।
भयो सप्तो नाम सूरज चन्द मन्द निकाम॥
सो समर करि स्याहि सेवक गए विध के लोग।
रहो सूरज चन्द दृग ते हीन भर बर सोक॥
परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार।
सातएं दिन आइ जदुपति कीन आपु उधार॥
दियो चख दै कही सिसु सुनु मांगु बर जो चाइ।
हौं कही प्रभु भगति चाहत सत्रु नास सुभाइ॥
दूसरो ना रूप देखो देखि राधा स्याम!
सुनत करुनासिन्धु भाखि एवमस्तु सुधाम॥
प्रबल दच्छिन बिप्र कुल तें सत्रु ह्वै है नास।
अखित बुद्धि विचारि विद्यामान माने सास॥
नाम राखो मोर सूरज दास सूर सुश्याम।
भए अन्तरधान बीते पाछली निसि जाम॥
मोहि पन सोइ है ब्रज की बसेसु खिचित थाप।
थापि गोसाईं करी मेरी आठ मद्धे छाप॥
विप्र प्रथ जगात को है भाव भूरि निकाम।
सूर है नदनन्द जू को लयो मोल गुलाम॥

महाकवि श्री जयदेव जी का जीवनचरित्र।

जयदेव जी की कविता का अमृत पान करके तृप्त, चकित, मोहित और घूर्णित कौन नहीं होता और किस देश में कौन सा ऐसा विद्वान है जो कुछ भी संस्कृत जानता हो और जयदेव जी की काव्य माधुरी का प्रेमी न हो। जयदेव जी का यह अभिमान कि अंगूर और ऊख की मिठास उन की कविता के आगे फीकी है बहुत सत्य है। इस मिठाई को न पुरानी होने का भय है न चींटी का डर है, मिठाई है, पर नमकीन है यह नई बात है। सुनने पढ़ने की बात है पर गूंगे का गुड़ है। निर्जन में जंगल पहाड़ में जहां बैठने को बिछौना भी न हो वहां गीतगोविन्द सब आनन्द सामग्री देता है, और जहां कोई मित्र-रसिक भक्त प्रेमी न हो वहां यह सब कुछ बन कर साथ रहता है। जहां गीतगोविन्द है वहीं वैष्णव गोष्ठी है, वहीं रसिक समाज है, वहीं वृन्दावन है, वहीं प्रेमसरोवर है, वहीं भाव समुद्र है, वहीं गोलोक है और वहीं प्रत्यक्ष ब्रह्मानन्द है। पर यह भी कोई जानता है कि इस परब्रह्म रस प्रेम सर्वस्व शृङ्गार समुद्र के जनक जयदेव जी कहां हुए? कोई नहीं जानता और न इसकी खोज करता। प्रोफ़ेसर लैसेन ने लैटिनभाषा में और पूना के प्रिन्सिपल आरनल्ड साहब ने अङ्गरेज़ी में गीतगोविन्द का अनुवाद किया, परन्तु कवि का जीवनचरित्र कुछ न लिखा। केवल इतना ही लिख दिया कि सन् ११५० के लगभग जयदेव उत्पन्न हुए थे। किन्तु धन्य हैं बाबू रजनीकान्त गुप्त कि जिन्हों ने पहिले पहल इस विषय में हाथ डाला और "जयदेवचरित्र" नामक एक छोटा सा ग्रन्थ इस विषय पर लिखा। यद्यपि समय निर्णय में और जीवनचरित्र में हमारे उन के मत में अनेक अनैक्य है तथापि उन के ग्रन्थ से हम को अनेक सहायता मिली है, यह मुक्त कण्ठ से स्वीकार करना होगा। और इस में कोई संशय नहीं कि उन्हीं के ग्रन्थ ने हमारी रुचि को इस विषय के लिखने पर प्रबल किया है।

बीरभूमि से प्रायः दस कोस दक्षिण * अजयनद के उत्तर किन्दुविल्व † गांव में श्री जयदेव जी ने जन्म ग्रहण किया था।

---

* अजयनद भागीरथी का करद है। यह भागलपुर ज़िला के दक्षिणसे निकल कर सौंताल परगने के दक्षिण भाग दक्षिण की ओर और फिर बर्द्धमान और बीरभूमि के ज़िले के बीच में से पच्छिम की ओर बह कर कटवा के पास भागीरथी से मिला है। (ज० च० बंगदेश विवरन)

† किन्दुविल्व बीरभूमि के मुख्य नगर सूरी से नौ कोस है। यहां श्रीराधा दामोदर जी की मूर्ति प्रतिष्ठित है। वैष्णवों का यह भी पवित्र क्षेत्र है।

संभव है कि कन्नौज से आए हुए ब्राह्मणों में से जयदेव जी का वंश भी हो। इन के पिता का नाम भोजदेव और माता का नाम रामादेवी था *। इन्हों ने किस समय अपने अविर्भाव से धरातल को विभूषित किया था यह अब तक नहीं हुआ। श्रीयुक्त सनातन गोस्वामि ने लिखा है कि बंगाधिपति महाराज लक्ष्मण-सेन की सभा में जयदेव जी विद्यमान थे। अनेक लोगों का यही मत है और इस मत को पोषण करने को लोग कहते हैं कि लक्ष्मणसेन के द्वार पर एक पत्थर खुदा हुआ लगा था, जिस पर श्लोक लिखा हुआ था "गोवर्द्धनश्चशरणो जयदेव उमापतिः। कविराजश्चरत्नानि समितौ लक्ष्मनस्य च ॥"

श्री सनातन गोस्वामि के इस लेख पर अब तीन बातों का निर्णय करना आवश्यक हुआ। प्रथम यह कि लक्ष्मणसेन का काल क्या है। दूसरे यह कि यह लक्ष्मणसेन वही है जो बंगाले का प्रसिद्ध लक्ष्मणसेन है कि दूसरा है। तीसरे यह कि यह बात श्रद्धेय है कि नहीं कि जयदेव जी लक्ष्मणसेन की सभा में थे।

प्रसिद्ध इतिहास लेखक मिरहाजिउद्दीन ने तबक़ाते नासरी में लिखा है कि जब बख़्तियार खिलजी ने बंगाला फ़तह किया तब लछमनिया नाम का राजा, बंगाले में राज करता था। इन के मत से लछमनिया बंगदेश का अन्तिम राजा था। किन्तु बंगदेश के इतिहास से स्पष्ट है कि लछमिनिया नाम का कोई भी राजा बंगाले में नहीं हुआ। लोग अनुमान करते हैं कि बल्लालसेन के पुत्र लक्ष्मणसेन के माधव सेन और केशव सेन "लाक्ष्मनेय" इस शब्द के अपभ्रंश से लछमनिया लिखा है।

राजशाही के जिले से मेटकाफ़ साहब को एक पत्थर पर खोदी हुई प्रशस्ति मिली है। यह प्रशस्ति विजयसेन राजा के समय में प्रद्युम्नेश्वर महादेव के मन्दिर निर्म्माण के वर्णन में उमापति धर की बनाई हुई है। डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र के मत से इस की संस्कृत की रचना प्रणाली नवम वा दशम वा एकादश शताब्दी की है। शोच की बात है कि इस प्रशस्ति में संवत् नहीं दिया है, नहीं तो जयदेव जी के समय निरूपण में इतनी कठिनाई न पड़ती। इस में हेमन्तसेन सुमन्तसेन और बीरसेन यही तीन नाम बिजयसेन के पूर्वपुरुषों के दिये हैं, जिस से प्रगट होता है कि बीरसेन ही वशंस्थापनकर्त्ता है। बिजयसेन के विषय में यह लिखा

---

* बम्बई की छपी हुई पुस्तक में राधादेवी जो इन की माता का नाम लिखा है वह असङ्गत है। हां, वामादेवी और रामादेवी यह दोनों पाठ अनेक हस्तलिखित पुस्तकों में मिलते हैं। बंगला में र और व में केवल एक विन्दु के भेद होने के कारण यह भ्रम उपस्थित हुआ है।

है कि उस ने कामरूप और कुरुमण्डल [मद्रास और पुरी के बीच का देश] जय किया था और पश्चिम जय करने को नौका पर गङ्गा के तट में सैना भेजी थी। तबातारीखों में इन राजाओं का नाम कहीं नहीं है। कहते हैं आईनेअकबरी का सुखसेन (बल्लालसेन का पिता) विजयसेन का नामान्तर है, क्योंकि बाकरगंज की प्रस्तरलिपि में जो चार नाम हैं वे विजयसेन, बल्लालसेन, लक्ष्मणसेन और केशवसेन इस क्रम से हैं। बल्लालसेन बड़ा पण्डित था और दानसागर और वेदार्थ स्मृति संग्रह इत्यादि ग्रन्थ उस के कारण बने। कुलीनों की प्रथा भी बल्लालसेन की स्थापित है। उस के पुत्र लक्ष्मणसेन के काल में भी संस्कृतविद्या की बड़ी उन्नति थी। भट्ट नारायण (वेणी संहार के कवि) के वंश में धनञ्जय के पुत्र हलायुध पण्डित उस के दानाध्यक्ष थे, जिन्हों ने ब्राह्मण सर्वस्व बनाया और इन के दूसरे भाई पशुपति भी बड़े स्मार्त आन्हिककार थे। कहते हैं कि गौड़ का नगर बल्लालसेन ने बसाया था, परन्तु लक्ष्मणसेन के काल से उस का नाम लक्ष्मणावती (लखनौती) हुआ। लक्ष्मणसेन के पुत्र माधवसेन और केशवसेन थे। राजावली में इन के पीछे सुसेन वा शूरसेन और लिखा है और मुसलमान लेखकों ने नौजीव (नवद्वीप ?) नारायण लखमन और लखमनिया ये चार नाम और लिखे हैं वरञ्च एक अशोकसेन भी लिखा है, किन्तु इन सबों का ठीक पता नहीं। मुसलमानों के मत से लखमनियां अन्तिम राजा है, जिस ने ८० बरस राज्य किया और बख्तियार के काल में जिस ने राज्य छोड़ा। यह गर्भ ही से राजा था। तो नाम का क्रम से बीरसेन से लछमनियां तक एक प्रकार ठीक हो गया, किन्तु इन का समय निर्णय अब भी न हुआ, क्योंकि किसी दानपत्र में संवत् नहीं है। दानसागर के बनने के समय समय प्रकाश के अनुसार १०१६ शके (१०६७ ई०)है इस से बल्लालसेन का राजत्व ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त तक अनुमान होता है और यह आइनेअकबरी के समय से भी मेल खाता है। बल्लालसेन ने १०६६ में राज्य आरम्भ किया था। तो अब सेनवंश का क्रम यों लिखा जा सकता है।

बीरसेन ... ...
सामन्तसेन ... ...
हेमन्तसेन ... ...
विजयसेन वा सुखसेन ... ...
बल्लालसेन १०६६
लक्ष्मणसेन ११०१
माधवसेन ११२१
केशवसेन ११२२
लछमनिया ११२३

वल्लालसेन का समय १०६६ ई० समय प्रकाश के अनुसार है। यदि इस को प्रमाण न मानैं और फारसी लेखकों के अनुसार लछमनियां के पहले नारायण इत्यादि और राजाओं को भी मानैं तो वल्लालसेन और भी पीछे जा पड़ैंगे। तो अब जयदेव जी लक्ष्मणसेन की सभा में थे कि नहीं यह विचारना चाहिए। हमारी बुद्धि से नहीं थे। इस के दृढ़ प्रमाण हैं। प्रथम तो यह कि उमापतिधर जिस ने बिजयसेन की प्रशस्ति बनाई है वह जयदेव जी का सम साम-यिक था, तो यदि यह मान लें कि जयदेव उमापति गोवर्द्धनादिक सब सौ बरस से विशेष जिए हैं तब यह हो सकता है कि ये बिजयसेन और लक्ष्मण दोनों की सभा में थे। दूसरे चन्द ने जिस का जन्म ११५० सन् के पास है अपने रायसा में प्राचीन कवियों की गणना में जयदेव को लिखा है* तो सौ डेढ़ सौ वर्ष पूर्व हुए बिना जयदेव जी की कविता का चंद के समय तक जगत् में आदरणीय होना असम्भव है। गोवर्द्धन ने अपनी सतशती में "सेन कुल तिलक भूपति" इतना ही लिखा, नाम कुछ न दिया, किन्तु उस की टीका में "प्रवरसेन नामा-इति" लिखा है। अब यदि प्रवरसेन, हेमन्तसेन या बिजयसेन का नामान्तर मान लिया जाय और यह भी मान लिया जाय कि जयदेव जी की कविता बहुत जल्दी संसार में फैल गई थी और समय प्रकाश का बल्लाल का समय भी प्रमाण किया जाय तो यह अनुमान हो सकता है कि बिजयसेन के समय में उस से कुछ ही पूर्व सन् १०२५ से १०५० तक में किसी वर्ष में जयदेव जी का प्राकट्य है और ऐसा ही मानने से अनेक विद्वानों की एक वाक्यता भी होती है। यहां पर

* भुजगप्रयात—प्रथमं भुजंगी सुधारी ग्रहंनं। जिनैं नाम एकं अनेकं कहंनं ॥
दुती लम्भयं देवतं जीवतेसं। जिनैं विश्वराख्यौ बलीमंत्र सेसं ॥
चवं वेद बंभं हरी किति भाषी। जिनैं भ्रम्म साध्रम्मं संसार साषी ॥
तृती भारती व्यास भारत्थ भाष्यौ। जिनैं उत्त पारत्थ सारत्थ साष्यौ ॥
चवं सुक्कसदेवं परीषत्त पायं। जिनैं उद्धरयौ अब्ब कुर्वंस रायं ॥
नरं रूप पंचम्म श्रीहर्ष सारं। नलैराय कंठं दिनैं पद्ध हारं ॥
छटं कालिदासं सुभाषा सुबद्धं। जिनैं बागवानी सुबानी सुबद्धं ॥
कियो कालिका मुक्ख वासं सुसुद्धं जिनैं सेत बंध्योति भोज प्रबंद्धं ॥
सतं डडमाली उलाली कवित्तं जिनैं बुद्धि तारंग गांगा सरित्तं ॥
जयद्देव अट्ठं कवि कब्बिरायं जिनैं केवलं किति गोविंद गायं ॥
गुरं सब्ब कब्बी लहू चंद कब्बी जिनैं दर्सियं देवि सा अंग हब्बी ॥
कवी कित्तकित्ति उकत्ती सुदिक्खी तिनैं कोउ चिष्टोकवीचंद भक्खी ॥

समय विषयक जटिल और नीरस निर्णय जो बंगला और अङ्गरेज़ी ग्रन्थों में है वह न लिख कर सार लिख दिया है। इस से "जयदेव चरित" इत्यादि बंगला ग्रन्थों में जो जयदेव जी का समय तेरहवीं या चौदहवीं शताब्दी लिखा है वह अप्रमाण होकर यह निश्चय हुआ कि जयदेव जी ग्यारहवीं शताब्दी में उत्पन्न हुए हैं।

जयदेव जी की बाल्यावस्था का सविशेष वर्णन कुछ नहीं मिलता। अत्यन्त छोटी अवस्था में यह मातृपितृविहीन हो गए थे यह अनुमान होता है। क्योंकि विष्णुस्वामि चरितामृत के अनुसार श्री पुरुषोत्तमक्षेत्र में इन्हों ने उसी सम्प्रदाय के किसी पण्डित से पढ़ी थी। इन के विवाह का वर्णन और भी अद्भुत है। एक ब्राह्मण ने अनपत्य होने के कारण जगन्नाथ देव की बड़ी आराधाना कर के एक कन्या रत्न लाभ किया था। इस कन्या का नाम पद्मावती था। जब यह कन्या विवाह योग्य हुई तो जगन्नाथ जी ने स्वप्न में उस के पिता को आज्ञा किया कि हमारा भक्त जयदेव नामक एक ब्राह्मण अमुक वृक्ष के नीचे निवास करता है, उस को तुम अपनी कन्या दो। ब्राह्मण कन्या को लेकर जयदेव जी के पास गया। यद्यपि जयदेव जी ने अपनी अनिच्छा प्रकाश किया तथापि देवादेशानुसार ब्राह्मण उस कन्या को उन के पास छोड़ कर चला आया। जयदेव जी ने जब उस कन्या से पूछा कि तुम्हारी क्या इच्छा है तो पद्मावती ने उत्तर दिया कि आज तक हम पिता की आज्ञा में थे, अब आप की दासी हैं। ग्रहण कीजिए वा परित्याग कीजिए, मैं आप का दासत्व न छोड़ूंगी। जयदेव जी ने उस कन्या के मुख से यह सुन कर प्रसन्न हो कर उस का पाणिग्रहण किया। अनेक लोगों का मत है कि जयदेव जी ने पूर्व में एक विवाह किया था उस स्त्री के मृत्यु के पीछे उदास होकर पुरुषोत्तमक्षेत्र में रहते थे। पद्मावती उन की दूसरी स्त्री थी। इन्हीं पद्मावती के समय, संसार में आदरणीय कविता रत्न का निकष गीतगोविन्द काव्य जयदेव जी ने बनाया।

गीतगोविन्द के सिवा जयदेव जी की और कोई कविता नहीं मिलती। प्रसन्न-राघव पक्षधरी चन्द्रालोक और सीताविहार काव्य विदर्भ नगर वासी कौंडिन्य गोत्रोद्भव महादेव पण्डित के पुत्र दूसरे जयदेव जी के बनाए हैं, जिन का काव्य में पीयूषवर्ष और न्याय में पक्षधर उपनाम था, वरञ्च अनेक विद्वानों का मत है कि तीन जयदेव हुए हैं, यथा गीतगोविन्दकार, प्रसन्नराघवकार और चन्द्रालोक-कार जिन का नामान्तर पीयूषवर्ष है।

पद्मावती के पाणिग्रहण के पीछे जयदेव जी अपने स्थापित इष्टदेव की सेवा निर्वाहार्थ द्रव्य एकत्र करने की इच्छा से वा तीर्थाटन और धर्म्मो-पदेश की इच्छा से निज देश छोड़ कर बाहर निकले। श्रीवृन्दावन की यात्रा

कर के जयपुर वा जयनगर होते हुए जयदेव जी मार्ग में चले जाते थे कि डाकुओं ने धन के लोभ से उन पर आक्रमण किया और केवल धन ही नहीं लिया, वरञ्च उन के हाथ पैर भी काट लिए। कहते हैं कि किसी धार्मिक राजा के कुछ भृत्य लोग उसी मार्ग से जाते थे। उन लोगों ने जयदेव जी की यह दशा देखा और अपने राज्य में उन को उठा ले गए। वहां औषध इत्यादि से कुछ इन का शरीर स्वस्थ हुआ। इसी अवसर में चोर भी उस नगर में आए और साधु वेश में उस नगर के राजा के यहां उतरे। तब राजा के घर में जयदेव जी का बड़ा मान था और दान धर्म सब इन्हीं के द्वारा होता था। जयदेव जी ने इन साधु वेशधारी चोरों को अच्छी तरह पहचान लिया और यदि वे चाहते तो भली भाँति अपना बदला चुका लेते, परन्तु उन के सहज उदार और दयालु चित्त में इस बात का ध्यान तक न आया, वरञ्च दानादिक देकर उन का बड़ा आदर किया। बिदा के समय भी उन को बड़े सत्कार से अच्छी बिदाई देकर बिदा किया और राजा के दो नौकर साथ कर दिये कि अपनी सरहद तक उन को पहुंचा आवे। मार्ग में राजा के अनुचर ने उन चोरों से पूछा कि इन साधू जी ने और लोगों से विशेष कर आप का आदर क्यों किया। इस पर उन चाण्डाल चोरों ने यह उत्तर दिया कि जयदेव जी पहिले एक राजा के यहां रहते थे, इन्हों ने कुछ ऐसा दुष्कर्म्म किया कि राजा ने हम लोगों को इन के प्राण हरने की आज्ञा दिया, किन्तु दया परवश हो कर हम लोगों ने इन के प्राण नहीं लिए, केवल हाथ पैर काट कर छोड़ दिया। इसी बात के छिपाने के हेतु जयदेव ने हमलोगों का इतना आदर किया। कहते हैं कि मनुष्यों को आधारभूता पृथ्वी इस अनर्थ मिथ्याप्रवाद को न सह सकी और द्विधा विदीर्ण हो गई। वे चोर सब उसी पृथ्वीगर्त में डूब गए और परमेश्वर के अनुग्रह से जयदेव जी के भी हाथ पैर फिर से यथावत् हो गए। अनुचरों के द्वारा यह वृत्तान्त सुन कर और जयदेव जी से पूर्व्ववृत्त जान कर राजा अत्यन्त चमत्कृत हुआ। आश्चर्य्य घटना अविश्वासी विद्वानों का मत है कि जयदेव जी ऐसे सहृदय थे कि उन के सहज स्वभाव पर रीझ कर लोगों ने यह गल्प कल्पित कर ली है।

तदनन्तर जयदेव जी ने अपनी पत्नी पद्मावती को भी वहीं बुला लिया। कहते हैं कि एक बेर उस राजा की रानी ने ईर्षावश पद्मावती की परीक्षा करने को उस से कह दिया कि जयदेव जी मर गए। उस समय जयदेव जी राजा के साथ कहीं बाहर गए थे। पतिप्राण पद्मावती ने यह सुनते ही प्राण परित्याग कर दिया। जब जयदेव जी आए और उन्हों ने यह चरित देखा तो श्रीकृष्ण नाम सुना कर उस को पुनर्जीवन दिया, किन्तु उस ने उठ कर कहा कि अब आप हम को आज्ञा ही दीजिए, हमारा इसी में कल्याण है कि हम आप के सामने

परमधाम जायं और तदनुसार उस ने फिर शरीर नहीं रक्खा। जयदेव जी इस से उदास होकर अपनी जन्मभूमि केंदुली ग्राम में चले आए और फिर यावत् जीवन वहीं रहे।

श्री जयदेव जी के गीतगोविंद के जोड़ पर गीतगिरीश नामक एक काव्य बना है, किन्तु जो बात इस में है वह उस में सपने में भी नहीं है।

गीतगोविंद के अनेक टीकाकार भी हुए हैं, यथा उदय जो खास गोवर्द्धनाचार्य का शिष्य था और जयदेव जी से भी कुछ पढ़ा था। एक टीका उस की बनाई है और पीछे से अनेक टीका बनी हैं। उदयन की टीका जयदेव जी के समय में बन चुकी थी और इस में कोई सन्देह नहीं कि गीतगोविंद जयदेव जी के जीवन काल ही से सारे संसार में प्रचलित हो गया था। गीतगोविंद दक्षिण में बहुत गाया जाता है और बाला जी में सीढ़ियों पर द्राविड़ लिपि में खुदा हुआ है। श्री बल्लभाचार्य्य सम्प्रदाय में इस का विशेष भाव है, वरञ्च आचार्य्य के पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ जी की इस के प्रथम अष्टपदी पर एक रसमय टीका भी बड़ी सुन्दर है, जिस में दशावतार का वर्णन शृंगार परत्व लगाया है। वैष्णवों में परिपाटी है कि अयोग्य स्थान पर गीतगोविंद नहीं गाते। क्योंकि उन का विस्वास है कि जहां गीतगोविंद गाया जाता है वहां अवश्य भगवान का प्रादुर्भाव होता है। इस पर वैष्णवों में एक आख्यायिका प्रचलित है। एक बुढ़िया को गीतगोविंद की "धीर समीरे यमुना तीरे" यह अष्टपदी याद थी। वह बुढ़िया गोवर्द्धन के नीचे किसी गांव में रहती थी। एक दिन वह बुढ़िया अपने बैंगन के खेत में पेड़ों को सींचती थी और अष्टपदी गाती थी, इस से ठाकुर जी उस के पीछे पीछे फिरे। श्रीनाथ जी के मन्दिर में तीसरे पहर को जब उत्थापन हुए तो श्री गोसाईं जी ने देखा कि श्रीनाथ जी का बागा फटा हुआ है और बैंगन के कांटे और मिट्टी लगी हुई है। इस पर जब पूछा गया तो उत्तर मिला कि अमुक बुढ़िया ने गीतगोविंद गाकर हम को बुलाया इस से कांटे लगे, क्योंकि वह गाती गाती जहां जहां जाती थी मैं उस के पीछे फिरता था। तब से यह आज्ञा गोसाईं जी ने वैष्णवों में प्रचार किया कि कुस्थान पर कोई गीतगोविंद न गावे।

किम्बदन्ती है कि जयदेव जी प्रति दिवस श्रीगङ्गा स्नान करने जाते थे। उन का यह श्रम देख कर गङ्गा जी ने कहा कि तुम इतनी दूर क्यों परिश्रम करते हो, हम तुम्हारे यहां आप आवैंगे। इसी से अजयनद नामक एक धार में गङ्गा अब तक केंदुली के नीचे बहती हैं।

जयदेव जी विष्णुस्वामी सम्प्रदाय में एक ऐसे उत्तम पुरुष हुए हैं कि सम्प्रदाय की मध्यावस्था में मुख्यत्व करके इन का नाम लिया गया है। यथा—

विस्णुस्वामिसमारम्भां जयदेवादिमध्यगां ।
श्रीमद्वल्लभपर्य्यन्तांस्तुमोगुरुपरम्पराम् ॥ १ ॥

जयदेव जी का पवित्र शरीर कैंदुली ग्राम में समाधिस्थ है। यह समाधि मन्दिर सुन्दर लताओं से वेष्ठित हो कर अपनी मनोहरता से अद्यापि जयदेव जी के सुन्दर चित्त का परिचय देता है।

"जयदेव जी नितान्त करुण हृदय और परम धार्मिक थे। भक्ति विलसित महत्व छटा और अनुपम प्रीति व्यञ्जक उदार भाव यह दोनों उन के अन्तःकरण में निरन्तर प्रतिभासित होते थे। उन्हों ने अपने जीवन का अर्द्धकाल केवल उपासना और धर्म्मघोषना में व्यतीत किया। वैष्णव सम्प्रदाय में इन के ऐसे धार्म्मिक और सहृदय पुरुष बिरले ही हुए है।"

जयदेव जी एक सत्कवि थे, इस में कोई सन्देह नहीं। यद्यपि कालिदास भवभूति भारवि इत्यादि से वह बढ़ कर कवि थे यह नहीं कह सकते। बङ्गभूमि में तो कोई ऐसा सत्कवि आज तक हुआ नहीं। "ललितपदविन्यास और श्रवण मनोहर अनुप्रास की छटा निबन्धन से जयदेव की रचना अत्यन्त ही चमत्कारिणी है मधुर पद विन्यास में तो बड़े २ कवि भी इस से निस्सन्देह हारे हैं"।

जयदेव जी का प्रसिद्ध ग्रन्थ गीतगोविन्द बारह सर्गों में विभक्त है। जिस में पूर्व में श्लोक और फिर गीत क्रम से रक्खे हैं। इस ग्रन्थ में परस्पर विरह, दूती, मान, गुण कथन और नायक का अनुनय और तत्पश्चात् मिलन यह सब वर्णित है। जयदेव जी परम वैष्णव थे। इस से उन्हों ने जो कुछ वर्णन किया है अत्यन्त प्रगाढ़ भक्ति पूर्ण हो कर वर्णन किया है। इन्हों ने इस काव्य में अपनी रस-शालिनी रचना शक्ति और चित्तरञ्जक सद्भाव शालित्व का एक शेष प्रदर्शन दिया है। पण्डितवर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर स्वप्रणीत संस्कृत विषयक प्रस्ताव में लिखते हैं "इस महाकाव्य गीतगोविन्द की रचना जैसी मधुर कोमल और मनोहर है उस तरह की दूसरी कविता संस्कृत-भाषा में बहुत अल्प है। वरञ्च ऐसे ललित पद विन्यास, श्रवन मनोहर, अनुप्रास छटा और प्रसाद गुण और कहीं नहीं है।" वास्तव से रचना विषय में गीतगोविन्द एक अपूर्व पदार्थ है। और तालमानों के चातुर्य्य से और अनेक रागों के नाम के अनुकूल गीतों में अक्षर से स्पष्ट बोध होता है कि जयदेव जी गाना बहुत अच्छा जानते थे। कहते हैं कि गीतगोविन्द को अष्टपदी और अष्टताली नाम से भी लोग पुकारते हैं।

अनेक विद्वानों ने लिखा है गीतगोविन्द विक्रमादित्य की सभा में गाया जाता था। किन्तु यह कथा सर्वथा अश्रद्धेय है। यह कोई और विक्रम होंगे जिन की

सभा में गीतगोविन्द गाया जाता था, क्योंकि शकारि विक्रम के अनेक सौ वर्ष पश्चात् जयदेव जी का जन्म है। हां कलिङ्ग कर्णाट प्रभृति देश के राजाओं की सभा में पूर्व में गीतगोविंद निस्सन्देह गाया जाता था। बरञ्च जोनराज ने अपनी राजतरंगिणी में लिखा है कि श्रीहर्ष जब क्रम सरोवर के निकट भ्रमण करते उन दिनों गीतगोविन्द उन की सभा में गाया जाता था।

कहते हैं कि "प्रिये चारुशीले" इस अष्टपदी में "स्मरगरल खण्डनं मम शिरसि मण्डनं" इस पद के आगे जयदेव जी की इच्छा हुई कि "देहि पद पल्लव-मुदारं" ऐसा पद दें, किन्तु प्रभु के विषय में ऐसा पद देने को उन का साहस नहीं पड़ा, इस से पुस्तक छोड़ कर आप स्नान करने चले गए। भक्तवत्सल, भक्तमनोरथपूरक भगवान इस समय स्नान से फिरते हुए जयदेव जी के वेश में घर में आए। प्रथम पद्मावती ने जो रसोई बनाई थी उस को भोजन किया, तदनन्तर पुस्तक खोल कर 'देहि पदपल्लवमुदारं' लिख कर शयन करने लगे। इतने में जयदेव जी आए तो देखा कि पतिप्राणा पद्मावती जो बिना जयदेव जी को भोजन कराये जल भी नहीं पीती थी वह भोजन कर रही है। जयदेव जी ने भोजन का कारण पूछा तो पद्मावती ने आश्चर्यपूर्वक सब वृत्त कहा। इस पर जयदेव जी ने जाकर पुस्तक देखा तो "देहि पदपल्लवमुदारं" यह पद लिखा है। वह जान गए कि यह सब चरित्र उसी रसिकशिरोमणि भक्तवत्सल का है। इस से आनन्द पुलकित हो कर पद्मावती की थाली का अन्न खा कर अपने को कृतार्थ माना।

कहते हैं कि पुरी के राजा सात्विकराय ने ईर्षापरवश होकर एक जयदेव जी की कविता की भांति अपना भी गीतगोविन्द बनाया था। इस झगड़े को निबटाने को कि कौन गीतगोबिन्द अच्छा है दोनों गीतगोविन्दों को पण्डितों ने जगन्नाथ जी के मंदिर में रख कर बन्द कर दिया जब यथा समय द्वार खुला तो लोगों ने देखा कि जयदेव जी का गीतगोविन्द श्री जगन्नाथ जी के हृदय में लगा हुआ है और राजा का दूर पड़ा है। यह देखकर राजा आत्महत्या करने को तयार हुआ। तब श्री जगन्नाथ जी ने उस के संबोधन के वास्ते आज्ञा किया कि हम ने तेरा भी अङ्गीकार किया, शोच मत कर।

तगी द्न्गोबिअङ्गरेज़ी गद्य में सर विलियम जोन्स कृत, पद्य में आनरल्ड साहब कृत, लैटिन में लासिन कृत, जर्मन में रुकार्ट कृत, ऐसे ही अनेक भाषाओं में अनेक जन कृत अनुवादित हुआ है। हिन्दी में इन के छन्दोबद्ध तीन अनुवाद हैं। प्रथम राजा डालचन्द की आज्ञा से रायचन्द नागर कृत, द्वितीय अमृतसर के

प्रसिद्ध भक्त स्वामी रत्नहरीदास कृत और तृतीय इस प्रबन्ध के लेखक हरिश्चन्द्र कृत। इन अनुवादों के अतिरिक्त द्राविड़ और कार्णाटादि भाषाओं में इस के अपरा पर अन्य अनेक अनुवाद हैं।

लोग कहते हैं कि जयदेव जी ने गीतगोबिन्द के अतिरिक्त एक ग्रन्थ रतिमञ्जरी भी बनाया था, किन्तु यह अमूलक है। गीतगोविन्दकार की लेखनी से रतिमञ्जरी सा जघन्य काव्य निकले यह कभी सम्भव नहीं। एक गङ्गा की स्तुति में सुन्दर पद जयदेव जी का बनाया हुआ और मिलता है वह उन का बनाया हुआ हो तो हो।

इस भांति अनेक सौ बरस हुए कि श्रीजयदेव जी इस पृथ्वी को छोड़ गए। किन्तु अपनी कविता बल से हमारे समाज में वह सादर आज भी बिराजमान हैं। इन के स्मरण के हेतु केन्दुली गांव में अब तक मकर की संक्रान्ति को एक बड़ा भारी मेला होता है, जिस में साठ सत्तर हज़ार वैष्णव एकत्र हो कर इन की समाधि के चारों ओर संकीर्त्तन करते हैं।

महात्मा मुहम्मद।

जिस समय अरब देश वाले बहुदेवोपासना के घोर अन्धकार में फंस रहे थे उस समय महात्मा मुहम्मद ने जन्म ले कर उन को एकेश्वर वाद का सदुपदेश दिया। अरब के पश्चिम ईसामसीह का भक्तिपथ प्रकाश पा चुका था किन्तु वह मत अरब फारस इत्यादि देशों में प्रबल नहीं था और न अरब ऐसे कट्टर देश में महात्मा मुहम्मद के अतिरिक्त और किसी का काम था कि वहां कोई नया मत प्रकाश करता। उस काल के अरब के लोग मूर्ख, स्वार्थतत्पर, निर्दय और वन्यपशुओं की भांति कट्टर थे। यद्यपि उन में से अनेक अपने को इबराहीम के वंश का बतलाते और मूर्ति पूजा बुरी जानते, किन्तु समाजपरवश होकर सब बहुदेवोपासक बने हुए थे। इसी घोर समय में मक्के से मुहम्मदचन्द्र का उदय हुआ और एक ईश्वर का पथ परिष्कार रूप से सब को दिखलाई देने लगा।

महात्मा मुहम्मद इबराहीम के वंश में इस क्रम से हैं:—इबराहीम, इसमाईल, कबजार, हमल, सलमा, अलहौसा, अलीसा, ऊद, आद, अदनान, साद, नजार, मबर, अलपास, बदरका, खरीमा, किनाना, नगफर, मालिक, फहर, गालिब, लवी, काब, मिरह, कलाव, फजी, अबद्‌मनाफ, हाशिम, अबदुल मतलब, अब्दुल्लाह और इनके अबुल कासिम मुहम्मद।

अबदुलमतलब के अनेक पुत्र थे, जैसा हमजा, अब्बास, अबूतालिब अबु-लहब, अईदाक। कोई कोई हारिस, हजब, हकूम, जरार जुबैर, कासमे असगर, अबदुलकावा और मकूम को भी कुछ विरोध से अबदुल मतलब का पुत्र मानते हैं। इन में अब्दुल्लाह और अबीतालिब एक मां से हैं। अबीतालिब के तीन पुत्र अकील, जाफर और अली। यह अली महात्मा मुहम्मद के मुसलमानी सत्य मत का प्रचार करने के मुख्य सहायक और रात दिन के इन के दुख सुख के साथी थे और यह अली जब महात्मा मुहम्मद ने दूतत्व का दावा किया तो पहिले पहल मुसल्मान हुए।

महात्मा मुहम्मद की मा का नाम आमिना है, जो अबद्‌मनाफ के दूसरे बेटे बहब की बेटी है और आदरणीय अली की मा का फातमा है जो असद की बेटी है और यह असद हाशिम के पुत्र हैं। इस से मुहम्मद और अली पितृकुल और मातृकुल दोनों रीति से हाशिमी हैं।

महात्मा मुहम्मद १२ वीं रबीउलअौवल सन् ५६९ ईस्वी को मक्का में पैदा हुए।

महात्मा मुहम्मद के पिता के इन के जन्म के पूर्व [एक लेखक के मत से

इन के जन्म के दो वर्ष पीछे] मर जाने से उन के दादा इन का लालन पालन करते थे। अरब के उस समय की असभ्य रीति के अनुसार कोई दाई अनाथ लड़के को दूध नहीं पिलाती थी और इस में वहाँ की स्त्रियाँ अमंगल समझती थीं, किन्तु अलीमा नामक* एक स्त्री ने इन को दूध पिलाना स्वीकार किया। इस दाई को बालक ऐसा हिए लग गया कि एक दिन अलीमा ने आकर महात्मा मुहम्मद की माता अमीना से कहा कि मक्के में संक्रामक रोग बहुत से होते हैं इस से इस बालक को मैं अपने साथ जंगल में ले जाऊंगी। उन की मा ने आज्ञा दे दी और साढ़े चार वर्ष तक महत्मा मुहम्मद अलीमा के साथ वन में रहे। परन्तु इन के दैवी चमत्कार से कुछ शङ्का कर के दाई फिर इन को इन की माता के पास छोड़ गई। इन की छ बरस की अवस्था में इन की माता अमीना का भी परलोक हुआ और आठ बरस की अवस्था में इन के दादा अबदुल मतलब भी मर गए। तब से इन के सहोदर पितृव्य अबीतालिब पर इन के लालन पालन का भार रहा। अबीतालिब महत्मा मुहम्मद के बारह और पितृव्यों में इन के पिता के सहोदर भ्राता थे। हाशिम महात्मा मुहम्मद के परदादा का नाम था और यह मनुष्य ऐसा प्रसिद्ध हुआ कि उस के समय से उस के वंश का नाम हाशिमी पड़ा। यहां तक कि मक्का और मदीने का हाकिम अब भी "हशिमियों के राजा" के पद से पुकारा जाता है। अबदुल मतलब महात्मा मुहम्मद को बहुत चाहते थे और यह नाम भी उन्हीं का रक्खा हुआ था। इस हेतु मरती समय अबीतालिब को बुला कर महात्मा मुहम्मद की बांह पकड़ा कर उन के पालन के विषय में बहुत कुछ कह सुन दिया था। अबीतालिब ने पिता की शिक्षा के अनुसार महात्मा मुहम्मद के साथ बहुत अच्छा बरताव किया और इन को देश और समय के अनुसार शिक्षा दिया और व्यापार भी सिखलाया।

उन्हों ने रीति मत विद्या शिक्षा किया था इस का कोई प्रमाण नहीं मिला। पचीस बरस की अवस्था तक पशु चारण के कार्य में नियुक्त थे। चालीस बरस की अवस्था में उन का धर्म भाव स्फूर्ति पाया। ईश्वर निराकार है, और एक अद्वितीय हैं; उन की उपासना बिना परित्राण नहीं है। यह महासत्य अरब के बहु-देवोपासक आचार भ्रष्ट दुर्दान्त लोगों में वह प्रचार करने को आदिष्ट हुए। तेंतालीस बरस की अवस्था के समय में अग्निमय उत्साह और अटल विश्वास से प्रचार में प्रवृत्त हुए। "रजोतः सहुदा" नामक मुहम्मदीय धर्म ग्रन्थ में उन की उक्ति कह कर ऐसा उल्लिखित है। "हमारे प्रति इस समय ईश्वर का यह आदेश है कि

* An Athiopian Female Slave.

निशा जागरण कर के दीन हीन लोगों की अवस्था हमारे निकट निवेदन करो, आलस्य शय्या में जो लोग निद्रित हैं उन लोगों के बदले तुम जागते रहो, सुख-ग्रह में आनन्द विह्वल लोगों के लिए अश्रुवर्षण करो।" पैगम्बर महम्मद जब ईश्वर का स्पष्ट आदेश लाभ करके ज्वलन्त उत्साह के साथ पौत्तलिकता के और पापाचार के विरुद्ध खड़े हुए और "ईश्वर एकमात्र अद्वितीय है" यह सत्य स्थान स्थान में गम्भीरनाद से घोषना करने लगे, उस समय वह अकेले थे। एक मनुष्य ने भी उन को सम विश्वासी रूप से परिचित होकर उन के उस कार्य्य में सहानुभूति दान नहीं किया। किन्तु उन्हों ने किसी की मुखापेक्षा नहीं किया, किसी का अनुमात्र भय नहीं किया बुद्धि विचार तर्क की तृसीमा में भी नहीं गये, प्रभु का आदेश पालन करना ही उन का दृढ़ व्रत था। जब वह ईश्वर के आदेश से "ला इलाह एलिल्लाह" (ईश्वर एक मात्र अद्वितीय है) इस सत्य प्रचार में प्रवृत्त हुए, तब सब अरबी लोग उन के कई पितृव्य और समस्त ज्ञाति सम्बन्धी निज अवलम्बित धर्म के विरुद्ध वाक्य सुन कर भयानक क्रोधान्ध हुए और उन के स्वदेशीय और आत्मीय गन "महम्मद मिथ्याबादी और एन्द्रजालिक है" इत्यादि उक्ति कह के उन के प्रति और सबों का मन बिरक्त और अविश्वस्त करने लगे। स्वजन सम्बन्धियों के द्वारा क्लेश अपमान प्रहार यन्त्रना आदि उन को जितनी सह्य करनी पड़ी थी उतनी दूसरे किसी महापुरुष को नहीं सहनी पड़ी। विपरीत लोगों के प्रस्तराघात से उन का शरीर क्षत विक्षत हुआ था। किसी के प्रस्तराघात से उन का दो दांत भग्न और ओठ विदीर्ण तथा ललाट और बाहु आहत हुआ था। किसी शत्रु ने उन को आक्रमण कर के उन का मुखमण्डल कंकड़ मय मृत्तिका में घर्षन किया था, उस से मुंह क्षत विक्षत और शोनिताक्त हुआ था। एक दिन किसी ने उन के गले में फांसी लगा कर स्वास रोध्य कर के उन को बध करने का उपक्रम किया था। एक दिन किसी ने उन का गला लक्ष करके करवालाघात किया था तब गह्वर में छिपकर उन्हों ने अपने प्राण की रक्षा किया था। कई वार उन की जीवनाशा कुछ भी नहीं थी। एक दिन उन के पितृव्य और जातिवर्ग उन को बध करने को कृत संकल्प हुए थे। उन की प्रियतमा दुहिता फातिमा ने जान कर रोते रोते उन से निवेदन किया, उस में धर्म्मवीर विश्वासी महम्मद अकुतोभय भाव से बोले कि वत्से! मत रो, हम को कोई बध नहीं कर सकेगा, हम उपासनारूप अस्त्र धारण करेंगे, विश्वास बर्म्म से आवृत होंगे। जब हजरत महम्मद को प्रहार क्षत कलेवर और निःसहाय देख कर उन के पितृव्य हमज़ा महाक्रोध से अबुलहब और अबुजोहल प्रभृति मुहम्मद के परमशत्रु पितृव्य और दूसरे २ ज्ञाति सम्बन्धियों को प्रहार करने जाते थे, उस समय वह बोले, "जिन ने हम को सत्यधर्म्म प्रचार के हेतु मनुष्य मण्डली में प्रेरण किया है उस

सत्य परमेश्वर के नाम पर शपथ कर के हम कहते हैं, यदि तुम सुतीक्ष्ण करवाल के द्वारा नीच बहुदेवोपासक लोगों को निहत करो और उसी भाव से हमारी सहायता करने को अग्रसर हो तो तुम अपने को शोणित में कलंकित कर के पुन्यमय सत्य परमेश्वर से दूर जा पड़ोगे। ईश्वर के एकत्व में और हम उन के प्रेरित हैं इस सत्य का विश्वास जब तक न करोगे तब तक तुम को युद्ध विवाद में कोई फल नहीं होगा। पितृव्य यदि तुम वात्सल्यरूप औषध हम को प्रदान करने चाहते हो, और हमारे आहत हृदय में आरोग्य का औषध लेपन करना चाहते हो, तो "ला इलाह इलेल्लाह महम्मदरसुलल्लाह" (ईश्वर एकमात्र अद्वितीय और मुहम्मद उस का प्रेरित है) यह वाक्य उच्चारण करो। यह सुन कर हमज़ा विश्वासी होकर कलमा उच्चारण पूर्वक एक ईश्वर के धर्म्म में दीक्षित हुए। तीन बरस शत्रु मण्डली से अवरुद्ध हो कर हजरत महम्मद को महा क्लेश में एक गिरिगुहा में कालयापन करना पड़ा था। इस बीच में बहुत से मनुष्यों ने उन के साथ उस उन्नत विश्वास में योग दिया था और उन के निकट एक ईश्वर के धर्म्म में दीक्षित हुए थे। ईश्वर की आज्ञापालन के लिए वह दश बरस मक्का नगर में अपरिसीम क्लेश और अत्याचार सहन कर के पीछे मदीना नगर में चले गए। वहां शत्रुगन से आक्रान्त होकर उन लोगों के अनुरोध से और आवाहन से युद्ध करने को वाध्य हुए। वह विपन्न अत्याचारित होकर कभी तनिक भी भीत और संकुचित नहीं हुए थे। जितनी वाधा और विघ्न उपस्थित होता था उतना ही अधिक उत्साहानल से प्रज्वलित हो उठते थे। सब विघ्न अतिक्रम कर के अटल विश्वास से वह ईश्वरादेश पालन व्रत में दृढ़व्रती थे। वह ईश्वर और मनुष्य के प्रभु भृत्य का सम्बन्ध अपने जीवन में विशेष भांति प्रदर्शन करा गए हैं। वह स्वामी आदेश शिरोधार्य कर के स्वर्गीय तेज और अलौकिक प्रभाव से कोटि कोटि मनुष्य को अन्धेरे से ज्योति में लाए। लक्ष लक्ष जन का सांसारिक बल एक विश्वास के बल से चूर्ण कर के जगत् में अद्वितीय ईश्वर की महिमा को महीयान् किया। एकेश्वर की पूजा और सत्य का राज्य प्रतिष्ठित किया। प्रभु का आदेशपालन के हेतु सब प्रकार का दारिद्र क्लेश अपमान और आत्मीय जन का निग्रह अम्लान बदन से सिर नीचा कर के सहन किया। धन्य! ईश्वर के विश्वास किङ्कर महम्मद! आज मुसलमान धर्म्म के प्रवर्त्तक ईश्वर के आज्ञाकारी विश्वस्त भृत्य मुहम्मद के नाम और उन के प्रवर्त्तित पवित्र एकेश्वर के धर्म्म में एशिया से योरोप अफ्रीका तक कोटि कोटि मुसलमान एक सूत्र में ग्रथित हैं। वह ऐसा आश्चर्य धर्म्म का बन्धन जगत् में संस्थापन कर गए हैं कि आज दिन उस के खोलने की किसी को सामर्थ्य नहीं है।

बीबी फ़ातिमा।

अब हम लोग उस का जीवनचरित्र लिखते हैं जिस को करोड़ों मनुष्य सिर झुकाते हैं और जिस के दामन से प्रलय पीछे करोड़ों मनुष्य को ईश्वर के सामने अपने अपराधों की क्षमा मिलने की आशा है। यह बीबी फ़ातिमा मुसलमान धर्म्माद्याचार्य महात्मा मुहम्मद की प्यारी कन्या थी। महात्मा मुहम्मद जैसे दुहितृ-वत्सल थे वैसे ही बीबी फातिमा पितृभक्त थीं। यह बाल्यावस्था ही में मातृहीना हो गईं, क्योंकि इन की माता महात्मा मुहम्मद की प्रथमा स्त्री बीबी ख़दीजा इन को शैशवावस्था ही में छोड़ कर परलोक सिधारीं। यद्यपि महात्मा मुहम्मद को अनेक सन्तति थीं पर औरों का कोई नाम भी नहीं जानता और इन को आबाल-वृद्ध वनिता सभी जानते हैं। मुहम्मद ने अपने मुख से कहा है कि ईश्वर ने संसार की सब स्त्रियों से फातिमा को श्रेष्ठ किया। इन्हों ने आठ बरस तक जिस असाधारण निष्ठा और परम श्रद्धा से पिता की सेवा की पराकाष्ठा की है वैसी सन्देह है कि किसी स्त्री ने भी न की होगी और न ऐसी पितृगतप्राणा नारीरत्न और कहीं उत्पन्न हुई होगी। मुहम्मद क्षण भर भी दृष्टि से दूर रखने में कष्ट पाते थे। पिता के अलौकिक दृष्टान्त और उपदेशों के प्रभाव से शैशवा-वस्था ही से इन को अत्यन्त धर्मनिष्ठा थी। इन का मुख भोला भाला सहज सौन्दर्य्य से पूर्ण और सतोगुणी तेज से देदीप्यमान था। कभी इन्हों ने सिंगार न किया। सांसारिक सुख की ओर यौवनावस्था में भी इन्हों ने तृणमात्र चित्त न दिया। धर्म्म की विमल ज्योति और ईश्वरी प्रताप इन के चिहरे से प्रगट था। धर्म्मसाधन और कठिन वैराग्य व्रतपालन ही में इन को आनन्द मिलता था और अनशनादिक नियम ही इन का व्यसन था। इन के समस्त चरित्र में से दो एक दृष्टान्त स्वरूप यहां पर लिखे जाते हैं।

महात्मा मुहम्मद के चचेरे भाई और परम सहायक आदरणीय अली से इन का विवाह हुआ और सुप्रसिद्ध हसन हुसैन इन के दो पुत्र थे।

एक बेर कुरेशवंशीय अनेक संभ्रान्तजन महात्मा मुहम्मद के पास आए और बोले कि यद्यपि हमारा और आप का धर्म सम्बन्ध नहीं है पर हम और आप एक ही वंश के और एक ही स्थान के हैं इस से हम लोगों की इच्छा है कि हम लोगों के यहां जो अमुक आप सम्बन्धी का अमुक से विवाह होने वाला है उस कार्य को आप की पुत्री फातिमा चल कर अपने हाथ से सम्पादन करै। महात्मा मुहम्मद ने अच्छा कह कर बिदा किया और फातिमा के निकट आ कर कहने लगे—वत्से! लोगों से सद्भाव तथा शत्रुओं का उत्पीड़न सहन करना और शत्रुतारूपी विष को

कृतज्ञता रूपी सुधा भाव से पान ही हमारा धर्म है। आज अरब के अनेक मान्य लोगों ने अपने विवाह में तुम को बुलाया। यह हमारी इच्छा है कि तुम वहां जाओ, परन्तु तुम्हारी क्या अनुमति है हम जानना चाहते हैं। फातिमा ने कहा ईश्वर और ईश्वर के भेजे हुए आचार्य्य की आज्ञा कौन उल्लंघन कर सकता है? हम तो आप की आज्ञाधीना दासी हैं, इस से हमारी सामर्थ्य नहीं कि आप की आज्ञा टालें। हम विवाह सभा में जायंगे, परन्तु शोच यह है कि हम कौन सा वस्त्र पहन के जायंगे। वहां और स्त्री लोग महामूल्य वस्त्राभरणादिक धारण कर के आवेंगी और हमारी फटी चद्दर देख कर वे लोग हमारा और आप का उपहास करेंगी। अबूजुहल की बहिन आनवा की स्त्री और शिवा की बेटी इत्यादि अनेक अरब की स्त्री कैसी असभ्यचारिणी और मन्दप्रकृति हैं यह आप भली भांति जानते हैं और हमालन की बेटी आप के चलने की राह में कांटा बिछा आती थी तथा अबूसफिनान की स्त्री को आप की निन्दा के सिवा और कोई काम ही नहीं है, यह भी आप को अविदित नहीं। सब उस सभा में उपस्थित रहेंगी और रूम और मिस्र के बहुमूल्य अलङ्कार धारण करके मणिपीठ के ऊँचे आसन पर बड़े गर्व्व से बैठेंगी। उस सभा में आप की कन्या को एक मैली फटी पुरानी चद्दर ओढ़ कर जाना होगा। हम को देख कर वे सब कहेंगी कि इस कन्या को क्या हुआ। इस की माता की अतुल सम्पत्ति क्या हो गई जो इस वेश से यहां आई है। पिता! इन लोगों को धर्म्मज्ञान और अन्तरचक्षु नहीं है, केवल जगत् के वाह्याडम्बर में भूले हैं, इस से हम को देख कर वह आप की निन्दा करेंगी और केवल हमारे कारण आप का अपमान होगा।

फातिमा पिता से यह कहती थीं और उन के नेत्रों से जल बहता था। महात्मा महम्मद ने उत्तर दिया—बेटी! तुम किञ्चिन्मात्र भी सोच मत करो। हमारे पास उत्तम वस्त्राभरण और धन तो निस्सन्देह कुछ भी नहीं है, परन्तु निश्चय रक्खो कि जो आज लाल पीले वस्त्र पहन कर अहंकार के उद्यान में फूली फूली दिखाई पड़ती हैं वे अपने दुष्कर्मों से कल तृण से भी तुच्छ हो कर नर्क की अग्नि में जलेंगी। हम लोगों का वस्त्र और शोभा वैराग्य है। महात्मा महम्मद और भी कुछ कहा चाहते थे कि फातिमा ने कहा, पिता! क्षमा कीजिये अब विलम्ब करने का कुछ प्रयोजन नहीं, आप की आज्ञा हम को सर्व्वथा शिरोधार्य्य है।

यह कह कर बीबी फातिमा घर से निकलीं* और उस विवाह सभा की ओर अकेली चलीं, परन्तु लिखा है कि ईश्वर के अनुग्रह से उन के अङ्ग पर दिव्य

अमूल्य वस्त्राभरण सज्जित हो गए। कुरेश वंश में और अरब की स्त्री लोग अभिमान से फातिमा की मार्ग की प्रतीक्षा कर रही थीं और कहती थीं कि आज हम लोगों की सभा में महात्मा महम्मद की बेटी फटा कपड़ा पहन कर आवेगी और हम लोगों के उत्तम वस्त्राभूषण देख के आज वह भली भांति लज्जित होगी इतने में विद्युल्लता की भांति साम्हने से फातिमा की शोभा चमकी और विवाहमंडप में इन के आते ही एक प्रकाश हो गया। फातिमा ने नम्र भाव से सब स्त्रियों को यथायोग्य अभिवादन किया, परन्तु वे सब स्त्रियां ऐसी हतबुद्धि और धैर्यरहित हो गईं कि वे सलाम का उत्तर न दे सकीं। फातिमा का मुखचंद्र देख कर अभिमानिनी स्त्रियों के हृदय-कमल मुरझा गये और आंखों में चकचौंधी छा गई। सब की सब घबड़ा कर उठ खड़ी हुईं और आपस में कहने लगीं कि यह किस महाराज की कन्या और किस राजकुमार की स्त्री है। एक ने कहा यह देवकन्या है। दूसरी बोली, नहीं, कोई तारा टूट कर गिरा है। कोई बोली, सूर्य्य की ज्योति है। किसी ने कहा, नहीं नहीं, आकाश से चन्द्रमा उतरा है परन्तु जिन के चित्त में धर्म्मवासना थी उन्हों ने कहा कि यह ईश्वरीय ज्योति है, यह अनेक अनुमान तो लोगों ने किये, परन्तु यह सन्देह सब को रहा कि कोई होय पर यह यहां क्यों आई है? अन्त में जब लोगों ने पहचाना कि यह बीबी फातिमा है तो सब को अत्यन्त लज्जा और आश्चर्य्य हुआ। सब से ऊँचे आसन पर उन को लोगों ने बैठाया और आप सब सिर झुका कर उन के आस पास बैठ गईं। कई उन में से हाथ जोड़ कर बोलीं, हे महापुरुष महम्मद की कन्या! हम लोगों ने आप को बड़ा कष्ट दिया, हम लोगों के कारण जो आपके नित्य कर्म्म में व्यवधान पड़ा हो उसे क्षमा कीजिए और हमारे योग्य जो कार्य्य हो आज्ञा कीजिये। हम लोगों को जैसा आदेश हो वैसा भोजन और शरबत आप के वास्ते सिद्ध करें। बीबी फातिमा ने विनय पूर्वक उत्तर दिया—भोजन और शरबत से हमारा सन्तोष नहीं, हमारा और हमारे पितृदेव का विषय में विराग सहज स्वभाव है। अनशन व्रत हम लोगों को सुस्वाद भोजन के बदले अत्यन्त प्रिय है। हमारा और हमारे पिता का सन्तोष ईश्वर की प्रसन्नता है। तुम लोग देवी, देवता, भूत, प्रेत इत्यादि की पूजा और पाखण्ड छोड़ कर सत्य धर्म के प्रकाश में आओ, एक

बिना सिंगार किए ही चलीं तो मार्ग में कुबेर ने उन को उत्तम २ वस्त्राभरण पहिना दिया। वैसे ही अनुमान होता है कि अपने आचार्य महात्मा मुहम्मद की बेटी को वस्त्रहीन देख कर उन के किसी धनिक सेवक ने अमूल्य वस्त्राभरण से उन को सजा दिया।

परमेश्वर की भक्ति करो, परस्पर वैर का त्याग और आपस में प्रीति करो। अनेक स्त्रियां फातिमा का यह अतुल प्रभाव देख कर उसी समय मुसलमान हुईं और जिन्हों ने उन का धर्म्म नहीं ग्रहन किया उन्हों ने भी उन का बड़ा आदर किया।

किसी विशेष रोग के कारण इन का मृत्यु नहीं हुई। पितृ-वियोग का शोक ही इन की मृत्यु का मुख्य कारण है। कहते हैं कि महात्मा महम्मद की मृत्यु के पीछे फातिमा शोक से अत्यन्त विह्वल रहीं। किसी भांति भी इन को बोध नहीं होता था, रात दिन रोती थीं और बारम्बार मूर्च्छित हो जाती थीं। एक दिन उन्हों ने कुछ स्वप्न देखा और मृत्यु के हेतु प्रस्तुत हो कर अपने प्रिय स्वामी आदरणीय अली को बुला कर कहा "कल पितृदेव को स्वप्न में देखा है जैसे वह चारों ओर नेत्र फैला कर किसी के मार्ग की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हम ने कहा, पिता ! तुमारे विच्छेद से हमारा हृदय विदग्ध और शरीर अत्यन्त जीर्ण हो रहा है। उन्हों ने उत्तर दिया, पुत्री ! हम भी तो मार्ग ही देख रहे हैं। फिर हम ने ऊँचे स्वर से कहा, पिता ! आप किस का मार्ग देख रहे हैं ? तब उन्हों ने कहा कि तुम्हारा मार्ग देख रहे हैं। पुत्री फातिमा ! हमारा तुमारा वियोग बहुत दिन रहा, इस से तुमारे बिना अब हमारे प्राण व्याकुल हैं। तुमारे शरीर त्याग का समय उपस्थित है; अब तुम अपनी आत्मा को शरीर सम्पर्क शून्य करो। इस निकृष्ट संकीर्ण जगत् का परित्याग कर के उस प्रसारित उन्नत देदीप्यमान आनन्दमय जगत् में गृहस्थापन करो। संसाररूपी क्लेश कारागार से छूट कर नित्य सुखमय परलोक उद्यान की ओर यात्रा करो। फ़ातिमा ! जब तक तुम न आओगी तब तक हम नहीं जायंगे। हम ने कहा, पिता ! हम भी तुम्हारी दर्शनार्थी हैं, तुम्हारी सहवास संपत्ति लाभ करें यही हमारी भी आकांक्षा है। इस पर उन्हों ने कहा, तो फिर बिलम्ब मत करो, कल ही हमारे पास आओ। इस के पीछे हमारी नींद खुली, अब उस उन्नत लोक में जाने के लिये हमारा हृदय व्याकुल है। हम को निश्चय है कि आज सांझ या पहर रात तक हम इस लोक का त्याग करेंगे। हमारे पीछे तुम अत्यन्त शोकाकुल रहोगे, इस से जिस में हमारे सन्तान भूखे न रहें हम आज रोटी कर के रख देते हैं और पुत्र कन्या का वस्त्र भी धो देते हैं। हमारे पीछे यह कौन करेगा इस हेतु हम आप ही इन कामों से छुट्टी कर रखते हैं। हमारे अभाव में हमारे पुत्रों को कौन प्यार करेगा ? हमारी इच्छा थी कि आज इन का सिर सवांरें परन्तु हम को सन्देह है कि कल कोई उन के मुंह की धूल भी न झारेगा"।

अली यह सुनकर अत्यन्त शोकाकुल हो कर रोने लगे और कहा कि फातिमा ! तुम्हारे पिता के वियोग से हृदय में जो क्षत है वह अब तक पूरा नहीं हुआ और उन महात्मा के चरण दर्शन बिना जो शोक है वह किसी प्रकार से नहीं जाता। इस पर तुम्हारा वियोग भी उपस्थित हुआ। यह आघात पर आघात और विपत्ति

पर विपत्ति पड़ी। फ़ातिमा ने कहा, अली! उस विपत्ति में धैर्य किया है और इस में भी करो, इस क्षण में एक मुहूर्त्त भर भी हम से अलग मत रहो, हमारे श्वासवायु अवसान का समय निकट है, नित्यधाम में हम तुम फिर मिलेंगे यह प्रतिज्ञा रही।

बीबी फ़ातिमा यह कहती थीं और हसन हुसेन के मुख की ओर देख कर दीर्घ श्वास के साथ अश्रुवर्षन करती जाती थीं। माता की यह बात सुन कर हसन हुसैन भी रोने लगे। फ़ातिमा ने कहा, प्यारे बच्चो! थोड़ी देर के वास्ते तुम लोग मातामह के समाधि-उद्यान में जाओ और हमारे हेतु प्रार्थना करो। वे लोग माता के आज्ञानुसार चले गये। फ़ातिमा तब बिछौने पर लेट गई और अली से कहा, प्रिय! तुम पास बैठो। विदा का समय उपस्थित है। अली बैठे और शोक से रोने लगे। तब फ़ातिमा ने आसमा नाम की दासी को बुला कर कहा कि अन्त प्रस्तुत रक्खो, हमारे प्यारे हसन हुसैन आ कर भोजन करेंगे। जब वे घर आवैं तब उन लोगों को अमुक स्थान पर बैठाना और भोजन कराना। उन को हमारे निकट मत आने देना, क्योंकि हमारी अवस्था देख कर वे घबड़ायेंगे। आसमा ने वैसा ही किया। इधर फ़ातिमा ने अली से कहा—हमारा सिर तुम अपनी गोद में ले बैठो, अब जीवन में केवल कुछ क्षण बाकी है। अली ने कहा, फ़ातिमा! तुम्हारी ऐसी बातें हम नहीं सुन सकते। फ़ातिमा ने उत्तर दिया, अली! पथ खुला है, हम प्रस्थान करहींगे और मन अत्यन्त शोकाकुल है और तुम से कुछ कहना भी अवश्य है। हमारी बात सुनो और हमारे वियोग का शर्बत वाध्य हो कर पान करो। अली फ़ातिमा का सिर गोद में ले कर बैठे। फ़ातिमा ने नेत्र खोल कर अली के मुख की ओर देखा; उस समय अली के नेत्रों से आंसू के बूंद फ़ातिमा के मुख पर टपकते थे। अली को रोते देख कर फ़ातिमा ने कहा, नाथ! यह रोने का समय नहीं है, अवकाश बहुत थोड़ा है। अन्तिम कथा सुन लो। अली ने कहा, कहो क्या कहती हो? फ़ातिमा ने कहा, हमें चार बात कहनी है, पहली यह कि हम तुम्हारे संग बहुत दिन तक रहे। यदि हम से कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा करो। अली रोने लगे, और बोले—कभी तुम ने आज तक कोई ऐसी बात ही नहीं किया जो हमारे प्रतिकूल हो। प्यारी! तुम तो सर्व्वदा हमारी मनोरञ्जनी रहीं, भूल कर भी तुम ने हम को कोई कष्ट नहीं दिया, तुम ने सब आपत्ति अपने ऊपर सहन किया, परन्तु हम को दुख न दिया, तुम उपकारिणी थीं, अपकारिणी नहीं। तुम को हम ने कोमल पुष्पमाला की भांति अपने हृदय पर धारण किया, कण्टक की भांति नहीं। बोलो, और बोलो और कौन बात है? फातिमा ने कहा, दूसरे यह कि हमारे प्यारे हसन हुसैन की रक्षा करना। जिस लाड़ प्यार और राव चाव से हम ने उन को पाला है उस में कुछ न्यूनता न हो; उन की सब अभिलाषा पूरी करना। तीसरे यह कि हमारे शव को रात्रि को भूमि-शायी करना, क्योंकि जीवन दशा में जैसे पर पुरुष की दृष्टि हमारे शरीर पर नहीं

पड़ी है वैसा ही पीछे भी हो। चौथे, हमारी समाधि पर कभी २ आ जाना। इतने में हसन हुसैन भी आ गए और माता की यह अवस्था देख कर बहुत रोने लगे। फातिमा ने किसी प्रकार समझा कर फिर बाहर भेजा और दासी को बुला कर बीबी फ़ातिमा* ने स्नान किया और एक धौत वस्त्र परिधान कर के एक निर्जन गृह में दक्षिण पार्श्व से शयन कर के ईश्वर का स्मरण करने लगीं। इसी अवस्था में उन्हों ने परलोक गमन किया।

* इफताम अरबी में बच्चे को दूध से छुड़ाने को कहते हैं। इन का फ़ातिमा नाम इस हेतु पड़ा था कि छोटेपन ही में इन की माता की मृत्यु हुई थी।

लार्ड म्यासाहब का जीवनचरित्र ।

हा ! वह कैसे दुःख की बात है कि आज दिन हम उस के मरण का वृत्तान्त लिखते हैं जिस की भुजा की छांह में सब प्रजा सुख से काल क्षेप करती थी और जो हम लोगों का पूरा हितकारी था । ऐसा कौन है जो इस को पढ़कर न कम्पित होगा और परम शोक से किस की आंखों से आंसू न बहैंगे ? मनुष्य की कोई इच्छा पूरी नहीं होने पाती और ईश्वर और ही कुछ कर देता है । कहां युवराज के निरोग होने के आनन्द में हम लोग मग्न थे और कैसे कैसे शुभ मनोरथ करते थे, कहां यह कैसा विज्जुपात सा हाहाकार सुनने में आया । निस्सन्देह भरतखंड के वृत्तान्त में सर्व्वदा इस विषय को लोग बड़े आश्चर्य्य और शोक से पढ़ैंगे और निश्चय भूमि ने एक ऐसा अपूर्व स्वामी खो दिया है जैसा फिर आना कठिन है। तारीख १२ को यह भयानक समाचार कलकत्ते में आया और उसी समय सारा नगर शोकाक्रान्त हो गया ।

गुरुवार ८ वीं तारीख को श्रीमान् लार्ड म्यौ साहिब पोर्ट ब्लेयर उपद्वीप में ग्लासगो नामक जहाज़ पर आए और ढाका और नेमिसिस नाम के दो जहाज़ और भी संग आए और साढ़े नौ बजे उन टापुओं में पहुंचे और ग्यारह-बारह के भीतर श्रीमान् ने वर्मा के चीफ कमिश्नर इत्यादि लोगों के साथ कैदियों की बारक गोराबारिक और दूसरे प्रसिद्ध स्थानों को देखा । उस समय श्रीमान् की शरीर रक्षा के हेतु बहुत से सिपाही, कांस्टेब्ल और गार्ड बड़ी सावधानी से नियत किए गए और थोड़ी देर जेनरल स्टुअर्ट साहिब की कोठी पर ठहर कर सब लोग जहाज़ों को फिर गए । अढ़ाई बजे सब लोग फिर उतरे और इन टापुओं के लोगों का स्वभाव जानकर सब लोग बड़ी सावधानी से चले और बड़े यत्न से सब लोग श्रीमान् की रक्षा करते रहे । उस समय श्रीमती लेडी म्यौ और सब स्त्रियां ग्लासगो जहाज़ पर ही थीं । ये लोग अबर दीन और ऐडो होते हुए बाइपर टापू में पहुंचे । यह स्थान रास के टापू से ढाई कोस है और यहां १३०० कैदी रहते हैं, जो अपने बुरे कर्म्मों से काले पानी भेजे गए हैं । भय का स्थान समझ कर कांस्टेबल् और सरकारी पलटन रक्षा के हेतु संग हुई और जेलखाना इत्यादि स्थानों को देख कर चथाम टापू में गए और वहां कोयले की खान देख कर फिर जहाज़ पर फिर आने का विचार करने लगे । अब ५ बजने का समय आया और सब लोग जहाज़ पर जाने को घबड़ा रहे थे कि श्रीमान् ने कहा कि हम लोग हिरात की पहाड़ी पर चढ़ैं और वहां से सूर्यास्त की शोभा देखैं । यह पहाड़ी इसी टापू में है और इसके ऊपर कोई बस्ती नहीं है, परन्तु नीचे होप टौन नामक एक छोटी

बस्ती है, जिस में कुछ कैदी काम करने वाले रहते हैं। यद्यपि सबेरे ऐसा लोगों ने सोचा था कि समय मिलैगा तो इस पहाड़ी पर जायंगे, पर ऐसा निश्चय नहीं था और न वहां कुछ तयारी थी। ऐलिस साहब इस पहाड़ी पर नहीं चढ़े और यहां पलटन के न होने से चथाम से पलटन बुलाई गई कि वह श्रीमान् की रक्षा करै और वहां से आठ कांस्टेबल् रक्षा के हेतु संग हुए। श्रीमान् एक छोटे टट्टू पर चलते थे और सब पैदल थे। ऊपर बहुत से ताड़ और सुपारी के पेड़ों से स्थान घना हो रहा था और चोटी पर पहुंच कर श्रीमान् पाव घंटे तक सूर्य्यास्त की शोभा देखते रहे। यद्यपि सूर्य्यास्त हो चुका था, पर ऊपर प्रकाश इतना था कि नीचे की घाटी दिखाती थी और अंधकार होता जान कर सब लोग नीचे उतरने लगे। मार्ग में केवल दो छुटे हुए कैदी मिले और उन लोगों ने कुछ बिनती करना चाहा। पर जेनरल स्टुअर्ट ने उन को टोका और कहा कि जब श्रीमान् स्वस्थ रहैं तब आओ। इन के अतिरिक्त और कोई मार्ग में नहीं मिला। कप्तान लकउड और कौंट बाल्गस्टन आगे बढ़ गए थे और एक चट्टान पर बैठे उन लोगों का मार्ग देखते थे। इस समय अंधेरा हो गया था, परन्तु कुछ मार्ग दिखाई देता था और उन लोगों ने केवल कुछ मनुष्यों को पानी ले जाते देखा और कोई नहीं मिला। श्रीमान् सवा सात बजे नीचे पहुंचे और उस समय सम्पूर्ण रीति से अंधेरा हो गया था और एक अफसर ने मशाल लाने की आज्ञा दिया इस से कई मनुष्य भी संग के उन को बुला ने के हेतु दौड़ गए। जब कैदियों के झोपड़े के आगे बढ़े, जेनरल स्टुअर्ट एक ओवर्सियर को आज्ञा देने के हेतु पीछे ठहर गए और श्रीमान् आगे बढ़ गए। उस समय श्रीमान् के आगे दो मशाल और कुछ सिपाही थे और उन के प्राइवेट सेक्रेटरी बर्न और जमादार भी कुछ दूर हो गए थे और कलनल जरवस और मि० हाकिन और मि० एलिन भी पीछे छूट गए थे कि इतने में एक मनुष्य उन के बीच से उछला और श्रीमान् को दो छुरी मारी, जिस में से पहिली दाहिने कन्धे पर और दूसरी बांएं पर लगी। यह नहीं जाना गया कि वह किस मार्ग से वहां आया, क्योंकि चारों ओर लोग घरे थे। पर ऐसा अनुमान होता है कि चट्टानों के नीचे छिप रहा था। श्रीमान् चोट लगते ही उछले और पास ही पानी के गड़हे में गिर पड़े। यद्यपि लोगों ने उन को उठाकर खड़ा किया, पर ठहर न सके और तुरत फिर गिर पड़े। उन के अन्त के शब्द यह हैं 'They've hit me Burne' "बर्न उन लोगों ने मुझे मारा" और फिर जो दो एक शब्द कहे वह समझ न पड़े और उन के शरीर को लोग उठाकर जहाज़ पर लाने लगे, परन्तु श्रीमान् तो पूर्व ही शरीर त्याग कर चुके थे और बीरों की उत्तम गति को पहुंच चुके थे। उस दुष्ट को अर्जुन सिंह नामक क्षत्रिय ने बड़े साहस ने पकड़ा। कहते हैं कि उस ने पहिले तो उस हत्यारे

के मुख पर अपना दुपट्टा डाल दिया और फिर आप उस पर एक साहिब की सहायता से चढ़ बैठा और फिर तो सब लोगों ने उस को हाथों हाथ पकड़ लिया और यदि उस की विशेष रक्षा न की जाती तो लोग क्रोधावेश में उस को मार डालते। कहते हैं कि जिस समय उन का शरीर जहाज़ पर लाए हैं उस समय अनवर्त्त रुधिर बहता था। जब श्रीमान् का शरीर ग्लासगो पर लाए उस समय लेडी म्यौ के चित्त की दशा सोचनी चाहिये! हा! कहां तो वह यह प्रतीक्षा करती थीं कि प्यारा पति फिर के आता है, अब उस के साथ भोजन करेंगे और यात्रा का वृत्तान्त पूछेंगे, कहां उस पति का मृतक शरीर समक्ष आया। हाय हाय! कैसा दारुण समय हुआ है!! परन्तु वाह रे इन का धैर्य्य कि उसी समय शोक को चित्त में छिपा कर सब आज्ञा उसी भांति किया जैसी श्रीमान् करते थे। जब यह समाचार कलकत्ते में १२ वीं तारीख को पहुंचा उसी समय आज्ञा हुई दुर्गध्वज अधोमुख हो और ३६ मिनट पर सायंकाल तोप छुटें। कानून के अनुसार लार्ड नेपियर गवर्नर जेनरल हुए और उसी टापू से एक जहाज़ उन के लाने को भेजा गया और श्रीमान के भाई भी फेर बुरा लिए गए, परन्तु लार्ड नेपियर के आने तक आनरैब्ल स्ट्रेची स्थापन गवर्नर जेनरल हुए। कहते हैं कि लार्ड नेपियर १६ तारीख को चले। जिस दिन ये वहां से चले थे उस दिन सब लोग शोक वस्त्र पहरे हुए इन को बिदा करने को एकत्र हुए थे। श्रीमान् का शरीर कलकत्ते में आया और वहां से आयलैंण्ड गया। लेडी म्यौ और श्रीमान् के दोनों भाई और पुत्र तो बम्बई जायंगे, वहां से जहाज पर सवार होंगे, पर श्रीमान् का शरीर सीधा कलकत्ते से ग्लासगो पर जायगा।

नीचे लिखा हुआ आशय का पत्र कलकत्ते के छापे वालों को सर्कार की ओर से मिला है। आठवीं तारीख बृहस्पति के दिन श्रीमान् गवंनर जेनरल बहादुर पोर्टब्लोर नाम स्थान पर पहुंचे और रास नाम स्थान को भली भांति निरीक्षण कर वाइपर नामे टापू में पहुंचे, जहां महा दुष्ट गण रहते हैं। स्टीवर्ट साहेब सुपरिन्टेन्डेन्ट ने श्रीमान् के शरीर रक्षा के हेतु बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था कि कोई मनुष्य निकट न आने पावे। पुलीस के व्यतिरिक्त एक विभाग पदचारियों का साथ था, परन्तु यह श्रीमान् को क्लेशकर जान पड़ता था और उन्हों ने कई बार निषेध किया। यहां से लोग चाथम में गए, जहां आरे चलते हैं और लकड़ी काटी जाती है। परन्तु यह सब कर्म पांच बजे के भीतर ही हो गया, तो श्रीमान् ने कहा कि होपटाउन प्रदेश में चल कर हरियट पर्वत पर आरोहण कर के प्रदोष काल की शोभा देखना चाहिए। यह स्थिर कर सब लोग उसी ओर चले और साढ़े पांच बजे वहां पहुंचे। थोड़े से पुलीस के सिपाही साथ में थे, क्योंकि वहां यह आशा न थी कि कोई दुष्कर्मा मिले—वहां सब रोग ग्रसित और श्रमित लोग

रहते हैं। श्रीमान् बहुत दूर पर्यन्त एक टट्टू पर आरूढ़ थे और उन के सहचारी लोग भूमि पर चलते थे। हारियट पर्वत पर पहुंच कर लोगों ने किञ्चित्‌काल विश्राम किया और फिर तीर की ओर चले। मार्ग में दो एक श्रमित व्यक्ति मिले और श्रीमान् से कुछ कहने की इच्छा प्रगट की, परन्तु स्टीवर्ट साहेब ने उन से कहा कि तुम लोग लिख कर निवेदन करो। दो साहेब आगे थे और और लोग साथ में थे। उन लोगों के तीर पर पहुंचने के पूर्व ही अन्धकार छा गया और श्रीमान् के पहुंचते २ "मशाल" जल गए। तीर पर पहुंच कर स्टीवर्ट साहेब पीछे हट कर किसी को कुछ आज्ञा देने लगे। शेष २० गज़ आगे नहीं बढ़े थे कि एक दुष्कर्मी हाथमें छुरी लिए द्रुतवेग से मंडल में आया और श्रीमान् को दो छुरी मारी, एक तो वाम स्कन्ध पर और दूसरी दक्षिण स्कन्ध के पृष्ठ के नीचे। अर्जुन नाम सिपाही और हाकिन्स साहेब ने उसे पकड़ा और बड़ा कोलाहल मचा और "मशाल" बुझ गए। उसी समय श्रीमान् भी या तो करारे पर गिर पड़े वा कूद पड़े। जब फिर से प्रकाश हुआ तो लोगों ने देखा कि गवर्नर जेनरल बहादुर पानी में खड़े थे और स्कन्ध देश से रुधिर का प्रवाह बड़े वेग से चल रहा था। वहां से लोग उन्हें एक गाड़ी पर रख कर ले गए और घाव बांधा गया, परन्तु वे तो हो चुके थे। जब उन की लाश ग्लासगो नाम नौका पर पहुंची तो डाक्टरों ने कहा कि इन दोनों घाओं में एक भी प्राण लेने के समर्थ था। परन्तु उस समय लेडी म्यौ का साहस प्रशंसनीय था। उन को अपने "राज" नाश की अपेक्षा भारतखण्ड के राज के नाश और प्रजा के दुःख का बड़ा शोच हुआ। स्टुअर्ट साहेब ने इस विषय का गवर्न्मेंन्ट को एक रिपोर्ट किया है और एक सर्टीफिकेट डाक्टरों की ओर से भी गवर्न्मेंन्ट को भेजा गया है।

हा! शनिश्चर (१७ वीं) को कलकत्ते की कुछ और ही दशा थी। सब लोग अपना २ उचित कर्म परित्याग कर के विषन्नवदन प्रिन्सेप घाट की ओर दौड़े जाते थे। बालक अवस्था को विस्मृत कर और खेल कुतूहल छोड़ उस मानव प्रवाह में बहे जाते थे, वृद्ध लोग भी अपने चिरासन को छोड़ लकुट हाथ में, शरीर कांपते हुए उन के अनुसरण चले।—स्त्री बेचारी कुलमर्याद सीमा परिवद्ध उद्विग्न चित्त हो कर खिड़कियों पर बैठी युगल नेत्र प्रसारनपूर्वक अपने हितैषी, परम विद्याशाली, और परमगुणवान उपराज के मृतक शरीर के आगमन की मार्ग प्रतीक्षा करती थी। मार्ग में गाड़ियों की श्रेणी बंध गई थी, नदी में सम्पूर्ण नौकाओं के पताका युक्त मस्तूल झुक रहे थे, मानों सब सिर पटक २ रो रहे हैं। दुर्ग से सेना धीरे २ आई और गवर्नमेन्ट हाउस से उक्त घाट पर्यन्त श्रेणी बद्ध हो कर खड़ी हुई और प्रत्येक वर्ग के पुरुष समुचित स्थान पर खड़े थे। एक सन्नाटा बंध गया था कि पौने पांच बजे घाट पर से एक शतघ्नी (तोप)

का शब्द हुआ और उस का प्रतिउत्तर दुर्ग और कानी नाम नौका पर से हुआ। बाजा वालों ने बड़ी सावधानी से अपने २ वाद्य यन्त्रों को उठाया और कलकत्ते के वालन्टीयर्स लोग आगे बढ़े। एक तोप की गाड़ी पर इङ्गलैण्ड के राजकीय पताका से आच्छादित श्रीमान् गवर्नर जेनरल का मृतक शरीर शवयात्रा के आगे हुआ। उस समय लोगों के चित्त पर कैसा शोच छा गया था उस का वर्णन नहीं हो सकता। ऐसा कौन पाहनचित होगा जिस का हृदय उस श्रीमाने के चञ्चल अश्व को देख कर उस समय विदीर्ण न हुआ होगा। उस के नेत्र से भी अश्रुधारा प्रवाहित होती थी। हा! अब उस घोड़े का चढ़ने वाला इस संसार में कोई नहीं है। उस से थी शोकजनक श्रीमान के प्रिय पुत्र की दशा थी जो कि विषन्नवदन, अधोमुख, सजलनयन, बाल खोले अपने दोनों चचा के साथ पिता के मृतक शरीर के साथ चलते थे। हा! ऐसी वयस में उन्हें ऐसी विपद पड़ी। परमेश्वर बड़ा विषमदर्शी दीख पड़ता है। वैसे ही मेजर बर्न भी देखे नहीं जाते थे। शोक से आंखें लाल और डबडबाई हुई थीं और अनाथ की भांति अपने स्वामी वरन उस मित्र के शोक में आतुर थे, जिन्हें उन्हें अन्त में पुकारा और मरण समय उन्हीं का नाम लिया। हा! यह यात्रा निम्नलिखित रीति पर गवर्न्मेन्ट हाउस में पहुंची। क्वार्टर मास्टर जेनरल के विभाग का एक अश्वारोही अफसर, फर्स्ट बेङ्गाल कवलरी (अश्वरोही सेना) का एक भाग। कलकत्ते के वालन्टीयर्स की रफल पलटन अस्त्र उलटा लिए हुए और श्रीमहाराणी की १४ वीं रेजिमेंट का शोकसूचक बाजा बजता हुआ।

श्रीमान् का बाजा
बाडी गार्ड (शरीररक्षक) पैदल
दुर्ग और कथीड्रल गिरजा के पादरी
श्रीमान् के चापलेन
डाक्टर जे. फेअरर सी. एस. आई. करनेल डी. डिलेन. कमांडिंग
बाडी गार्ड
क. एफ.. एच. ग्रेगरी
एडीकांग
डाक्. ओ. बर्नेट
के. एच. वी. लाकउड
एडीकांग के. टी. एम. जोन्स
आर. एन. एल. टी. डीन
के. आर. एच. आंट एडिकांग

श्रीमान् का
मृतक शरीर
एक तोप की गाड़ी पर

सुबादार मेजर और सरदार बहादुर शिवबक्स अवस्ती
एडिकांग

के. सी. एल. सी. डी. रोवक

एडिकांग

ले. सी. हाकिन्स आर. एन.

मेजर ओ. टी. वर्न प्राईवेट सेक्रेटरी।

मुख्य शोक प्रकाशक।

आनरेब्ल आर. बोर्क, आनरएब्ल टी. बोर्क, मेजर बोर्क।

श्रीमान् का विश्वासपात्र क्लर्क वा लेखक।

श्रीमान् के सेवक।

श्रीमान् के पलटन के अफसर।

श्रीमान् के एतद्देशीय सेवक।

माझी नौकास्थ लोग और ग्लासगो और डाफनी नाम नौका का तोपखाना।

उक्त नौकाओं के अफसर।

अस्मिन् कालिक गवर्नर जेनरल।

बंगाल के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर और श्रीमान् कमांडर इन चीफ़।

बंगाल के चीफ जस्टिस, कलकत्ते के लार्ड विशप, आर्क विशप और पश्चिम बंगाल के विकार अपस्टालिक।

श्रीमान् गवर्नर जेनरल के सभा के सभासद।

कलकत्ते के पुइन जज्ज।

सभा के अधिक सभासद।

एतद्देशीय राजे।

कनसलस जेनरल। बरमा के चीफ कमिश्नर।

अन्य देशों के कन्सल एजेन्ट।

गवर्नमेन्ट के सेक्रेटरी।

इन के पीछे और बहुत से लोग पलटन के अफसर इत्यादि और लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के साथ के लोग थे।

यद्यपि अनुचित तो है, परन्तु ऐसी शोभा कलकत्ते में कभी देखने में नहीं आई थी और ईश्वर करे न कभी देखने में आवे।

श्रीमान् का शरीर सर्वसाधारण लोगों के देखने के लिये तीन दिन पर्यन्त मारब्लहाल रक्खा गया है और सब लोग श्रीमान् का अन्त का दरबार करने वहां जायंगे।

हे भारतवर्ष की प्रजा! अपने परम प्रेमरूपी अश्रुजल से अपने उस उपराज्याधीश का तर्प्पण करो जो आज तक तुम्हारा स्वामी था और जिस की बांह की छांह में तुम लोग निर्भय निवास करते थे और जो अनेक कोटि प्रजा लक्षावधि सैन्य के होते भी अनाथ की भांति एक क्षुद्र के हाथ से मारा गया और एक

वेर सब लोग निस्सन्देह शोक समुद्र में मग्न हो कर उस अनाथ श्री लेडी म्यौ और उन के छोटे बालकों के दुःख के साथी बनो। हा! लेखनी दुःख से आगे लिखने को असमर्थ हो रही है नहीं तो विशेष समाचार लिखती। निश्चय है कि पाठकजन इस असह्य दुःख रूपी वृत्त को पढ़ कर विशेष दुःखी होने की इच्छा भी न रक्खेंगे।

श्रीमान् स्वर्गवासी के मरण पर लोगों ने क्या किया।

जिस समय यह शोक रूपी वृत्त श्रीमती महाराणी को पहुँचा श्रीमती ने लेडी म्यौ और वर्क साहेब को तार भेजा कि हम तुम लोगों के उस अपार दुःख से अत्यन्त दुःखी हुए और हम तुम लोगों के उस दुःख के साथी हैं जो श्रीमान् लार्ड म्यौ के मरने से तुम पर पड़ा है। सेक्रेटरी आफ स्टेट ने भी इसी भांति स्थानापन्न गवर्नरजेनरल को तार दिया कि "हम इस समाचार से अत्यन्त दुःखी हुए। निस्सन्देह भरतखण्ड ने एक अपना बड़ा योग्य स्वामी नाश किया और यह ऐसा अकथनीय वृत्तान्त है कि इस समय हम विशेष कुछ नहीं कह सकते"। महाराज सांम ने भी स्थानापन्न गवर्नरजेनरल को तार दिया कि हम इस दुःख में लेडी म्यौ और भारत की प्रजा के साथ हैं, जो उन लोगों पर अकस्मात् एक योग्य स्वामी के नाश होने से आ पड़ा है। महाराज जयपुर को जब यह समाचार गया एक सङ्ग शोकाक्रान्त हो गए और राज के किले का झंडा आधा गिरवा दिया और श्री पंचमी का बड़ा दर्बार बन्द कर दिया और बीस बीस मिनिट पर किले से शोकसूचक तोप छूटी और नगर में एक दिन तक सब काम बन्द रहा। सुना है कि महाराज कलकत्ते जायंगे। पटियाला के महाराज ने एक शोकसूचक इश्तिहार प्रकाशित किया और अपने दर्बारियों को आज्ञा दिया कि शोक का वस्त्र पहिरें। महाराज कपूरथला ने भी ऐसा ही किया और अवध अंजमन के सेक्रेटरी को एक पत्र भेजा कि उन के स्मरणार्थ उद्योग करै। कलकत्ते की दशा तो लिखने के योग्य ही नहीं है, न ऐसा कधी पूर्व्व में हुआ था और न ईश्वर करै होय। वसन्त पञ्चमी का नाच गान सब बन्द हो गया और नगर में दूकानें सब कई दिन तक बन्द रहीं, बरात नहीं निकली, कई लग्न टाल दिये गए। वहां के जस्टिस आफ दि पीस लोग मिल कर एक शोक पत्र श्री लेडी म्यौ को देने वाले हैं और और भी अनेक शोकसूचक कृत्य हो रहे हैं। बम्बई में भी सब दूकानें बन्द हो गईं और सब कारखाने बन्द हो गए। बनारस में भी इस समाचार के आने से कई स्कूल बन्द हो गए और कई शोक सूचक कमेटियां हुईं। बम्बई में फरासीस, इटली और प्रशिया इत्यादि देशों के राजदूतों ने अपनी कोठियों के राज के झंडे आधे आधे गिरा दिये और सब मिल कर शोक का वस्त्र पहिन कर वहां के गवर्नर के पास गए थे और वहां सब

लोगों ने शोक भरी वार्त्ता किया और उस के उत्तर में लाट साहिब ने भी एक सुरस भाषण किया। हा! ईश्वर यह दिन न लावे!!

उस चाण्डाल दुष्ट हत्यारे शेरअली के विषय में फ्रेंड आफ इंडिया के सम्पादक से हम पूर्ण सम्मति करते हैं। निस्सन्देह उस दुष्ट को केवल प्राण दण्ड देना तो उस की मुंह मांगी बात देनी है, क्योंकि मरने से डरता तो ऐसा कर्म्म न करता। सम्पादक महाशय लिखते हैं कि ये दुष्ट प्राण से प्रतिष्ठा और धर्म्म को विशेष मानते हैं इस से ऐसा करना चाहिये जिस में दुष्टों का मुख भंग हो और धर्म्म और प्रतिष्ठा दोनों को हानि पहुँचै वह लिखते हैं (और बहुत ठीक लिखते हैं, अवश्य ऐसा ही बरन् इस से बढ़ कर होना चाहिये) कि उस के प्राण अभी न लिये जांय और उसे खाने को वह वस्तु मिलैं जो "हराम" है और वस्त्र के स्थान पर उस को सूअर के चर्म्म की टोपी और कुरता पहिनाया जाय। यावच्छक्ति उस को दुःख और अनादर दिया जाय। ऐसे नीच के विषय में जितनी निर्द्दयता की जाय सब थोड़ी है और ऐसे समय हम लोगों को क़ानून छप्पर पर रखना चाहिए और उस को भरपूर दुःख देना चाहिये।

श्रीमान् लार्ड म्यो स्वर्गवासी के मरने का शोक जैसा विद्वानों की मंडली में हुआ वैसा सर्व्वसाधारण में नहीं हुआ। इस में कोई सन्देह नहीं कि एक बेर जिस ने यह समाचार सुना घबड़ा गया, पर तादृश लोग शोकाक्रान्त न हो गए इस का मुख्य कारण यह है कि लोगों में राजभक्ति नहीं है। निस्सन्देह किसी समय में हिन्दुस्तान के लोग ऐसे राजभक्त थे कि राजा को साक्षात् ईश्वर की भांति मानते और पूजते थे, परन्तु मुसल्मानों के अत्याचार से यह राजभक्ति हिन्दुओं से निकल गई। राजभक्ति क्या इन दुष्टों के पीछे सभी कुछ निकल गया; विद्या ही का वैसा आदर न रहा। अब हिन्दुस्तान में तीन बात का घाटा है—वह यह है कि लोग विद्या, स्त्री, राजा का तादृश स्वरूप ज्ञानपूर्व्वक आदर नहीं करते। विद्या को केवल एक जीविका की वस्तु समझते हैं। वैसे ही स्त्री को केवल काम शान्त्यर्थ वा घर की सेवा करने वाली मात्र जानते हैं। उसी भांति राजा को भी केवल इतना जानते हैं कि वह मुझ से बलवान है और हम उसके वश में हैं। राजा का और अपना सम्बन्ध नहीं जानते और यह नहीं समझते कि भगवान की ओर से वह हम लोगों के सुख दुख का साथी नियत हुआ है, इस से हम भी उस के सुख दुःख के साथी हों।

हम आशा रखते हैं कि श्रीमान् गवर्नरजेनरल बहादुर के अकाल मृत्यु का समाचार अब सब को भली भांति पहुंच गया। हम लोगों ने जिस समय यह सम्बाद सुना शरीर शिथिलेन्द्रिय और वाक्य शून्य हो गया। यदि कोई आकर कहे कि चन्द्रमा में आग लगी है तो कभी विश्वास न होगा। उसी प्रकार भरतखंड के उपराज का एक कैदी के हाथ से मारा जाना किसी समय में एकाएकी ग्राह्य

नहीं हो सकता। हाय! देश को कैसा दुःख हुआ! अभी वे ब्रह्म देश की यात्रा कर के अंडमन्स नाम द्वीपस्थित दुखियों के सहायार्थ उपाय करने को जाते थे और वहां ऐसी घटना उपस्थित हुई। चीफ जस्टिस नार्मन का मरण भूलने न पाया और एक उस से भी विशेष उपद्रव हुआ और फिर भी मुसल्मान के हाथ से। यद्यपि कई अंग्रग्रेज़ी समाचार पत्र सम्पादकों ने लिखा है कि जो कारण नारमन साहेब के मारने का था सो श्रीमान् के घात का कारण नहीं हो सकता, परन्तु इस में हमारी सम्मति नहीं है। क्योंकि यदि शेरअली के मन यह बात पहिले से ठनी न होती तो वह ऐसे निर्जन स्थान में छुरी लेकर छिपा क्यों बैठा रहता। फिर एक दूसरे कैदी के "इज़हार" से स्पष्ट ज्ञात होता है जिस समय शेरअली ने अब्दुल्ला के और नार्मन साहेब के मरण का समाचार सुना कैसा प्रसन्न हुआ और लोगों का निमन्त्रण किया। यदि वह उस वर्ग का न होता जो कि तन मन से चाहते हैं कि सरकार "काफ़िर"- है इस लिये उस के बड़े २ अधिकारियों के मारने से बड़ा "सवाब" होता है। प्रसन्नता और निमन्त्रण का क्या कारण था। फिर वह स्वतः कहता है कि अपने मरण के पूर्व्व मैं एक बात कहूंगा। वह कौन सी बात हो सकती है! इन सब विषयों को भली भांति दृढ़ कर के तब उस को फांसी देना उचित है।

———

श्री राजाराम शास्त्री का जीवनचरित्र

श्रीयुत् पण्डितवर राजाराम शास्त्री वेद श्रौतादि विविध विद्यापारीण श्रीयुत् गोविंदभट कार्लेकर के तीन पुत्रों में कनिष्ठ थे। जब ये दस वर्ष के लगभग थे तब इन के पितृचरण परलोक को सिधारे। फिर त्रिलोचन घाट पर एक ऋषितुल्य महातपस्वी श्रीयुत् रानडोपनामक हरिशास्त्री विद्वान् ब्राह्मण रहते थे, उन के पास इन्हों ने अपनी तरुण अवस्था के प्रारम्भ में काव्य और कौमुदी पढ़ कर आस्तिक-नास्तिकोभयविध द्वादश दर्शनाचार्यवर्य परममान्य जगद्विदित कीर्त्ति श्रीयुत् दामोदर शास्त्री जी के पास तर्कशास्त्राध्ययन प्रारम्भ किया। थोड़े ही दिनों में इन की अति लौकिक प्रतिभा देख कर इन को उक्त शास्त्री जी महाशय ने अपनी वृद्ध अवस्था के कारण पढ़ाने का आयास अपने से न हो सकेगा, जान कर श्रीमान् कैलाश निवास परमानंदनिमग्न दिगङ्गनाविख्यातयशोराशि प्रसिद्ध महा पण्डितवर्य श्रीयुत् काशीनाथ शास्त्री जी के जिन के नाम श्रवणमात्र से सहृदय पंडितवर समूह गद्गद् होकर सिर डुलाते हैं स्वाधीन कर दिया। और इन के प्रतिभा का अत्यन्त वर्णन कर के कहा कि मैं यह एक रत्न आप को पारितोषिक देता हूं जो आपके सुविस्तीर्ण शाखाकांडमंडित कुसुमचयाकीर्ण यशोवृक्ष को अपनी यशश्चन्द्रिका से सदा अम्लान और प्रकाशित रक्खेगा। फिर इन्हों ने उक्त महाशय के पास व्याकरणादि विविध शास्त्र पढ़ कर चित्रकूट में जा कर उत्तम २ पंडितों के साथ विप्रतिपत्तियों में अत्युत्तम प्रतिष्ठा पाई और श्रीमन्त विनायक राव साहेब ने बहुत सन्मान किया। फिर जब संस्कृतादिक विविध विद्या कलादि गुण-गण मंडित श्रीमान् जान म्यूर साहब श्री काशी में आए और पाठशाला में विविध विद्या पारंगम पण्डिततुल्य विद्यार्थियों की परीक्षा ली तब उक्त शास्त्री जी महाशय के विद्यार्थिगण में इन की अद्भुत प्रतिभा और अनेक शास्त्रोपस्थिति देख प्रसन्न होकर इस अभिप्राय से कि ऐसे उत्तम पण्डित रत्न का अपने पास रहना यशस्कर है और आजिमगढ़ के जिले में उक्त साहेब महाशय प्राड्विवाक थे इस लिये कहीं कहीं हिन्दू धर्म शास्त्र के अनुसार निर्णय करने के विमर्श में और उन की बनाई हुई अनेक सुन्दर सुन्दर कविता के परिशोधन में सहायता के लिए इन को अपने साथ ले गए। उन के साथ चार पांच वर्ष के लगभग रहकर ग्वालियर में गए, वहां बहुत से उत्तम २ पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ में परम प्रतिष्ठा और राजा की ओर से अत्युत्तम सन्मानपूर्वक बिदाई पाकर संवत् १९१२ के वर्ष में काशी में आए। तब यद्यपि विधवोद्वाहशङ्कासमाधि अर्थात् पुनर्विवाह खण्डन श्रीमान् परम गुरुश्री काशीनाथ शास्त्री जी तैयार कर चुके थे तथापि उस को इन्हों ने अपूर्व २

अनेक शंका और समाधानों से पुष्ट किया। इसी कारण उक्त शास्त्री जी महाराज ने अपने नाम के पहिले इन्हीं का नाम उस ग्रन्थ पर लिख कर प्रसिद्ध किया। संवत् १६१३ के वर्ष में श्रीमान् यशोमात्रा विशेष वालएटेन साहेब महाशय ने सांख्यशास्त्राध्यापन के कार्य में इन को नियुक्त किया। उस कार्य पर अधिष्ठित होकर सपरिश्रम पाठन आदि में अनेक विद्यार्थियों को ऐसे व्युत्पन्न किया जिन की सभा में तत्काल अपूर्व कल्पनाओं को देख कर प्राचीन प्रतिष्ठित पण्डित लोग प्रसन्न हो कर श्लाघा करते थे। संवत् १६२० के वर्ष में राजकीय श्री संस्कृत पाठशालाध्यक्ष श्रीमान् ग्रिफिथ साहेब महाशय ने इन को धर्म्मशास्त्राध्यापक का पद दिया। तब से बराबर पढ़ा २ कर शतावधि विद्यार्थियों को इन्हों ने उत्तम पण्डित किया, जो संप्रति देशदेशान्तर में अपने २ विद्यार्थि गण को पढ़ा कर इन की कीर्त्ति को आसमुद्रांत फैला रहे हैं। कुछ दिन हुए श्रीमान् नन्दन नगर की पाठशाला के संस्कृताध्यापक मोक्षमूलर साहिब महाशय की बनाई हुई अंगरेजी और संस्कृत व्याकरण की पुस्तक का परिशोधन और कई स्थलों में परिवर्तन किया था, जिस से उक्त साहिब महाशय ने अति प्रसन्न होकर इन की कीर्त्ति अनेक द्वीपान्तर निवासियों में विख्यात की, यहां तक कि जब उन्हों ने अपने पुस्तक की द्वितीयावृत्ति छपवाई तब उस की भूमिका में लिखा है कि इन के समान संस्कृत व्याकरण जानने वाला इस द्वीप में तो क्या संसार भर में दूसरा कोई नहीं है। वे उक्त पण्डितवर राजाराम शास्त्री संप्रति पांच चार वर्ष से विरक्त हो कर योगाभ्यास में लगे थे और अपने दीन बांधवों का पोषण और दीन विद्यार्थी प्रभृति के परिपालन ही के हेतु अर्जन करते थे और आप साधारण ही वृत्ति से जीवन यापन करते हुए मठ में निवास करते थे। संवत १६३२ श्रावण शुक्ल १२ के दिन संन्यास लेकर उसी दिन से अन्न परित्याग पूर्वक परमार्थ का अनुसन्धान करते २ मरण काल से अव्यवहित पूर्व तक सावधानता पूर्वक परमेश्वर का ध्यान करते २ भाद्रपद कृष्ण ३ गुरुवार को प्रातःकाल ८ बजते २ परमपद को प्राप्त हो कर यशोमात्रावशिष्ट रह गए।

एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती।

(आज १० सितम्बर १६४५)

(कविवचनसुधा भाग ८ संख्या २२, वैशाख कृष्ण ४ संवत् १६३३ में प्रकाशित, रचना अपूर्ण)

प्रथम खेल

जमाने चमन गुल दिखाती है क्या क्या ?.
बदलता है रंग आस्मा कैसे कैसे ॥

हम कौन हैं और किस कुल में उत्पन्न हैं आप लोग पीछे जानेंगे। आप लोगों को क्या, किसी का रोना हो पढ़े चलिए, जी बहलाने से काम है। अभी मैं इतना ही कहता हूं कि मेरा जन्म जिस तिथि* को हुआ वह जैन और वैदिक दोनों में बड़ा ही पवित्र दिन है। संवत् १६३० में मैं जब तेईस बरस का था एक दिन खिड़की पर बैठा था, वसन्त ऋतु हवा ठंढी चलती थी ! सांझ फूली हुई, आकाश में एक ओर चन्द्रमा दूसरी ओर सूर्य, पर दोनों लाल लाल, अजब समा बंधा हुआ, कसेरू, गंडेरी और फूल बेचने वाले सड़क पर पुकार रहे थे। मैं भी जवानी के उमंगों में चूर जमाने के ऊंच नीच से बेखबर अपनी रसकाई के नसे में मस्त दुनिया के मुफ्तखोरे सिफारशियों से घिरा हुआ अपनी तारीफ सुन रहा था, पर इस छोटी अवस्था में भी प्रेम को भली भांति पहचानता।

कोई कहता था आप से सुन्दर संसार में नहीं, कोई कसमें खाता था आप सा पंडित मैं ने नहीं देखा, कोई पैगाम देता था चमेली जान आप पर मरती है, आप के देखे बिना तड़प रही हैं, कोई बोला हाय ! आप का फलाना कवित्त पढ़ कर रात भर रोते रहे, दूसरे, दूसरे ने कहा आप की फलानी गज़ल लाला रामदास की सैर में जिस वक्त प्यारी ने गाई, सारी मजलिस लोटपोट गई, तीसरा ठंढी सांस भर कर बोला धन्य हैं आप भी गनीमत है बस क्या कहें कोई बी से पूछे, चौथा बोला आप की अंगूठी का पन्ना क्या है कांच का टुकड़ा है या कोई ताज़ी तोड़ी हुई पत्ती है, एक मीर साहब चिड़िया वाले ने चोंच खोली, बेपर की उड़ाई बोले कि आप के कबूतर किस से कम हैं वल्लाह कबूतर नहीं परीजाद हैं, खिलौने

* भारतेन्दु जी का जन्म भाद्रपद शुक्ल ५ ऋषि पंचमी सं० १६०७ वि० (१ सितंबर १८५०) को हुआ था।

हैं, तस्वीर हैं। हुमा पर साया पड़े तो उसे शहबाज़ बना दें, ऐसे ही खूबसूरत जानवरों में ईसाई लोग खुदा का नूर उतरना मानते हैं, इन को उड़ते देख कर किस के होश नहीं उड़ते, कसम कलामुल्लाह शरीफ की मटियाबुर्ज वालों ने ऐसे जानवर ख्वाब में भी नहीं देखे। एक दलाल घोड़े की तारीफ कर उठा, जौहरी ने खच्चरों की तरफ बाग मोड़ी, बजाज बाग की स्तुति में फूल बूटे कतरने लगा, सिद्धान्त यह कि मैं बिचारा अकेला और वाहवाहें इतनी कि चारों ओर से मुझे दबाए लेती थीं और मेरे ऊपर गिरी क्या फिसली पड़ती थीं।

यह तो दीवान खाने का हाल हुआ अब सीढ़ी का तमाशा देखिये। चार पांच हिंदू, चार पांच मुसल्मान सिपाही, एक जमादार, दो तीन उम्मेदवार, और दस बीस उठल्लू के चूल्हे, कोई खड़ा है, कोई बैठा है। हाय रुपया हाय रुपया सब के जबान पर, पर इस में सब ऐसे ही नहीं कोई कोई सच्चा स्वामिभक्त भी है। कोई रंडी के भंडुए से लड़ता है, रुपये में दो आना न दोगे तो सरकार से ऐसी बुराई करेंगे कि फिर बीबी का इस दरबार में दरशन भी दुर्लभ हो जायगा, कोई बजाज से कहता है कि वह काली बनात हमें न ओढ़ाओगे तो बरसों पड़े झूलोगे रुपये के नाम खाक भी न मिलेगी। कोई दलाल से अलग सट्टा बट्टा लगा रहा है। कोई इस बात पर चूर है कि मालिक का हम से बढ़ कर कोई भेदी नहीं जो रुपया कर्ज आता है हमारी मार्फत आता है, दूसरा कहता है बचा हमारे आगे तुम क्या पूचलचर हो औरतों का भुगतान सब मैं ही करता हूं।

इन सबों में से एक मनुष्य को आप लोग पहचान रखिए इस से बहुत काम पड़ेगा। यह एक नाटा खोटा अच्छे हाथ पैर का सांवले रंग का आदमी है, बड़ी मोंछ छोटी आखें, कछाड़ा कसे, लाल पगड़ी बांधे, हरा दुपट्टा कमर में लपेटे, सफेद दुपट्टा ओढ़े। जात का कुनबी है। इस का नाम होली है। होली आजकल मेरे बहुत मुंह लग रहा है, इसी से जो बात किसी को मुझ तक पहुंचानी होती है वह लोग उस से कहते हैं। रेवड़ी के वास्ते मसजिद गिरानी इसी का नाम है॥

———

ऐतिहासिक निबंध

१. कामीर कुसुम
२. बादशाह दर्पण
३. उदयपुरोदय

[भारतेंदु की इतिहास की ओर विशेष रुचि थी। इस देश के शृंखलाबद्ध इतिहास के अभाव का बड़ा शोच था। वे इतिहास की सामग्री के संचयन में बड़े उत्सुक रहते थे। इन इतिहास-ग्रंथों के समान ही उनकी भूमिका भी बड़े महत्त्व की है। इनसे भारतेंदु की इतिहास - संबंधी भावना का भी आभास मिलता है। भारतेंदु ने इतिहास को राजनीतिक घटनाओं के इतिवृत्त और राजवंशों की परंपरा के अनुक्रम के रूप में ग्रहण किया है। किसी राजपुरुष के व्यक्तित्व और कार्यकलाप तक ही उनकी दृष्टि पहुँची है। समय के साथ वे उसका संबंध न जोड़ सके।

'काश्मीर कुसुम' में कामीर का संक्षिप्त इतिहास संकलित । यहां पर इस निबंध के पीछे लगा हुआ चक्र हटा दिया गया है।

'बादशाह दर्पण' की भूमिका जहाँ यह प्रकट करती है कि उनकी इतिहास-संबंधी भावना क्या थी वहाँ उनकी मुस्लिम शासन और ब्रिटिश शासन-संबंधी आलोचना को भी स्पष्ट करती है। संभव है कि पाठकों को मुस्लिम शासन के प्रति प्रकट किए उद्गार उग्र प्रतीत हों और अंगरेज़ी शासन-संबंधी कुछ नरम। किन्तु यह उन्हें न भूलना चाहिए कि मुस्लिम शासन समाप्त हो थां और ब्रिटिश शासन अपने पूरे जोर पर था।

'उदयपुरोदय' भारतेंदु की इतिहासलेखक की शैली का उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए ज्यों का त्यों रख दिया गया है। इसमें ऐतिहासिक अन्वेषण, परंपरा - पालन और लोक - कथाओं का संमिश्रण है। चुका शैली भी कहीं कहीं पर बड़ी अलंकृत है।]

काश्मीर कुसुम।

DEDICAITON

हे सौभाग्य काश्मीर।

केवल ग्रन्थकर्त्ता ही से नहीं इस ग्रन्थ से भी तुम से अनेक सम्बन्ध हैं। तुम कुसुम जाति हौ, यह ग्रन्थ भी। कश्मीर के क्षेत्र से दर्शकों का मन प्रसन्न होता है। तुम्हारे दर्शन से हमारा। कश्मीर इस पृथ्वी का स्वर्ग है, तुम हमारे हेतु इस पृथ्वी में स्वर्ग हौ। यह ग्रन्थ राजतरंगिणी कमल है। तुम वर्ण से राजतरंगिणी कमला ही नहीं हमारी आशाराजतरंगिणी में कमल हो। तरंगिणी गण की रानी भोगवती भागीरथी है, तुम हमारी हृदयपातालवाहिनी राजतरंगिणी हौ। कश्मीरभू स्वर्णमयी नीलमणि प्रभवा है, तुम भी इन्हीं अनेक सम्बन्धों से समझो या केवल हमारे हृदय सम्बन्ध से यह ग्रन्थ तुम को समर्पित है।

भूमिका

भारतवर्ष के निर्मल आकाश में इतिहासचन्द्रमा का दर्शन नहीं होता। क्योंकि भारतवर्ष की प्राचीन विद्याओं के साथ इतिहास का भी लोप हो गया। कुछ तो पूर्व समय में शृङ्खलाबद्ध इतिहास लिखने की चाल ही न थी और जो कुछ बचा बचाया था वह भी कराल काल के गाल में चला गया। जैनों ने वैदिकों के ग्रन्थ नाश किए और वैदिकों ने जैनों के। एक राजधानी में एक वंश राज्य करता था। जब दूसरे वंश ने उस को जीता तो पहले वंश की संपूर्ण वंशावली के ग्रन्थ जला दिए। कवियों ने अपने अन्नदाता की झूठी प्रशंसा की कहानी जोड़ लीं और उन के जो शत्रु थे उन की सब कीर्ति लोप कर दीं। यह सब तो था ही, अन्त में मुसल्मानों ने आकर जो कुछ बचे बचाये ग्रन्थ थे जला दिए। चलिए छुट्टी हुई। ऐसी काली घटा छाई कि भारतवर्ष के कीर्तिचन्द्रमा का प्रकाश ही छिप गया। हरिश्चन्द्र,राम, युधिष्ठिर ऐसे महानुभावों की कीर्ति का प्रकाश अति उत्कट था इसी से घनपटल को वेध कर अब तक हम लोगों के अंधेरे हृश्य को आलोक पहुंचाता है। किन्तु ब्रह्मा से ले कर आज तक और जितने बड़े बड़े राजा या वीर या पंडित या महानुभाव हुए किसी का समाचार ठीक ठीक नहीं मिलता। पुराणादिकों में नाम मिलता है तो समय नहीं मिलता।

ऐसे अंधेरे में कश्मीर के राजाओं के इतिहास का एक तारा जो हम लोग को दिखलाई पड़ता है इसी को हम कई सूर्य से बढ़ कर समझते हैं। सिद्धान्त

यह कि भारतवर्ष में यही एक देश है जिस का इतिहास शृङ्खलाबद्ध देखने में आता है और यही कारण है कि इस इतिहास पर हमारा ऐसा आदर और आग्रह है।

कश्मीर के इतिहास में कल्हण कवि की राजतरंगिणी ही मुख्य है। यद्यपि कल्हण के पहले सुव्रत, क्षेमेन्द्र, हेलाराज, नीलमुनि, पद्ममिहिर और श्रीछविल्ल-भट्ट आदि ग्रन्थकार हुए हैं, किन्तु किसी के ग्रन्थ अब नहीं मिलते। कल्हण ने लिखा है कि हेलाराज ने बारह हजार ग्रन्थ कश्मीर के राजाओं के वर्णन के एकत्र किए थे। नीलमुनि ने इस इतिहास में एक बड़ा सा पुराण ही बनाया था। किन्तु हाय अब वे ग्रन्थ कहीं नहीं मिलते। कश्मीर के बचे बचाए जितने ग्रन्थ थे सब दुष्टों ने जला दिए। आर्य्यों की मन्दिर मूर्ति आदि में कारीगरी, कीर्तिस्तम्भादिकों के लेख और पुस्तकों का इन दुष्टों के हाथ से समूल नाश हो गया। परशुराम जी ने राजाओं का शरीरमात्र नाश किया, किन्तु इन्हों ने देह बल विद्या धन प्राण की कौन कहै कीर्ति का भी नाश कर दिया।

कल्हण ने जयसिंह के काल में सन् ११४८ ई० में राजतरंगिणी बनाई। यह कश्मीर के अमात्य चम्पक का पुत्र था और इसी कारण से इस को इस ग्रन्थ के बनाने में बहुत सा विषय सहज ही में मिला था।

इस के पीछे जोन राज ने १४१२ में राजावली बना कर कल्हण से लेकर अपने काल तक के राजाओं का उस में वर्णन किया। फिर उस के शिष्य श्री बरराज ने १४७७ में एक ग्रन्थ और बनाया। अकबर के समय में प्राज्यभट्ट ने इस इतिहास का चतुर्थ खंड लिखा। इस प्रकार चार खंडों में यह कश्मीर का इतिहास संस्कृत में श्लोकबद्ध विद्यमान है।

महाराज रणजीत सिंह के काल में जान मैकफेयर नामक एक यूरोपीय विद्वान-ने कश्मीर से पहिले पहल इस ग्रन्थ का संग्रह किया। विल्सन साहब ने एशिया-टिक रिसर्चेज़ में इस के प्रथम छ सर्ग का अनुवाद भी किया था।

इसी राजतरंगिणी ही से यह इतिहास मैं ने लिखा है। इस में केवल राजाओं के समय और बड़ी बड़ी घटनाओं का वर्णन है। आशा है कि कोई इस को सविस्तर भी निर्माण कर के प्रकाश करेगा।

राजतरंगिणी छोड़ कर और और भी कई ग्रन्थों और लेखों से इस में संग्रह किया है। यथा आइने अकबरी, ··· ··· ··· का फारसी इतिहास। एशियाटिक सोसाइटी के पत्र; विल्सन, विल्फर्ड, प्रिंसिप, कनिंगहम, टाड, विलिअम्स गोशेन और ट्रायर आदि के लेख, बाबू जोगेशचन्द्रदत्त की अङ्गरेज़ी तवारीख। दीवान कृपाराम जी की फारसी तवारीख आदि।

बहुतों का मत है कि कश्मीर शब्द कश्यपमेरु का अपभ्रंश है। पहले पहल कश्यप मुनि ने अपने तपोबल से इस प्रदेश का पानी सुखा कर इस को बसाया था।

इन के पीछे गोनर्द तक अर्थात् कलियुग के प्रारम्भ तक राजाओं का कुछ पता नहीं है। गोनर्द से ही राजाओं का नाम शृङ्खलाबद्ध मिलता है। मुसल्मान लेखकों ने इस के पूर्व के भी कई नाम लिखे हैं, किन्तु वे सब ऐसे अशुद्ध और प्रति शब्द में खां उपाधि विशिष्ट हैं कि उन नामों पर श्रद्धा नहीं होती।

गोनर्द से लेकर सहदेव तक पूर्व में सैंतीस सौ बरस के लगभग डेढ़ सौ हिन्दू राजाओं ने कश्मीर भोगा, फिर पूरे पांच सौ बरस मुसल्मानों ने इस का उत्पीड़न किया (बीच में बागी हो कर यद्यपि राजा सुखजीवन ने ८ बरस राज्य किया था पर उस की कोई गिनती नहीं) फिर नाममात्र को कश्मीर दुर्रानी राज्यभुक्त होकर आज चौंसठ बरस से फिर हिन्दुओं के अधिकार में आया है। अब ईश्वर सर्वदा इस को उपद्रवों से बचावै। एवमस्तु।

कश्मीर के वर्त्तमान महाराज की संक्षिप्त वंशपरम्परा यों है। ये लोग कछवाहे क्षत्री हैं। जैपुर प्रान्त से सूर्यदेव नामक एक राजकुमार ने आकर जम्बू में राज्य का आरम्भ किया। उस के वंश में भुजदेव, अवतारदेव, यशदेव, कृपालुदेव, चक्रदेव विजयदेव। नृसिंहदेव, अर्जनदेव और जयदेव ये क्रम से हुए। जयदेव का पुत्र मालदेव बड़ा बली और पराक्रमी हुआ। इस ने हँसी हँसी में पचास पचास मन जो पत्थर उठाए हैं वह उस की अचल कीर्त्ति बन कर अब भी जम्बू में पड़े हैं। उस के पीछे हम्मीरदेव, अजेब्यदेव, वीरदेव, घोगड़देव, कर्पूरदेव और सुमहलदेव क्रम से राजा हुए। सुमहलदेव के पुत्र संग्रामदेव ने फिर बड़ा नाम किया। आलमगीर इन की वीरता से ऐसा प्रसन्न हुआ कि महाराजगी का पद छत्र चंवर सब कुछ दिया। ये दक्षिण की लड़ाई में मारे गए। इन के पुत्र हरिदेव ने और उनके पुत्र गजसिंह ने राज को बहुत ही बसाया। सब प्रकार के नियम बांधे और महल बनवाए। गजसिंह के पुत्र ध्रुवदेव ने बहुत दिन तक ऐश्वर्यपूर्वक राज्य किया। ध्रुवदेव के रणजीतदेव और सूरतसिंह पुत्र थे। रणजीतदेव को ब्रजराजदेव और उन को निजपरम्परासम्पूर्णकारी सम्पूर्णदेव हुए। सम्पूर्णदेव को सन्तति न होने के कारण रणजीतदेव के दूसरे पुत्र दलेलसिंह के पुत्र जैतसिंह ने राज्य पाया। महाराज रणजीतसिंह लाहोरवाले के प्रताप के समय में जैतसिंह को पिनशिन मिली और जम्बू का राज्य लाहोर में मिल गया। जैतसिंह के पुत्र रघुवीरदेव के पुत्र पौत्र अब अम्बाले में हैं और सर्कार अंगरेज़ से पिनशिन पाते हैं। ध्रुवदेव के दूसरे पुत्र सूरतसिंह को जोरावर सिंह और मियां मोटासिंह दो पुत्र थे। मियां मोटा को विभूतिसिंह और उन को एक पुत्र ब्रजदेव हैं जिन को वर्त्तमान महाराज जम्बू ने क़ैद कर रक्खा है। जोरावरसिंह को किशोरसिंह और उन को तीन पुत्र हुए, गुलाबसिंह, सुचेतसिंह और ध्यानसिंह। महाराज गुलाबसिंह ने महाराजाधिराज रणजीतसिंह से जम्बू का राज्य

फिर पाया। सुचेतसिंह का वंश नहीं रहा। राजा ध्यानसिंह को हीरासिंह, जवाहरसिंह और मोतीसिंह हुए, जिन में राजा मोतीसिंह का वंश है। महाराज गुलाबसिंह के उद्धवसिंह, रणधीरसिंह और रणवीरसिंह तीन पुत्र हुए। प्रथम दोनों नौनिहालसिंह और राजा हीरासिंह के साथ क्रम से मर गए इस से महाराज रणवीरसिंह वर्त्तमान जम्बू और कश्मीर के महाराज ने राज्य पाया। इन के एक वैमात्रेय भाई मियां हठसिंह हैं जिनको महाराज ने क़ैद कर रक्खा था, पर सुनते हैं कि आज कल वह क़ैद से निकल कर नैपाल प्रान्त में चले गए हैं। सन् १८६१ में महाराज को जी. सी. एस० आई० का पद सर्कार ने दिया और १८६२ में दत्तक लेने का आज्ञापत्र भी दिया। इन को २१ तोप की सलामी है। दिल्ली दरबार में इन को और भी अनेक आदरसूचक पद मिले हैं। ये संस्कृत विद्या और धर्म के अनुरागी हैं। इन को तीन पुत्र हैं यथा युवराज प्रतापसिंह, कुमार रामसिंह और कुमार अमरसिंह*।

राजतरङ्गिणी की समालोचना।

जिस महाग्रन्थ के कारण हम लोग आज दिन कश्मीर का इतिहास प्रत्यक्ष करते हैं उस के विषय में भी कुछ कहना यहां बहुत आवश्यक है। इस ग्रन्थ को कल्हण कवि ने शाके एक हजार सत्तर१०७०में बनाया था। उस समय तीसरे गोनर्द से तेईस सौ तीस बरस बीत चुके थे। इस ग्रन्थ की संस्कृत क्लिष्ट और एक विचित्र शैली की है। कवि के स्वभाव का जहां तक परिचय मिला है ऐसा जाना जाता है कि वह उद्धत और अभिमानी था, किन्तु साथ ही यह भी है कि उस की गवेषणा अत्यन्त गम्भीर थी। नीलपुराण छोड़ कर ग्यारह प्राचीन ग्रथ इस ने इतिहास के देखे थे। केवल इन्हीं ग्रन्थों के भरोसे इस ने यह ग्रन्थ नहीं बनाया वरंच आजकल के पुरातत्ववेत्ता (Antiquarians) की भांति प्रचीन राजाओं के शासनपत्र, दानपत्र तथा शवालय आदि की लिपि भी इस ने देखी थीं। (प्रथम तरंग १५ श्लोक देखो) यह मन्त्री का पुत्र था, इस से सम्भव है कि इन वस्तुओं को देखने में इस को इतना परिश्रम न पड़ा होगा जितना यदि कोई साधारण कवि बनाता तो उस को पड़ता। इस ग्रन्थ में आठ हजार श्लोक हैं। साढ़े छ सौ बरस कलियुग बीते

---

* वर्त्तमान महाराज के परिषदवर्ग भी उत्तम हैं। इन के एक बड़े शुभचिन्तक पण्डित रामकृष्ण जी को कई वर्ष हुए लोगों ने षड्चक्र कर के राज्य से अलग कर दिया था और अब उन के पुत्र पण्डित रघुनाथ जी काशी में रहते हैं। महाराज के अमात्य दीवान ज्वाला सहाय के पौत्र दीवान कृपाराम के पुत्र दीवान अनन्तराम जी हैं, जो अङ्गरेज़ी, फ़ारसी आदि पढ़े और सुचतुर हैं। बाबू नीलाम्बर मुकुर्जी, बाबू गणेशचौबे प्रभृति और भी कई चतुर लोग राज्यकार्य में दक्ष हैं।

कौरव पांडवों का युद्ध हुआ था, यह बात इसी ने प्रचलित की है। जरासन्ध के युद्ध में कश्मीर का पहला राजा गोनर्द मारा गया। यहां से कथा का आरम्भ है*। इसी आदि गोनर्द के पुत्र को श्रीकृष्ण ने गान्धार देश के स्वयम्बर में मारा और

---

* इस ग्रन्थकर्त्ता के पिता श्रीयुत कविवर गिरिधरदास जी ने अपने जरासन्ध-बध नामक महाकाव्य में जरासन्ध की सैना में कश्मीर के आदि गोनर्द के वर्णन में कई एक छन्द लिखा है वह भी प्रकाश किया जाता है। (३ सर्ग ४० छन्द)

चलेउ भूप गोनर्द वर्दवाहन समान बल,
संग लिये बहु मर्द सर्द लखि होत अपर दल।
फेंटा सीस लपेटा गल मुकुता की माला,
सिर केसर को पुंड्र धरे पचरङ्ग दुसाला।
रथ चारु जराऊ सोहतो रूप सबन मन मोहतो,
कश्मीर भूप भरि रिसि लसी मथुरापुर दिसि जोहतो॥

(६ सर्ग २५ छन्द)

छप्पय मद्रक सुम्भक पनस किंपुरुस द्रुमनृप कोसल,
सोमदत्त बाल्हीक भूरि सह भूरिस्रवा सल।
युधामन्यु गोनर्द अनामय पुनि उतमौजा,
चेकितान अरु अङ्गग बङ्ग कालिङ्ग महौजा।
नृपवृहत छत्र कैसिक सुहित आहुति सहित भुआल सब,
चढ़ि लरैं द्वार पश्चिम जबर, अरि गति देन ढब।

(१० सर्ग ११ छन्द)

कैसिक नृप अति विक्रमवन्त, अरिमरदन संग भिरयो तुरन्त।
धरम वृद्ध गोनर्द महीप, करन लगे रथ जोरि समीप।
हरिगीत छन्द—तहं काश्मीरी भूमिपति गोनर्द धनु टंकारि कै।
भट धर्म वृद्धहि छाय दीनो मारु मारु पुकारि कै।
सब काटिकै दुसमन विसिख महि मध्य दीनो डारिकै॥९५॥
गोनर्द तब बोलत भयौ तू ज्वान प्रगट लखात है।
क्यों धर्म्म वृद्ध कहात है आचरज यह अधिकात है।
पै एक बात विचारि करि संदेह मेरो जात है।
रन धरम वृद्धन को धरै अति सिथिल तेरो गात है॥९६॥
जदुवीर अब बोलत भयो नृप सांच तोहि बातै कहैं।
हम धर्म्म वृद्ध कहात हैं पै करम वृद्ध नहीं अहैं।
अरु धर्म्म वृख को नाम है सो वृद्ध बहु दिन को भयो।

उस की सगर्भा रानी को राज्य पर बैठाया। उस समय श्रीकृष्ण ने कश्मीर की महिमा में एक पुराण का श्लोक कहा। (१ त० ३२ श्लोक) यही प्रकरण इस बात का प्रमाण है कि कश्मीर का राज्य बहुत दिन से प्रतिष्ठित है। इस रानी के पुत्र का नाम द्वितीय गोनर्द हुआ, जो महाभारत के युद्ध में मारा गया। इसी से स्पष्ट है कि पूर्वोक्त तीनों राजा जवानी ही में मरे, क्योंकि एक पांडवों के काल में तीनों का वर्णन आया है। इन लोगों के अनेक काल पीछे अशोक राजा जैनी हुआ। इसी ने श्रीनगर बसाया। इस के पीछे जलौकराजा प्रतापी हुआ जिस ने कान्य-कुब्जादि देश जीता। यह शैव था। (भारतवर्ष से मूर्तिपूजा और शैव वैष्णवादि मत बहुत ही थोड़े काल से चले हैं यह कहने वाले महात्मागण इस प्रसंग को आंख खोल कर पढ़ें) (१ त० ११३ श्लोक) फिर हुष्क जुष्क कनिष्क ये तीन विदेशी (Bactro-Indian tribe) राजा हुए। इन के समय में शाक्य सिंह को हुए डेढ़ सौ बरस हुए थे। (१ त० १७२ श्लोक) इस से स्पष्ट होता है कि राजतरंगिणी के हिसाब से शाक्यसिंह को हुए पचास सौ बरस हुए। इसी समय में नागार्जुन नामक सिद्ध भी हुआ। इन के पीछे अभिमन्यु के समय में चन्द्राचार्य ने व्याकरण के महाभाष्य का प्रचार किया और एक दूसरे चन्द्रदेव ने बौद्धों को जीता। कुछ काल पीछे मिहिरकुल नामक एक राजा हुआ। इस के समय की एक घटना बिचारने के योग्य है। वह यह कि इसकी रानी सिंहल का बना रेशमी कपड़ा पहने थी उस पर वहां के राजा के पैर की सोनहली छाप थी। इस पर कश्मीर के राजा ने बड़ा क्रोध किया और लङ्का जीतने चला। तब लङ्कावालों ने 'यमुषदेव' नामक सूर्य के बिम्ब के छापे का कपड़ा दे कर उस से मेल किया। (१ त० ३०० श्लोक) इस से स्पष्ट होता है कि चांदी सोने से कपड़ा छापना लङ्का में तभी से प्रचलित था। अद्यापि हैदराबाद में (लङ्का के समीप) छापा अच्छा होता है। उस समय तक भट्टि (Bhatti) दारद (Dardareans) और गांधार (Khandharians) ब्राह्मण होते थे।

फिरतुंजीन नामक राजा के समय में चन्द्र कवि ने नाटक बनाया। (२ त० १६ श्लो०) इस के समय में एक बात और आश्चर्य की लिखी है कि एक समय बड़ा काल पड़ा था तो परमेश्वर ने कबूतर बरसाये थे। (२ त० ५१ श्लो०) और

गोनरद तू रद रहित बूढ़ो पतिहि क्यों चाहै नयो ॥६७॥
इमि वचन सुनि सुफलक सुवन के कासमीरी कोपि कै।
बहु बरखि आयुध वारिधर सम दियो पर रथ लोपि कै।
तिमि धर्म्म वृद्धि बजाय धनु सर त्याग कीने चोपि कै।
गोनर्द सस्त्र उड़ायकै गरज्यो विजय पन रोपि कै ॥६८॥

हर्ष नामक एक कोई और राजा उस काल में हुआ था। इस राजा के कुछ काल पीछे सन्धिमान राजा की कथा भी बड़ी आश्चर्य की लिखी है कि वह सूली दिया गया था और फिर जी गया इत्यादि। विक्रमादित्य के मरने के थोड़े ही समय पीछे प्रवरसेन राजा ने नाव का पुल बांधा और वह ललाट में त्रिशूल की भांति तिलक देता था (३ त० ३५६ और ३६७ श्लो०)।

जयापीड़ राजा का समय फिर ध्यान देने के योग्य है, क्योंकि इस के समय में कई पण्डित हैं, जिन में शंकु नामक कवि ने मम्म और उत्पल की लड़ाई में भुवनाभ्युदय नामक काव्य बनाया था। (४ त० २५ श्लो०) इसी के समय में वामन नामक वैयाकरण पण्डित हुआ है जिस की कारिका प्रसिद्ध है। (४ त० ४८७ से ४९४ श्लो० तक) इसी वामन का बोपदेव ने खण्डन किया है। (बोपदेव महाग्राहग्रस्तो वामने कुंजरः) इससे बोपदेव जयापीड़ के समय (७५ ई०) के पीछे हुए हैं यह सिद्ध होता है। जयापीड़ ने द्वारका फिर से बसा कर मन्दिर बनवाए। (४ त० ५६० श्लो०) और उस समय नैपाल का राजा अरमुड़ि था (४ त० ५२९ श्लो०)।

राजा शंकरवर्मा का समय भी दृष्टि देने के योग्य है। इस के पास ३०० हाथी, लाख घोड़े और नौ लाख प्यादे थे। उस समय गुजरात में 'खालान खान' का जोर था। दरद और तुरुष्क देश के राजा भारत में बड़ा उपद्रव मचाए हुए थे। लल्लियशाह खानालखान का सर्दार था (५ त० १५३ से १६० श्लो० तक)। इस ग्रंथ में मुसल्मानों का वर्णन पहले यहीं आया है। इस से स्पष्ट होता है कि ईस्वी नवीं शताब्दी के अन्त तक जो मुसल्मान चढ़ाई करते थे वे गुजरात की राह से करते थे; उत्तर पच्छिम की राह नहीं खुली थी। इस तरंग में कायस्थों की बड़ी निन्दा की है (४ त० ६२५ श्लो० से और ५ त० १७९ श्लो० आदि)।

चतुर्थ और पञ्चम तरङ्ग में कई बात और दृष्टि देने के योग्य है। जैसे तांबे की 'दीनार' पर राजाओं का नाम खुदा रहना। (४ त० ६२० श्लो०) जहां पथिक टिकें उस स्थान का नाम गंज (४ त० ५९२ श्लो०)। रुपयों की हुण्डिका (हुण्डी) का प्रचार। (५ त० १५९ श्लो०) मेष के ताज़े चमड़े पर खड़े होकर तलवार ढाल हाथ में लेकर शपथ खाना इत्यादि (५ त० ३३० श्लो०)। इसी तरङ्ग में गानेवालों का नाम डोम लिखा है। (५ त० ३५८ श्लो०) यह दीनार गंज हुण्डी और डोम शब्द अब तक भाषा में प्रचलित है, वरंच मोर-हसन ने भी 'वडोमनपना' लिखा है। जैसा इस काल में रंडी और इन की बुढ़िया तथा भंडुओं के समझने की और साधारण लोग जिस में न समझें * ऐसी एक

---

* वर्तमान काल में रंडियों की भाषा का कुछ उदाहरण दिखाते हैं। नगर की वारबधूगण की संकेत भाषा यथा—लूरा—पुरुष, लूरी—रंडी, चीसा—अच्छी बीला—

भाषा प्रचलित है वैसी ही उस काल में भी थी। गानेवाले को हेलू गांव दिया गया। इसकी उस काल की भाषा हुई 'रंगस्सहल्लुदिराणा' (५ त० ४०२ श्लो०)।

षष्ठतरंग में दिद्दारानी का उपद्रव और बहुत से राजाओं के नाम के पूर्व में शाहिपद ध्यान देने के योग्य है।

सप्तमतरंग (५३ श्लो०) में हम्मीर नाम का एक राजा तुंग के समय में और (१९० श्लो०) अनन्त के समय में भोज का राजा होना लिखा है। मान के हेतु लोगों को ठाकुर की पदवी दी जाती थी। (७ त० २९ श्लो०) तुरुष्क देश से सोने का मुलम्मा करने की विद्या हर्ष के समय में आई। (७ त० ५३ श्लो०) इसी के काल में खस लोगों ने पहले पहल बन्दूक का युद्ध किया (७ त० ९८४ श्लो०) कलिंजर के राजा, राजा उदयसिंह आदि कई राजाओं के प्रसंग से (१३०० श्लो० के आसपास) नाम आए हैं। युद्ध हारने के समय क्षत्रानियां राजपुताने की भांति यहां भी जल जाती थीं। (७ त० १५०० श्लो०)

अष्टमतरंग में भी कायस्थों की बहुत निन्दा की है। (८ त० ८९ श्लो० आदि) कैदियों को भांग से रंग कर कपड़ा पहनाते थे। (८ त० ९३ श्लो०) कल्याण के हेतु लोग भीष्मस्तवराज, गजेन्द्रमोक्ष, दुर्गापाठ आदि का पाठ करते थे (८ त० १५२ श्लो०) उस समय में भी राजाओं को इस बात का आग्रह होता था कि उन्हीं के नाम के सिक्के का प्रचार विशेष हो। इस समय (बारहवीं शताब्दी के मध्य में) कालिंजर का राजा कल्ह था (८ त० २०५ श्लो०) कटार को कट्टार कहते थे। (८ त० ५१५ श्लो०) हर्ष का सिर काट कर लोगों ने भाले पर चढ़ाया, किन्तु इस के पहले किसी राजा के सिर काटने की चाल नहीं थी। हर्ष का व्याख्यान इस तरंग में अवश्य पढ़ने के योग्य है जिस से शृङ्गार वीर आदि रसों का हृदय में उदय होकर अन्त में वैराग्य आता है।

राजतरंगिणी में राम-लक्ष्मण की मूर्ति का पृथ्वी के भीतर से निकलना इस बात का प्रमाण है कि मूर्त्तिपूजा यहां बहुत दिन से प्रचलित है।

इस में देवी, देवता, भूत-प्रेत और नागों की अनेक प्रकार की आश्चर्य कथा हैं जिन को ग्रन्थ बढ़ने के भय से यहां नहीं लिखा। और भी वृक्ष, शस्त्र औषधि और मणि आदिकों के अनेक प्रकार के वर्णन हैं। कोई महात्मा इस का पूरा अनुवाद करैंगे तो साधारण पाठकों को इस का पूर्ण आनन्द मिलैगा।

इस में एक मणि का वर्णन बड़ा आश्चर्यजनक है। एक बेर राजा नदी पार होना चाहता था किन्तु कोई सामान उस समय नहीं था। एक सिद्ध मनुष्य ने जल में एक मणि फेंक दी, उस से जल हट गया और सैना पार उतर गई। फिर दूसरी मणि के

बुरा, भीमटा—रुपया, आदि। ग्राम्य रंडियों की भाषायथा—सेरुआ—पुरुष, सेरुइ—स्त्री, कनेरी—रुपया, सेमिल—अच्छा है और छौलिआयल्यः अर्थात् रुपया सब ठग लो!

बल से इस मणि को उठा लिया। एक कहानी ऐसी और भी प्रसिद्ध है कि किसी राजा की अंगूठी पानी में गिर पड़ी। राजा को उस अमूल्य रत्न का बड़ा शोच हुआ। यह देख कर मंत्री ने अपनी अंगूठी डोरे में बांध कर पानी में डाली। मंत्री के अंगूठी के रत्न में ऐसी शक्ति थी कि अन्य रत्नों को वह खींच लेती थी, इस से राजा की अंगूठी मिल गई।

हर्षदेव।

हर्षदेव के विषय में यद्यपि राजतरंगिणी में कुछ विशेष नहीं लिखा है किन्तु इस राजा का नाम भारतवर्ष में बहुत प्रसिद्ध है और एक इस बात की प्रसिद्धि पर कि रत्नावली इत्यादि काव्य-ग्रन्थ उस के समय में बने थे इस राजा पर मेरी विशेषदृष्टि पड़ी। इसका समय विक्रम और कालिदास के समय के बहुत पीछे स्पष्ट होने से इस बात की मुझ को बड़ी चिन्ता हुई कि वह कौन पुण्यात्मा श्री हर्ष है धावक ने जिस की कीर्ति आचन्द्रार्क स्थिर रक्खी है। वह श्री हर्ष निश्चय मम्मट कालिदासादि के पूर्व और वत्सराज के पश्चात् हुआ है। वंशावलियों में खोजने से कई हर्ष मिले। यथा मालवा के राजाओं में एक हर्षमेघ १६१ ई०पू० हुआ है। यह युद्ध में मारा गया और कोई विशेष कथा इस की नहीं है। छतरपुर में एक लिपि में श्री हर्ष नाम का एक राजा बिहल का पुत्र यशोधर्मदेव का पिता लिखा है। और यह लिपि श्री हर्ष के प्रपौत्र की सं० १०१९ की है। एक श्री हर्ष नैपाल का राज ३६३१ ई० पू० हुआ है। एक विक्रमादित्य जिस का दूसरा नाम हर्ष था मातृगुप्त के समय में हुआ। शक१०००में एक विक्रम और इस के कुछ ही पूर्व कान्यकुब्ज में एक हर्ष नामक राजा हुआ। कालिदास और श्री हर्ष कवि भी इसी काल में थे। जैन लोगों ने लिखा है कि वाराणसी के जयन्तीचन्द्र नामक राजा के दरबार में श्री हर्ष कवि था। (१०८९ श्लोक) यह जैनों का भ्रम है। और हर्षों को छोड़ कर कान्यकुब्ज के हर्ष को यदि धावक कवि का स्वामी मानैं तभी कुछ लड़ बातों की मिलैगी। जैसा रत्नावली में जिस वत्सराज का चरित है वह कलियुग के प्रारम्भ में उरुद्वेप का पुत्र वत्स था। शुनकवंश का प्रथम राजा एक प्रद्योत हुआ है। [२००० ई० पू०] सम्भव है कि इसी प्रद्योत की बेटी वत्स को व्याही हो। धावक ने एक उदयन का भी वर्णन किया है वह पांडवों के वंश की अन्तावस्था में हुआ था। यह सब अति प्राचीन है। इस से ३६३१ ई० पू० के नैपालवाले श्रीहर्ष के हेतु धावक ने काव्य बनाया है यह नहीं हो सकता। कन्नौज में जो श्रीहर्ष नामक राजा था जिस की सभा में श्रीहर्ष नामक कवि का पिता रहता था वही श्रीहर्ष धावक का स्वामी था। छतरपुर की लिपि का काल १०१९ है। चार पुश्त पहले यह काल ८५० संबत् में जा पड़ेगा। यशोविग्रह के पहले कदाचित् राजविप्लव हुआ हो और श्रीहर्ष से यशोविग्रह तक दो एक राजे और हो गए

हों तो आश्चर्य नहीं। प्रशस्ति के 'क्ष्मापालमालासु दिवंगतासु' इस पद से ऐसा झलकता भी है। यशोविग्रह से लेकर जयचन्द्र तक नामों में जितनी प्रशस्ति मिली हैं उन में बड़ा ही अन्तर है। जो ताम्रपत्र मैंने देखा है उस का क्रम यह है—यशोविग्रह, महीचन्द्र, चन्द्रदेव, मदनपाल, गोविन्देन्द्र और जयचन्द्र। जैनों ने इसी जयचन्द्र को जयन्तीचन्द्र लिखा है और काशी का राजा लिखने का हेतु यह है कि 'तीर्थानि काशीकुशिकोत्तरकौशलेन्द्रस्थानीयकानि परिपालयताभिगम्य' इस पद से स्पष्ट है कि काशी भी उस समय कन्नौजवालों के अधिकार में थी इसी से काशी का राजा लिखा। और जयचन्द्र के प्रपितामह या उस के भी पिता के काल में जो श्रीहर्ष कवि था उस को जयचन्द्र काल में लिख दिया। छतरपुर की लिपि में जो श्रीहर्ष राजा का पुत्र यशोधर्म वा वर्म लिखा है वही यशोविग्रह मान लिया जाय और जयचन्द्र उस के बड़े पुत्र का वंश और छतरपुर की लिपि वाले छोटे पुत्र के वंश में हैं ऐसा मान लीजिए तो विरोध मिट जायगा। चन्द्रदेव ने 'श्रीमद्गाधिपुराधिराज्यमखिलं दोर्विक्रमेनार्जितम्' इस पर से कान्यकुब्ज का राज्य अपने बल से पाया यह भी झलकता है। इस से यह भी सम्भव है कि श्रीहर्ष का राज्य कन्नौज में शेष न रहा हो और चन्द्रदेव ने नए सिरे से राज्य किया हो। यशोविग्रह के वंश की कई शाखा हैं इस का प्रमाण प्रशस्तियों के भिन्न भिन्न नामों ही से है। इस से ऐसा निश्चय होता है कि सम्बत् ९०० के लगभग जो श्रीहर्ष नामक कान्यकुब्ज का राजा था उसी के हेतु रत्नावली आदि ग्रन्थ बने हैं *। कालिदास, विक्रम, भोज सब इस काल के सौ बरस के आस पास पीछे उत्पन्न हुए हैं और इसी से कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में धावक का परिचय दिया है। कल्हण कवि ने जो राजतरंगिणी में कालिदास या इस श्रीहर्ष का नाम नहीं दिया उस का कारण यही है कल्हण का स्वभाव असहिष्णु था और कालिदास से कश्मीर के राजा भीमगुप्त से (जो ९७५ ई० के काल में राज्य करता था) महा वैर था, इस से उस ने कालिदास का या उस के स्वामी विक्रम का नाम नहीं लिखा। कल्हण प्रायः सभी राजाओं की कुछ कुछ निन्दा कर देता है जैसा इसी हर्षदेव की जिस की और स्थानों में बड़ी स्तुति है कल्हण ने निन्दा की है। और ग्रन्थकारों के मत में श्रीहर्ष बड़ा न्यायपरायण स्वयं महा कवि अति उदार था। पुकार सुनने के हेतु महल की भित्तियों पर घंटियां लटकती थीं। रात दिन गुणियों से घिरा रहता था और अन्त में संसार को असार जानकर त्यागी हो गया। कल्हण से हर्ष राज से द्वेष का यह कारण है कि इस के स्वामी जयसिंह का बाप सुस्सल हर्ष के पोते भिक्षाचर को मार कर राज्य पर बैठा था।

* पूर्व में तुजीन के काल में एक हर्ष हुआ है यह लिख भी आए

बादशाह दर्पण।

भूमिका

रामायण में भगवान् वाल्मीकिजी ने कहा है जो वस्तु हुई हैं नाश होंगी, जो खड़ी हैं गिरैंगी, जो मिले हैं बिछुड़ैंगे, और जो जीते हैं अवश्य मरैंगे। सच है, इस जगत की गति पहिये की आर की भांति है। जो आर अभी ऊपर थी नीचे गई और जो नीचे थी ऊपर हो गई। आधीरात को सूर्य का वह प्रचंड तेज कहां है जो दो पहर को था? दिन को ठंढी किरनों से जी हरा करनेवाला चन्द्रमा कहां है? संसार की यही गति है। जो भारतवर्ष किसी समय में सारी पृथ्वी का मुकुटमणि था, जिस की आन सारा संसार मानता था और जो विद्या वीरता और लक्ष्मी का एक मात्र विश्राम था वह आज हीन दीन हो रहा है—यह भी काल का एक चरित्र है।

जब से यहां का स्वाधीनता सूर्य अस्त हुआ उस के पूर्व समय का उत्तम शृङ्खलाबद्ध कोई इतिहास नहीं है। मुसल्मान लेखकों ने जो इतिहास लिखे भी हैं उन में आर्यकीर्त्ति का लोप कर दिया है। आशा है कि कोई माई का लाल ऐसा भी होगा जो बहुत सा परिश्रम स्वीकार कर के एक बेर अपने 'बाप दादों' का पूरा इतिहास लिख कर उन की कीर्त्ति चिरस्थायी करैगा।

इस ग्रन्थ में तो उन्हीं लोगों का चरित्र है जिन्हों ने हम लोगों को गुलाम बनाना आरम्भ किया। इस में उन मस्त हाथियों के छोटे छोटे चित्र हैं जिन्हों ने भारत के लहलहाते हुए कमलवन को उजाड़ कर पैर से कुचल कर छिन्न भिन्न कर दिया। मुहम्मद, महमूद, अलाउद्दीन, अकबर और औरंगजेब आदि इन में मुख्य हैं।

प्यारे भोले भाले हिन्दू भाइयो! अकबर का नाम सुन कर आप लोग चौंकिए मत। यह ऐसा बुद्धिमान शत्रु था कि उस की बुद्धि बल से आज तक आप लोग उस को मित्र समझते हैं। किंतु ऐसा है नहीं। उस की नीति (Policy) अङ्गरेज़ों की भांति गूढ़ थी। मूर्ख औरङ्गजेब उस को समझा नहीं, नहीं तो आज आधा हिन्दुस्तान मुसल्मान होता। हिन्दू मुसल्मान में खाना पीना व्याह शादी कभी चल गई होती। अङ्गरेज़ों को भी जो बात नहीं सूझी वह इस को सूझी थी।

यद्यपि उस उर्दू शैर के अनुसार 'बाग़बाँ आया गुलिस्तां में कि सैयाद आया। जो कोई आया मेरी जान को जल्लाद आया।' क्या मुसल्मान क्या अङ्गरेज़ भारतवर्ष को सभी ने जीता, किन्तु इन में उन में तब भी बड़ा प्रभेद

है। मुसल्मानों के काल में शत सहस्र बड़े बड़े दोष थे किन्तु दो गुण थे। प्रथम तो यह कि इन सबों ने अपना घर यहीं बनाया था इस से यहां की लक्ष्मी यहीं रहती थी। दूसरे बीच बीच में जब कोई आग्रही मुसल्मान बादशाह उत्पन्न होते थे तो हिन्दुओं का रक्त भी उष्ण हो जाता था इस से वीरता का संस्कार शेष चला आता था। किसी ने सच कहा है मुसल्मानी राज्य हैजे का रोग है और अङ्गरेज़ी क्षयी का। इन की शासनप्रणाली में हमलोगों का धन और वीरता निःशेष होती जाती है। बीच में जाति पक्षपात, मुसल्मानों पर विशेष दृष्टि आदि देख कर लोगों का जी और भी उदास होता है। यद्यपि लिबरल दल से हमलोगों ने बहुत सी आशा बांध रक्खी है पर वह आशा ऐसी है जैसे रोग असाध्य हो जाने पर विषवटी की आशा। जो कुछ हो, मुसल्मानों की भांति इन्हों ने हमारी आंख के सामने हमारी देवमूर्तियां नहीं तोड़ीं और स्त्रियों को बलात्कार से छीन नहीं लिया, न घास की भांति सिर काटे गए और न जबरदस्ती मुंह में थूक कर मुसल्मान किए गए। अभागे भारत को यही बहुत है। विशेष कर अङ्गरेज़ों से हम लोगों को जैसी शुभ शिक्षा मिली है उस के हम इन के ऋणी हैं। भारत कृतघ्न नहीं है। यह सदा मुक्तकंठ से स्वीकार करैगा कि अङ्गरेज़ों ने मुसल्मानों के कठिन दंड से हम को छुड़ाया और यद्यपि अनेक प्रकार से हमारा धन ले गए किन्तु पेट भरने को भीख मांगने की विद्या भी सिखा गए।

मेरे प्रमातामह राय गिरधरलाल साहब जो यावनी विद्या के बड़े भारी पंडित और काशीस्थ दिल्ली के शहज़ादों के मुख्य दीवान थे, उन की इच्छा से दिल्ली के प्रसिद्ध विद्वान सैयद अहमद ने एक ऐसा चक्र बनाया था जिस में तैमूर से ले कर शाहआलम तक सब बादशाहों के नाम आदि लिखे थे। उस फारसी ग्रन्थ से इस में बहुत सी बातैं ली गई हैं। इस कारण तैमूर के पूर्व के बादशाहों का वर्णन इतना पूरा नहीं है जितना तैमूर के पीछे है। फिर मेरे मातामह राय खीरोधर-लाल ने बहादुरशाह के काल के आरम्भ तक शेष वृत्त संग्रह किया। और और बातें और स्थानों से एकत्र की गईं हैं। इस में परंपरागत बहुत से बादशाहों के नाम हैं जो और इतिहासों में नहीं मिलते।

यद्यपि इस से कुछ विशेष उपकार नहीं है किन्तु हम लोगों का इस से बहुत सा कौतूहल शान्त होगा जब हमलोग इस में बादशाहों की माता आदि के नाम जो अन्य इतिहासों में नहीं हैं पढ़ैंगे।

पुरदय उदय।

मेवाड़ का शुद्ध नाम मेदपाट है। और यहां के महाराज की संज्ञा सीसौंधिया है। कहते हैं कि इन के वंश में कोई राजा बड़े धार्म्मिक थे। एक समय वैद्यों ने छल से औषध में मद्य मिला कर उन को पिला दिया, क्योंकि जिस रोग में वे ग्रस्त थे उस की औषधि मद्य ही के साथ दी जाती थी। शरीर स्वच्छ होने पर जब उन्हों ने जाना कि हम ने मद्य पीया था, तो उस के प्रायश्चित्त के हेतु गलता हुआ सीसा पीकर प्राण त्याग किया। तभी से सीसौंधिया इस वंश की संज्ञा हुई। यह वंश भारतखण्ड में सब से प्राचीन और सब से माननीय है। इसी वंश में महात्मा मांधाता, सगर, दिलीप, भगीरथ, हरिश्चन्द्र, रघु आदि बड़े बड़े राजा हुए हैं और वंश में भगवान् श्रीरामचन्द्र ने अवतार लिया है। इसी वंश के चरित्र में कालिदास, भवभूति, वरञ्च, व्यास, वाल्मीकि ने भी वह ग्रन्थ बनाए हैं जो अब तक भारतवर्ष के साहित्य के रत्नभूत हैं। हिन्दुस्तान में यही वंश ऐसा बचा है जिस में लोग सत्ययुग से लेकर अब तक बराबर राज्यसिंहासन पर अचल छत्र के नीचे बैठते आए। उदयपुरवाले ही ऐसे हैं जिन्हों ने और और विलायत के बादशाहों की बेटी ली, पर अपनी बेटी मुसल्मान को न दी* ।

आज हम उसी बड़े पराक्रमशाली प्राचीन वंश का इतिहास लिखने बैठे हैं। इस में हमारे मुख्य सहायक ग्रन्थ टाड साहिब का राजस्थान, उदयपुर के वंशचरित्र के भाषाग्रन्थ और प्राचीन ताम्रपत्र हैं। जैसे संसार के सब राजों के इतिहास प्रारम्भ में अनेक आश्चर्य्य घटना पूरित होते हैं वैसे ही इस के भी प्रारम्भ में अनेक अश्चर्य्य इतिहास हैं। उन से कोई इस के ऐतिहासिक इतिवृत्ति में सन्देह न करै; क्योंकि प्रायः प्राचीन इतिवृत्त अनेक अद्भुत घटनापूर्ण होते हैं और इतिहास-

---

* कहते हैं कि जब औरङ्गज़ेब ने उदयपुर घेर लिया था तब राना साहब शिकार खेलते थे और उन को बादशाह की दो बेगम फौज से बिछड़ी जङ्गल में भटकती हुई मिलीं, जिन को राना ने अपनी बहिन कह के पुकारा और रक्षापूर्व्वक लाकर उन को औरङ्गज़ेब को सौंप दिया। मुसल्मान तवारीख़ लिखनेवालों ने अपनी क्षति इसी बहाने पूरी की और कहा कि उदयपुरवालों ने बेटी नहीं दी, तो क्या हुआ, बादशाह बेगम को अपनी बहिन बनाया तो सही। वरञ्च इसी हेतु उस दिन से उन बेगमों को उदयपुरी बेगम लिखा गया। भाषाग्रन्थों में इन बेगमों के नाम रंगी चंगी बेगम लिखे हैं।

वेत्ता लोग उन्हीं चमत्कृत इतिहासों का सारासार निस्सार पूर्वक सारा निर्णय बुद्धि बल से कर लेते हैं।

राज्यस्थान में मेवाड़ और जैसलमेर का राज्य सब से प्राचीन है। आठ सौ बरस से भारतवर्ष में विदेशियों का राज्य प्रारम्भ हुआ, तब से अनेक राज्य बिगड़े और बने पर यह ज्यों का त्यों है। गज़नी के बादशाह लोग सिन्धु नदी का गम्भीर जल पार कर के हिन्दुस्तान में आए। उस समय जहां मेवाड़ के राज्य का सिंहासन था वहीं अब भी है। बहुत से राजा लोग उस राज्य के चारो ओर, बहुत से वहां से और कहीं जा बसे, पर इन के महल अब भी वहीं खड़े हैं जहां पहले खड़े थे। सतयुग से आज तक इसी वंश के सब पुरुष सिंहासन ही पर मरे।

भगवान रामचन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र लव ने अपने राज्य-समय में लवपुर अर्थात् लाहौर बसाया था और सुमित्रायु नामक राजा लव से पचपन पीढ़ी पीछे हुआ। पुराणों में लिखा है कि सुमित्र ने कलियुग में राज्य किया और बहुत से प्रमाणों से मालूम होता है कि ये विक्रमादित्य के कुछ पहले वर्त्तमान थे। इन के पीछे कनकसेन तक राजाओं का ठीक वृत्तान्त नहीं मिलता। जहां तक नाम मिले हैं उस में पहला महारथ, उस का पुत्र अन्तरीक्ष, उस का अचलसेन और उस का पुत्र राजा कनकसेन हुआ। राजा कनकसेन ही सौराष्ट्र देश में आये, परन्तु इस का नहीं पता लगता कि उन्हों ने लाहौर किस हेतु से छोड़ा और किस पथ से सौराष्ट्र पहुंचे। यहां आकर इन्हों ने किसी पवांर वंश के राज का अधिकार जीत कर सन् १४४ में बीर नगर नामक नगर संस्थापन किया। कनकसेन को महामदनसेन, उन को शोणादित्य और उन को विजय भूप हुआ। इस ने जहां अब धोल का नगर है वहां पर विजयपुर नामक नगर संस्थापन किया और जहां अब सिहोर है तहां विदर्भ नगर बनाया। और बल्लभीपुर नामक एक बड़ा नगर बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया। अब धोल नगर से पांच कोस उत्तर-पश्चिम बालभी नामक जो गांव है वहीं इस प्रसिद्ध बल्लभीपुर का अवशेष है। शत्रुञ्जय माहात्म्य नामक जैन ग्रन्थ में भी इस नगर की बड़ी शोभा लिखी है। मेवाड़ के राजा लोग बल्लभीपुर से आए हैं यह प्रवाद बहुत दिन से था, पर कोई इस का पक्का प्रमाण नहीं था। अब उदयपुर के राज्य में एक टूटे शिवालय में एक प्राचीन खोदा हुआ पत्थर मिला है, उस से यह सन्देह मिट गया, क्योंकि उस में लिखा है कि जिन महात्माओं का ऊपर वर्णन हुआ उस की साक्षी बल्लभीपुर के प्राचीर हैं। राना राज्यसिंह के समय के बने हुए एक ग्रन्थ में भी लिखा है कि सौराष्ट्र देश पर बरबरों ने चढ़ाई करके बालकानाथ को पराजय किया।

इस बल्लभीपुर के विप्लव में सब लोग नष्ट हो गए और केवल एक प्रमर की दुहिता मात्र बची। बल्लभीपुर शिलादित्य के समय में नाश हुआ। विजय भूप

के पद्मादित्य, उन के शिवादित्य, उन के हरादित्य, उन के सुयशादित्य, उन के सोमादित्य, उन के शिलादित्य।

शिलादित्य वा शीलादित्य तक एक प्रकार का क्रम लिख आए हैं। अब आगे नामों में और उन के समय में कितना गड़बड़ और उस के ठीक निर्णय में कितनी विपत्ति है यह दिखाते हैं। आर्य्यमत के अनुसार चार युग में काल बांटा गया है। इस में ब्रह्मा की उत्पत्ति से सत्ययुग माना जाता है। अब अनेक पुराणों से और प्रसिद्ध विद्वानों के मत से प्रारम्भ से काल लिखते हैं।

पुराण के मत से इक्ष्वाकु को २१८५००० वर्ष हुए। जोन्स के मत से ६८७७ और विलफर्ड के मत से ४५७८, टाड के मत से ४०७७, वेण्टली के मत से ३४०५।

श्री रामचन्द्र का समय पुराण० ८६८६७९ वर्ष, जोन्स० ३६०६, विलफर्ड० ३२३७, वेण्टली० २८२७, टाड० ४०००।

महाराज युधिष्ठिर का समय पुराण० ४६७६, वेण्टली २४५३, और जोन्स टाड ३३०७ और विलफर्ड के मत से श्री रामचन्द्र का और युधिष्ठिर का समय एक है, विल्सन के मत से ३३०७, सुमित्र का समय पुराण ३६७७, जोन्स २६०६, विलफर्ड २५७७, विण्टली १९९६, विल्सन २८०२, ब्रह्मावालों के मत से २४७७।

शिशुनाग का समय पुराण० ३८३६, जोन्स २७४७, विलफर्ड २४७७, विल्सन २६५४, ब्रह्मावाले २४७७।

नन्द का समय पुराण ३४७७, जोन्स २५७६, विल्सन २२९२, ब्रह्मावाले २२८१।

चंद्रगुप्त का समय पुराण० ३३७६, जोन्स २४७७, विलफर्ड २२२७, विल्सन २१९७, टाड २१९७, ब्रह्मावाले २२६६।

अशोक का समय पुराण० ३३४७, जोन्स २५१७, विल्सन २१२७, ब्रह्मावाले २२०७।

जोन्स प्रिन्सिप साहब के मत से परशुराम जी को ३०५३ वर्ष हुए, और वेण्टली साहब के मत से वाल्मीकि रामायण बने केवल १५८६ वर्ष हुए।

कलियुग का प्रारम्भ पुलोम के समय तक भागवत के मत से ३७३४, ब्रह्मांड पुराण के मत से ३६५२, वायुपुराण के मत से ३६०६, जैनों के मत से २९५५ और चीन और ब्रह्मा के मत से २५६८ वर्ष से है। अंगरेजी विद्वानों के पुराणों के अनुसार इस समय तक पुलोम का समय जोड़कर एक सम्मति है कि कलियुग बीते ५००० वर्ष लगभग हुए, परन्तु इस मत को वे सत्य नहीं मानते, क्योंकि

फिर आप ही लिखते हैं कि स्वायंभु मनु को हुए ५८८३ वर्ष और को ४८२७ वर्ष हुए।

युधिष्ठिर के ३०४४ संवत् बीते विक्रम का संवत् चला और विक्रम के १३५ वर्ष पीछे शालिवाहन का शाका चला।

ऊपर जो कालनिर्णय में विद्वानों के परस्पर विरुद्ध मत वर्णन किए गए इस से यह बात प्रसिद्ध होगी कि प्राचीन समय निर्णय करना कितना दुरुह्य है, इस के आगे जो ब्रह्मा से लेकर सुमित्र पर्य्यन्त नामावली दी जाती है उस के मध्यगत काल का निर्णय न कर के सुमित्र के समय में जो हमारे मत के अनुसार २००० वर्ष बीते हुआ है काल का निर्णय प्रारम्भ करेंगे।

ब्रह्म, मरीचि, कश्यप, विवस्वान, श्राद्धदेव, इक्ष्वाकु, विकुक्षी १ पुरंजय, काकुस्थ, २ अनेनास, ३ पृथु, ४ विश्वगश्व, ५ अर्द, भाद्रआर्द, युवनाश्व, ६ श्रवस्थ, बृहदश्व, ७ कुवलयाश्व, दृढ़ाश्व, हर्यश्व, निकुम्भ, ८ संकटाश्व, ६ प्रसेनजित्, युवनाश्व, १० मान्धाता, पुरुकुत्स, चित्रिशदश्व, अनारण्य, पृष-दश्व, हर्यश्व, ११ वसुमान, १२ त्रिधन्वा, १३ त्रयारण्य, त्रिशंकु, हरिश्चंद्र, रोहिताश्व, हारीत, १४ चुंचु, विजय, १५ रुरुक, वृक, १६ बाहु, सगर, असमंजस, अंशुमान्, दिलीप, भगीरथ, श्रुत, नाभाग, अम्बरीष, सिन्धुद्विप, अयुताश्व, १७ ऋतुपर्ण, सर्वकाम, सुदास, कल्माषपाद, १८ असमक, १६ हरिकवच, २० दशरथ, इलिवथ, विश्वासह, २१ खट्वाङ्ग, दीर्घबाहु, रघु, अज, दशरथ, श्रीराम, २२ कुश, अतिथि, निषध, नल, नाभ, पुण्डरीक, क्षेमधन्वा, २३ द्वारिक, अहीनज,

---

१ नामान्तर काकुस्थ। २-३ ना० अनपृथु। ४ ना० विश्वगन्धि। ५ ना० चन्द्र। ६ ना० स्वसव या श्रव। ७ ना० धुन्धुमार। ८ संकटाश्व के पीछे वरुणाश्व और कृताश्व दो नाम और मिलते हैं। ६ ना० सेनजित। १० ना० सुबन्धु इन को चक्रवर्ती लिखा है॥ ११ ना० महंण या अरुण। १२ ना० त्रिविन्धन १३ ना० सत्यव्रत। १४ ना० चम्प, किसी पुस्तक में चम्प के पीछे सुदेव तब विजय लिखा है॥ १५ ना० भरुक। १६ ना० बाहुक। १७ ऋतुपर्ण के पीछे किसी पुस्तक में नल, तब सर्व्वकाम लिखा है॥ १८ ना० आमक। १६ ना० मूलक। २० दशरथ और इलिबथ दो के बदले किसी पुस्तक में ऐड़ाबिड़ एक ही नाम लिखा है॥ २१ ना० खरभङ्ग। २२ कुश के समय से अनेक ग्रन्थकार द्वापर की प्रवृत्ति मानते हैं* २३ ना० देवानीक।

---

* इन्हीं कुश का एक पुत्र कूर्म्म नामक था जिस से कछवाहे लोग अपनी वंशावली मानते हैं।

कुरुपरिपात्र, २५ दल, २६ छल, उक्थ, २७ बज्रनाभि, २८ शंखनाभि, २९ व्युथिताभि, ३० विश्वासह, हिरण्यनाभि, ३१ पुष्प, ३२ ध्रुवसंधि, ३३ अपवर्म, शीघ्र, ३४ मरु, प्रसव श्रुत, ३५ सुसंध, आमर्ष, ३६ महाश्व, बृहद्बाल, बृहद्शान, उरुक्षेप, वत्स, वत्सव्यूह, प्रतिव्योम, ३७ देवकर, सहदेव, ३८ बृहदश्व, ३९ भानुरत्न, सुप्रतीक, मरुदेव, सुनक्षत्र ४० ।

केशीनर, ४१ अन्तरीक्ष, ४२ सुवर्ण, अमित्रजित्, बृहद्राज, ४३ धर्म, ४४ कृतञ्जय, ४५ रणञ्जय, सञ्जय, शाक्य, ४६ क्रोधदान, शाक्य सिंह, ४७ अतुल, प्रसेनजित, क्षुद्रक, कुन्दक, ४८ सुरथ, सुमित्र ।

महाराज जैसिंह के ग्रन्थ के अनुसार सुमित्र के पीछे महारितु, अन्तरित, अचलसेन, कनकसेन, महामदनसेन, सुदन्त, वा प्रथम सोणादित्य (विजयसेन, वा अजयसेन, वा विजयादित्य), पद्मादित्य, शिवादित्य, हरादित्य, सूर्य्यादित्य, शिलादित्य, ग्रहादित्य, नागादित्य, भागादित्य, देवादित्य, आशादित्य, कालभोज वा भोजादित्य, द्वितीय ग्रहादित्य और बापा । सुमित्र से महाऋतु तक चार नाम नहीं मिलते और इस क्रम से श्रीरामचन्द्र जी से बापा अस्सी पीढ़ी में हैं, तक्षक से ले कर

---

२४ ना० अहीनग । २५ ना० बल । २६ ना० रणच्छल । २७ बज्रनाभि के पीछे कोई अर्क तब शङ्खनाभि को लिखता है ॥ २८ ना० सगण । २९ ना० विधृत । ३० ना० विशित्राश्व । ३१ ना० पुष्य । ३२ ध्रुवसन्धि, और अपवर्म्म के बीच में कोई सुदर्शन नामक और एक राजा मानता है ॥ ३३ ना० अग्निवर्म्म । ३४ ना० मनु । ३५ ना० सन्धि । ३६ ना० अवस्वान, इसी महाश्व के पीछे विश्वबाहु, प्रसेन जित और तक्षक तीन राजा बृहद्बाल के पहले अनेक ग्रंथकार मानते हैं और कहते हैं कि कलियुग का प्रारंभ इसी के समय से हुआ ॥ ३७ प्रतिव्योम और देवकर के बीच में कोई भानु को भी जोड़ते हैं इसी देवकर का नामान्तर दिवाकर है ॥ ३८ सहदेव, तब बीर, तब बृहदश्व, यह किसी का मत है ॥ ३९ ना० भानुमत, वा भानुमान, ग्रन्थकारों का मत है कि ईरान का जो प्रसिद्ध बहमन नामक हुआ था वह यही भानुमान है । इस के और सुप्रतीक के बीच में कोई प्रतिशोश्व नामक राजा मानते हैं ॥ ४० ना०पुष्कर । ४१ ना० रेख । ४२ ना०सुतुपा । ४३ ना० बाढ़ि । ४४ कोई ग्रन्थकार कहते हैं कि यही कृतञ्जय प्रथम सौराष्ट्र में आया ॥ ४५ ना० जयरान । ४६ ना० शुद्धोदन इसी का पुत्र प्रसिद्ध शाक्यसिंह है, जो भादों सुदी ५ को जन्मा था, और बौद्ध और जैन के नाम से जिस का मत संसार की एक तिहाई में व्याप्त है ॥ ४७ ना० लाङ्गल वा सिङ्गल वा रातुल ॥ ४८ ना० सुरत वा सुराष्ट्र कहते हैं, कि इसी के नाम से सौराष्ट्र देश बसा है ।

के बाहुमान वा भानुमान तक आठ राजाओं का नाम वंशावली में नहीं मिलता, अनेक ग्रन्थकारों का मत है कि इसी तक्षक के समय से ईरान, तूरान, तुरकिस्तान इत्यादि देशों में इस का वंश राज करता था और तुरकिस्तान का प्राचीन नाम तक्षकस्थान बतलाते हैं और यूनान में जो अर्तक्षर्क नामक राजा हुआ है वह भी इसी तक्षक का नामान्तर मानते हैं।

राजा जयसिंह का मत है कि कनकसेन के समय में अर्थात् सन् १४४ में सौराष्ट्र देश में इस वंश का राजा हुआ और वही लिखते हैं कि विजय वा अजय-सेन का नामान्तर नौशेरवां था। इस ने विजयपुर वा विराटगढ़ बसाया और सन् ३१९ में बल्लभीशक स्थापन किया। उन्हीं का मत है कि शिलादित्य को यवनों ने जीता और सौराष्ट्र से यह राज छिन्न भिन्न हो गया और इस का पुत्र केशव वा गोप वा ग्रहादित्य भांडेर के जङ्गल में रहा और उस के पुत्र नागादित्य के समय से इस वंश का गोत्र गहलौत कहलाया और फिर आशादित्य ने मेवाड़ में अपने वंश की पहली राजधानी आशापुर और आहार बसाया और इस के पीछे बापा ने सन् ७१४ में चित्तौड़ का राज्य पाया, दूसरे ग्रहादित्य का नाम द्वितीय नागादित्य भी लिखा है।

बापा तक नाम का क्रम हम पूर्व्व में लिख आए हैं, परन्तु प्राचीन ताम्रपत्रों से ले कर यदि वंशावली लिखी जाय, तो सेनापति वा भट्टारक तथा धरासेन, द्रोण-सिंह (प्रथम), ध्रुवसेन, धरापति, गृहसेन, श्रीधरसेन (प्रथम), शिलादित्य (प्रथम), चारुग्रह वा खड्ग्रह (द्वितीय), श्रीधरसेन (द्वितीय), (ध्रुवसेन तृतीय), श्रीधरसेन (तृतीय), शिलादित्य (इस के पीछे तीन नाम छूट गए हैं), शिलादित्य (तृतीय) और (चतुर्थ) शिलादित्य।

टाड साहब की वंशावली और बल्लभीपुर की वंशावली में कितना अन्तर है यह ऊपर के नामों से प्रगट होगा। पादरी अण्डरसन साहब ने दो नए ताम्रपत्र पढ़कर इस वंशावली को शोधा है और वे कहते हैं कि इस में जहां २ श्रीधर-सेन लिखा है वह सब नाम धरासेन है और शिलादित्य का नाम क्रमादित्य वा विक्रमादित्य है और इन्हीं को धर्म्मादित्य भी कहते हैं (१)। और वंशावली के प्रथम पुरुष को सेनापति वा भट्टारक वा धर्म्मादित्य भी लिखा है। दोनों वंशावली में बल्लभीपुर का अन्तिम राजा शिलादित्य है और इन दोनों के संवत् भी पास २ मिलते हैं। पारसी इतिहासवेत्ताओं के मत से इसी शिलादित्य का पुत्र ग्रह वा ग्रहा-दित्य, जिस ने ग्रहलोत वा ममोधिया गोत्र चलाया, नौशेरवां का रक्षित पुत्र था, परन्तु महाराज जैसिंह ने राजा अजयसेन का ही नामान्तर नौशेरवां लिखा है।

1. Bomb. Jour. VLIII P. 216.

पारसी इतिहासवेत्ताओं के मत से नौशेरवां के पुत्र नोशीज़ाद (हमारे यहां का नागादित्य) और यज़दिजिर्द की बेटी माहबानू, जो इन्हीं राजाओं में से किसी को व्याही थी, इस वंश के मूल पुरुष हैं। विलफर्ड साहब के मत से बल्लभीशक के स्थापन कर्त्ता अजयसेन वा दूसरी वंशावली के अनुसार धरासेन को ही पुराणों में शूद्रक वा शूरक लिखा है, जिस ने ३२९० वर्ष कलियुग बीते सन् १९१ वा २९१ में प्रथम विक्रमादित्य के नाम से राज्य किया था (२)। मेजर वाटसन के मत से सेनापति भट्टारक के सौराष्ट्र जीतने के दो वर्ष पीछे प्रसिद्ध स्कन्द गुप्त मरा (३), इस से गुप्त संवत के आस ही पास वल्लभी संवत् भी है और इस विषय के उन्होंने अनेक प्रमाण भी दिए हैं। इस वल्लभी संवत् के निर्णय में इतिहास-वेत्ता विद्वानों के बड़े २ झगड़े हैं, जिस से कई दरजन कागज़ के बड़े ताव रंग गए हैं। लोग सिद्धान्त करते हैं कि गुप्तवंश जब प्रबल था तब वल्लभीवंश के लोग उस के वंश के अनुगत थे, यहां तक कि भट्टारक सेनापति गुप्त वंश बिगड़ने के पीछे स्वाधीन हुआ और अपने दूसरे बेटे द्रोणसिंह को महाराज किया। पांच छः ताम्रपत्र इस वंश के मिले हैं उन के परस्पर नामों में बड़ा फरक है, जैसा गुह-सेन धरासेन शिलादित्य धरासेन शिलादित्य वा गुहसेन के दो पुत्र शिलादित्य और खड़गूह, खड़गूह के दो पुत्र धरासेन और ध्रुवसेन वा शिलादित्य के देरभट्ट, उन के शिलादित्य खड़गूह और ध्रुवसेन और शिलादित्य के बाद फिर शिलादित्य।

इन नामों के परस्पर अत्यन्त ही विरुद्ध होने से कोई निश्चित वंशावली नहीं बन सकती, अतएव इन झगड़ों को छोड़ कर राजा कनकसेन के समय से हम ने पूर्व्व वृत्तान्त प्रारंभ किया। कारण यह कि जब एक बड़ा वंश राज्य करता है तो उस की शाखा प्रशाखा आस पास छोटे २ राज्य निर्माण कर के राज करती हैं। इस में क्या आश्चर्य है कि ताम्रपत्रों में ऐसे ही अनेक श्रेणियों की वंशावली का वर्णन हो जो वास्तव में सब वल्लभी वंश से सम्बन्ध रखती हैं। ऐसा ही मान लेने से पूर्वोक्त समय और वंश निर्णय की असमञ्जसता जटिलता घनता असम्बद्धता और विरोधिता दूर होगी।

सुमित्र से लेकर शिलादित्य तक एक प्रकार का निर्णय ऊपर हो चुका और इस से निश्चय हुआ कि महाराज सुमित्र कलियुग के अन्त में हुए थे और वल्लभी-पुर का नाश भए दो हजार वर्ष के लगभग हुए। कहा है कि वल्लभीपुर में सूर्य्यकुण्ड नामक एक तीर्थ था। युद्ध के समय शिलादित्य के आवाहन करने से

2 as Ras VL IX. pp. 135, 230.
3 In Ant VL III P. XXXIII.

इस कुण्ड में से सूर्य्य के रथ का सात सिर का घोड़ा निकलता था और इस अश्व के रथ पर बैठने से फिर शिलादित्य को कोई जीत नहीं सकता था। और यह भी कथित है कि सूर्य की दी हुई शिलादित्य के पास एक ऐसी शिला थी जिस को दिखा देने से वा स्पर्श करा देने से शत्रुओं का नाश हो जाता था। और इसी वास्ते इन का नाम शिलादित्य था। इन के किसी शत्रु ने इन्हीं के किसी निज भेदिये की सम्मति से उस पवित्र कुण्ड को गोरक्त द्वारा अशुद्ध कर दिया, जिस से बल्लभीपुर के नाश के समय राजा के बारम्बार आवाहन करने से भी वह अश्व नहीं निकला और राजा सपरिवार युद्ध में नियत हुआ और बल्लभीपुर नाश हुआ। जैन-ग्रन्थों के अनुसार संवत् २०५ में बल्लभीपुर नाश हुआ और श्री महाराणा उदयपुर के राज्य कृत संग्रह के अनुसार राजा शिलादित्य का नाम सलादित्य था और बल्लभीपुर का नाम विजयपुर।

अंगरेज़ी विद्वानों का मत है कि नगरावरोधकारी शत्रुदल ने हिन्दुओं को दुःख देने के हेतु गोरक्त से बल्लभीपुर के जल कुण्डों को अशुद्ध कर दिया होगा, जिस से हिन्दू लोग घबड़ा कर एक साथ लड़ने को निकल खड़े हुए होंगे। अलाउद्दीन बादशाह ने गागरौन देश के खींचो राजाओं से यही छल किया था। बल्लभीपुर के शत्रुओं का यही छल मानो इस कथा का मूल है।

बल्लभीपुर को किस असभ्य जाति ने नाश किया इस का निर्णय भली भांति नहीं होता। प्राचीन पारस निवासी लोग वृष को पवित्र समझते थे और सूर्य्य के सामने उस को बलिदान भी करते थे। इस से निश्चय होता है कि ये लोग पारसी तो नहीं थे। प्राचीन ग्रन्थों में पाया जाता है कि खिष्टीय दूसरी शताब्दी में सिन्धु नद के किनारे पारद वा पार्थियन लोगों का एक बड़ा राज्य था। विष्णुपुराण में लिखा है कि सूर्य्यवंशी सगर राजा ने म्लेच्छों को चिन्ह विशेष देकर भारतवर्ष से निकाल दिया था, जिस में यवन सर्व शिरोमुण्डित केश अर्द्धशिर मुण्डित पारद मुक्त केश और पन्हव वा पल्हव श्मश्रुधारी बनाए गए थे। उसी काल में श्वेत वर्ण की एक हून जाति भी सिन्धु के किनारे राज्य करती थी। हून जाति नामक प्राचीन असभ्य मनुष्यों का लेख पुराणों और यूरप के इतिवृत्तों में भी पाया जाता है। सम्भावना होती है कि इन्हीं दो जातियों में से किसी ने बल्लभीपुर नष्ट किया होगा, पारद और हून दो जातियों का आदिनिवास शाकद्वीप है। महाभारत में शाकद्वीपी और पूर्व्वोक्त हूणादिकों को इसी प्रकार यवन लिखा है। पुराणों में इन सबों को एक प्रकार का क्षत्री लिखा है। ये सब असभ्य जाति शाकद्वीप से किस काल में यहां आए इस का पता नहीं लगता। विण्टली साहब का मत है कि शाकद्वीप इङ्गलैण्ड का नामान्तर है। विशेष आश्चर्य्य का विषय यह है ये सब शाकद्वीपी

काल पाके आर्य्य जाति में मिल गए, यहां तक कि ब्राह्मण और क्षत्रियों में भी शाकद्वीपी वर्त्तमान हैं।

यह निश्चय हुआ कि इन्हीं म्लेच्छ जाति के लोगों में से किसी जाति ने बल्लभीपुर नाश किया। सांदोंराई से जो वंशपत्रिका मिली है उस में लिखा है कि बल्लभीपुर नाश होने के पीछे वहां के लोग मारवाड़ में आ कर सांदोंरावाली और नांदोर नगर बसा कर रहने लगे और फिर गाजनी नामक एक नगर का और भी उल्लेख है। एक कवि अपने ग्रंथ में लिखता है "असभ्यों ने गाजनी हस्तगत किया, शिलादित्य का घर जनशून्य हुआ और जो बीर लोग उस की रक्षा को निकले वे मारे गए"।

हिंदू सूर्य्य के वंश का यहां चौथा दिवस अवसान हुआ। प्रथम दिवस इक्ष्वाकु से श्री रामचन्द्र तक अयोध्या में बीता, दूसरा दिन लव से सुमित्र तक अन्य राजधानियों में, तीसरा सुमित्र से विजयभूप तक अंधेरे मेघों से छिपा हुआ कहां बीता न जान पड़ा और यह चौथा दिन आज बल्लभीपुर में शिलादित्य के अस्त होने से समाप्त हुआ। पांचवें दिन का इतिहास बहुत स्पष्ट है, जो गोहा और बाप्पा के विचित्र चित्रों से चित्रित हो कर दूसरे अध्याय में वर्णन होगा॥

इति उदयपुरोदय प्रथम अध्याय।

दूसरा अध्याय।

बल्लभी वंश की रात्रि का अवसान हुआ। उदयपुर के इतिहास की यहां से शृङ्खला बंधी। पूर्व्व में लिख आए हैं कि बल्लभीपुर को यवनों ने घेरा और राजा शिलादित्य ने सकुटुम्ब सपरिवार बीरों की गति पाया। अब और सीमन्तिनी गण राजा की सहगामिनी हुईं, किन्तु रानी पुष्पवती (वा कमलावती) मात्र जीवित रही।

रानी पुष्पवती चन्द्रावती नगर (सांप्रत आबूनगर) के राजा की दुहिता थीं। बल्लभीपुर के आक्रमण के पूर्व्व ही यह रानी गर्भवती होकर अपने पिता के राज में जगदम्बा (आशाम्बिका) के दर्शन को गई थी और वहां से लौटती समय मार्ग में अपने प्राणबल्लभ और बल्लभीपुर का विनाश सुना और उसी समय अपना प्राण देना चाहा। परन्तु बीरनगर की एक ब्राह्मणी लक्ष्मणावती जो रानी के साथ थी उस के समझाने से प्रसव काल तक प्राण धारण का मनोरथ कर के मालिया प्रदेश के एक पर्व्वत की गुहा में काल यापन करना निश्चय किया।

इसी गुहा में गुहा का जन्म हुआ और रानी ने सद्योजात सन्तान उस ब्राह्मणी को देकर आप अग्नि प्रवेश किया। मरती समय रानी ब्राह्मणी को समझा गई थी कि उस पुत्र को ब्राह्मणोचित शिक्षा दे कर क्षत्रिय कन्या से व्याह देना।

लक्ष्मणावती ब्राह्मणी उस बालक का लालन पालन करने लगी और द्वेषियों के भय से भांडेरगढ़ और पराशर बन में क्रम से रही। गुहा में जन्म होने के कारण बालक का नाम भी गुहा (ग्रहादित्य वा केशवादित्य) रक्खा। गुहा की प्रकृति दिन दिन अति उत्कट होने लगी और बहुत से बनवासी बालकों को इन्हों ने अपना अनुगामी बना लिया। इसी वृत्तान्त पर उस देश में यह कहावत अब भी प्रचलित है कि सूर्य्य की किरण को कौन छिपा सकता है।

मेवाड़ की दक्षिण सीमा पर ईदर के राज्य पर उस समय भीलों का अधिकार था और उस समय के भीलों के राजा का नाम मण्डलिका था। प्रतिपालक शान्तिशील ब्राह्मणों के साथ गुहा का जी नहीं मिलता था। इस से सम स्वभाव उग्र प्रकृति वाले भीलों से अपनी उद्दण्ड प्रचण्ड प्रकृति की एकता देख कर गुहा उन्हीं लोगों के साथ बन बन घूमते थे और काल क्रम से भीलों के ऐसे स्नेहपात्र हो गए कि सब पर्व्वत ईदर प्रदेश भीलों ने इन को समर्पण कर दिया। अबुलफ़ज़ल और भट्ट गन गुहा के भील राजप्राप्ति का वर्णन यों करते हैं। एक दिन खेल में भील बालक लोग एक बालक को राजा बनाना चाहते थे और सब ने एक वाक्य हो कर गुहा ही को राजा बनाना स्वीकार किया। एक भील बालक ने चट से अपनी उंगली काट के ताजे लहू से गुहा के सिर में राजतिलक लगाया। यह खेल का व्यापार पीछे कार्य्यत: सत्य हो गया, क्यों कि भील राजा मंडलिका ने यह समाचार सुन कर प्रसन्न हो कर ईदर का राज्य गुहा को दे दिया। कहते हैं कि गुहा ने व्यर्थ भीलराज मण्डलिका को पीछे से मार डाला। गुहा के नाम के अनुसार उन के वंश के लोग गोहलोंट (गहिलौत वा गिहिलोट) कहलाए। टाड साहब कहते हैं कि गहिलौट ग्राहिलोत का अपभ्रंश है।

गुहा (केशवादित्य) के पुत्र नागदित्य हुए। इन्हीं ने पराशर बन में नागह्रद नामक एक बड़ा ह्रद बनवाया। इन्हीं के नाम के कारण लक्ष्मणावती ब्राह्मणी के सन्तान वा वह बन और तालाब सब नागदहा के नाम से प्रसिद्ध है और सिसौधियों को भी नागदहा कहते हैं। नागादित्य के भोगादित्य। इन्हों ने कुटिला नदी पर पक्का घाट बनाया और इन्द्र सरोवर नामक तालाब का जीर्णोद्धार किया। पूर्वोक्त तड़ाग इन के नाम से अब तक भोंडेला कहलाता है। इन के पुत्र देवादित्य, जिन्हों ने देलवाड़ा ग्राम निर्माण किया और उन के आशादित्य जिन्हों ने अहाड़पुर नगर बसा कर अपनी राजधानी बनाया। यह अहाड़पुर अब राना

लोगों का समाधिस्थल है। कहते हैं अहाड़पुर में जो गङ्गोन्द्रव तीर्थ है वह इसी राजा का निर्माण किया है और इन्हीं की भक्ति से उस में गङ्गा जी का आविर्भाव हुआ था। इस प्रान्त में इस तीर्थ का बड़ा माहात्म्य है। यह तीर्थ उदयपुर से एक कोस पूर्व्व की ओर है। आशादित्य के पुत्र कालभोजादित्य और उन के पुत्र ग्रहादित्य (वा द्वितीय नागादित्य) घासा गांव इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है। गुहा राजा से लेकर नागादित्य पर्य्यन्त छः (टाड साहब के मत से सात) राजाओं ने इसी पर्वत भूमि का राज्य किया, पर इन में से कोई अत्यन्त प्रसिद्ध न था, किन्तु नागादित्य के पुत्र बाप्पा बड़ा प्रसिद्ध और नामी मनुष्य हुआ, वरञ्च उदयपुर के राज का इसे मूलस्तम्भ कहें तो अयोग्य न होगा। बाप्पा का वर्णन उदयपुर से जो लिख कर आया है उसे हम यहां पर अविकल प्रकाश करते हैं "ग्रहादित्य के बाष्प नामक पुत्र हुआ। कहते हैं कि बाष्प नन्दी गण के अवतार थे। यह कथा सविस्तर वायु पुराणांतर्गत एकलिङ्ग माहात्म्य में लिखी है। जब राजा ग्रहादित्य के एक शत्रु जंजावल नाम राजा ने घासा नगर को आन आवर्तन किया वहां राजा ग्राहादित्य बड़े पराक्रम के साथ मारे गए और घासा में जुंजावल का अधिकार हो गया तब आपत्तिकाल अवलोकन कर प्रमरवंशोद्भवा ग्रहादित्य की राज्ञी ने अपने पुत्र वाष्प को शिशुता के भय से निज पुरोहित वशिष्ठ के गृह में गोपन कर पिहित रहना स्वीकार किया। बहुत समय व्यतीत होने पीछे वाष्प ने वशिष्ठ की गो चारन का नियम लिया लिखा है कि उस गो निकर में एक काम-धेनु नाम धेनु थी सो जब वाष्प गो चारन को जाते वहां उक्त गाय एक वेणु चय में प्रवेश करती। वहां एक स्फटिक का स्वयम्भू लिङ्ग था उस पर अपने स्तनों से दुग्ध श्रवती इस वास्ते गुरुपत्नी ने एक दिन बाष्प को उपालम्भ दिया कि इस धेनु के स्तनों में दुग्ध नहीं, सो कहां जाता है। द्वितीय दिवस वाष्प ने उस गाय को दृष्टि से पिहित न होने दिया। वह सुरभी तो शिव लिङ्ग पर पूर्वोक्त दुग्ध श्रवने लगी अरु वाष्प ने इस चरित्र को देख साक्षी बनाने को हारीत नामा ऋषि ज्यों भृङ्गी गण का अवतार लिखा है वहां तपस्या करते हुये को देख वाष्प ने निमन्त्रण कर वह चरित्र दिखाया तब भृङ्गी गण ने कहा कि हे वाष्प इस श्रीमदे-कलिंगेश्वर के दर्शनार्थ तो मैं यहां ऐसा कठिन तप करता था अरु तू भी इन्हीं का सेवक नन्दीगण का अंशावतार है तब वाष्प को भी स्वरूप ज्ञान हुआ। फिर श्रीशंकर की स्तुति कर बर पाय हारीत ऋषि तो कैलास सिधारे और वाष्प ने राज्य की अपेक्षा करी इस्से उन को शंकर ने वरदान दिया कि तेरा शरीर अभिन्न और महत्तर होगा और मुझे इस भर्तृहरि पर्वत में खनन करने से बहुत द्रव्य मिलेगा जिस्से सेना एकत्र कर अरु चित्तौड़ का राज्य अपने अधिकार में कीजियो और आज से यह तुम्हारे नाम पर रावल पद प्रख्यात रहैगा। यह

लिंग प्रादुर्भाव बिक्रमार्क गताब्द २६० वैशाख कृष्ण १ को हुआ था सो उक्त महीने की इसी तिथि को अब भी प्रादुर्भावोत्सव प्रति वर्ष होता है। फिर रावल वाप्प ने इष्टाज्ञा ले द्रव्य निष्कासन कर महत्तर सेना बनाय चित्तौड़ के राजा मानमोरी को जय किया और उसी दुर्ग को अपनी राजधानी बनाया इस महिपाल ने समस्त भारतवर्ष को विजय किया।"

वापा के विषय में ऐसे ही अनेक आश्चर्य्य उपाख्यान मिलते हैं। पृथ्वी पर जितने बड़े बड़े राजवंश हैं उन में ऐसे कोई भी न होंगे जो कवि जनों की विचित्र से अलंकृत न हों, क्योंकि उस समय में उन के विषय में विविध दैवी कल्पनाओं का आरोप ही मानों उन के प्राचीनता और गुरुत्व का मूल था। रोम राज्य के स्थापनकर्त्ता रमूलस देवता के पुत्र थे और बाघिन का दूध पी कर पले थे। ग्रीस राज्य के हर्क्यूलिस और इङ्गलैंड राज्य के आरथर राजाओं के दैत्यों से युद्ध इत्यादि अनेक अमानुष कर्म्म प्रसिद्ध हैं। जगद्विजयी सिकन्दर को दो सींग थीं, औफार के अफरासियाब ने जब देव सदृश अनेक कर्म्म किए, तो हिन्दुस्तान के बड़े बड़े उदयपुर, नैपाल, सितारा, कोल्हापुर, ईजानगर, डूंगरपुर, प्रतापगढ़ और अलीराजपुर इत्यादि राजवंशों के मूलपुरुष वापा के विषय में विचित्र बातैं लिखी हों तो कौन आश्चर्य्य की बात है। बापा के सैकड़ों राजकुल के आदि पुरुष लोकातीत संभ्रम भाजन और चिरजीवी फिर उन के चरित्र अलौकिक घटनाओं से क्यों न संघटित हों।

वापा बाल्यकाल से गोचरण करते थे, यह पूर्व्व में कह आए हैं। कहते हैं कि शरत्काल में गोचरण के हेतु बन में गमन करके वापा ने एक साथ छ सौ कुमारियों का पाणिग्रहण किया। उस देश में शरद ऋतु में बालक और बालिकागन बाहर जा कर झूला झूलते हैं। इसी रीति के अनुसार नगेन्द्रनगर के सोलङ्की राजा की क्वारी कन्या अपनी अनेक सखियों के साथ झूलने को आई थीं, परन्तु उन के पास डोरी नहीं थी कि वह झूला बांधैं। वापा को देख कर उन सबों ने डोरी मांगी, इन्हों ने कहा पहिले व्याह खेल खेलो तो डोरी दें। बालिका लोगों के पहिले हिसाब सभी खेल एक से थे इस से इन लोगों ने व्याह खेल ही खेलना आरम्भ किया। राजकुमारी और वापा की गांठ जोड़कर गीत गाकर दोनों की सब ने सात फेरी किया। कुछ दिन पीछे जब राजकुमारी का व्याह ठहरा तब एक वरपक्ष के ज्योतिषी ने हाथ देख कर कहा कि इस का तो व्याह हो चुका है। कुमारी का पिता यह सुन के बहुत ही घबड़ाया और इस की खोज करने लगा। बापा के साथी गोपाल गण यह चरित्र जानते थे, परन्तु वापा ने इस के प्रगट करने की उन से शपथ ली थी। यह शपथ भी विचित्र प्रकार की थी। एक गड़हे के निकट बापा ने अपने सब संगियों को

बैठाया और हाथ में एक एक छोटा पत्थर दे कर कहा कि तुम लोग शपथ रोक कि "तुमारा भला बुरा कोई हाल किसी से न कहैंगे, तुम को छोड़ के न जायंगे, और जहां जो कुछ सुनैंगे सब आ कर तुम से कहैंगे। यदि इस में कोई बात टालैं, तो हमारे और हमारे पुरुषों के धर्म्म कर्म्म इस ढेले की भांति धोबी के गड़हे में पड़ैं" बापा के संगियों ने यही कह कह के ढेला गड़हे में फेंका और उस के अनुसार बापा का विवाह करना उन के संगियों ने प्रकाश न किया। किन्तु छ सौ सरला कुमारियों पर जो बात विदित है वह कभी छिप सकती है? धीरे धीरे यह विवाह खेल की कथा राजा के कान तक पहुंची। बापा को तीन वर्ष की अवस्था से भाण्डीर दुर्ग * से ला कर ब्राह्मणों ने इसी नगेन्द्र नगर † के समीप निविड़ पराशर कानन में त्रिकूट पर्व्वत के नीचे अपने घर में रक्खा था इस से बापा उसी सोलङ्की राजा के प्रजा थे। राजा ने यह समाचार सुन लिया, यह जान कर बापा नगेन्द्र नगर को छोड़ कर पर्व्वतों में छिप रहे और उसी समय से उन का सौभाग्य संचार होने लगा। किन्तु इन छ सौ कुमारियों का फिर पाणिग्रहण न हुआ और बापा ही के गले पड़ीं। इसी कारण सैकड़ों राजा ज़मींदार, सरदार सिपाही क्षत्री अपने को बापा ‡ की सन्तान बतलाते हैं।

नगेन्द्र नगर से चलने के समय में दो भील बाप्पा के सहगामी हुए थे इन में एक उन्द्री प्रदेशवासी और इस का नाम बालव अपर × अगुणा—पानीर

* बापा भांडोर दुर्ग में भीलों के हाथ से पले थे। जिस भील ने बापा को पाला वह जदुवंशी था। उस प्रदेश में भीलों की दो जाति हैं। एक उजले अर्थात् शुद्ध भील वंश के दूसरे संकर भील। यह संकर भील राजपूतों से मिल कर उत्पन्न हुए हैं और पंवार चौहान रघुवंशी जदुवंशी इत्यादि राजपूतों की जाति के नाम उन की जाति के भी होते हैं। यह भाण्डीर दुर्ग मेवार में जारोल नगर से ८ कोस दक्षिणपश्चिम है।

† नगेन्द्र नगर का नाम नागदहा प्रसिद्ध है। यह उदयपुर से पांच कोस उत्तर की ओर है। यहां से टाड साहब ने अनेक प्राचीन लिपि संग्रह किया था। इन सबों में एक पत्थर ईसवी नवम शतक का है जिस में रानाओं की उपाधि (गोहिलोट) लिखी है।

‡ बाप्पा दुलार में लड़के को कहते हैं। एक प्राचीन ग्रन्थ में बाप्पा का नाम शिलाधीश लिखा है, किन्तु प्रसिद्ध नाम इन का बापा ही है।

× टाड साहब कहते हैं, भारतवर्ष के मध्य अगुनापनोर प्रदेश अद्यावधि प्राकृतिक स्वाधीन अवस्था में है। अगुना एक सहस्र ग्राम में विभक्त। तत्रस्थ

नामक स्थान निवासी, इस का नाम देव। इन दोनों भीलों का नाम बाप्पा के नाम के साथ चिरस्मरणीय हो रहा है। चित्तौर के सिंहासन पर अभिषिक्त होने के समय वालव ने स्वीय करांगुलि कर्त्तन कर के सद्यो शोणित से बाप्पा के ललाट में राजतिलक प्रदान किया था तदनुसार अद्यावधि पर्यन्त बाप्पा वंशीय राजा गण के सिंहासनारोहण के दिवस इन्हीं दो भीलों के सन्तान गण आ कर अभिषेक विधि सम्पादन करते हैं। अगुणा प्रदेश के भील स्वीय शोणित से राजललाट में तिलकार्पण और राजकीय बाहु धारण कर के सिंहासन में अधिष्ठित कराते हैं। उन्द्री प्रदेश का भील तावत्काल दण्डायमान हो कर राजतिलक का उपकरण * द्रव्य का पात्र लिये रहता है। जो प्रथा पुरुषानुक्रम से इस प्रकार से प्रतिपालित होती चली आती है उस का मूल किस प्रकार से उत्पन्न हुआ था यह अनुसन्धान कर के अज्ञात होने से अन्तःकरण कैसा विपुल आनन्द रस से आप्लुत हो जाता है।

मिवार के राज्याभिषेक के समुदय प्राचीन नियम रक्षा करने में विपुल अर्थ का व्यय होता है इसी कारण उस का अनेक अंग परित्यक्त हो गया है। राणा जगतसिंह के पश्चात् और किसी का अभिषेक पूर्ववत् समारोह के साथ सम्पन्न नहीं हुआ। उन के अभिषेक में नव्वे लक्ष रुपया व्यय हुआ था। मेवार के अति समृद्ध समय में समग्र भारतवर्ष का आय ६० लक्ष रुपया था।

नगेन्द्र नगर से बापा के जाने का कारण पहिले वर्णित हुआ है, वह संपूर्ण संगत है, परन्तु भट्ट कविगण के ग्रन्थ में उन के प्रस्थान का अन्य प्रकार का विवरण दृष्ट होता है। उन लोगों ने कविजन सुलभ कल्पना प्रभाव से दैव घटना का आरोप कर के उस की विलक्षण शोभा सम्पादन किया है। काल्पनिक विवरण से अलंकृत न हो ऐसा सम्भ्रान्त वंश भारतवर्ष में अतीव दुर्लभ है सुतरां हम भी भट्टगण वर्णित बाप्पा के सौभाग्यसञ्चार का विवरण निम्न में प्रकटित करते हैं :—

भीलगण जातीय जनैक प्रधान के आधीन में निर्विघ्नता से वास करते हैं। इस प्रधान की उपाधि भी राणा है, पर किसी राजा के साथ इन लोगों का विशेष कोई संस्रव नहीं। विग्रह उपस्थित होने से अगुना का राणा धनुःशर पांच सहस्र जन एकत्र कर सकता है। आगुनापनोर मिवार राजा के दक्षिण-पश्चिम प्रान्त में अवस्थित हैं।

* राज टीका प्रधान और प्राचीन उपकरण जल संयुक्त तन्दुल चूर्ण राजस्थान की चलित भाषा में उस राजटीका का नाम "खुशकी" कालक्रम से सुगन्धि मिला हुआ चूर्ण तदुपकरण मध्य परिगणित हो गया है।

पहले कह आये हैं कि वाप्पा ब्राह्मण गण का गोचरण करते थे * उन की पालित एक गऊ के स्तन में ब्राह्मण गण ने उपर्य्युपीर कियद्दिवस तक दुग्ध नहीं पाया इस से सन्देह किया कि वाप्पा इस गऊ को दोहन कर के दुग्ध पान कर लेते हैं। वाप्पा इस अपवाद से अति क्रुद्ध हुए, किन्तु गऊ के स्तन में स्वरूपतः दुग्ध न देख कर ब्राह्मण गण के सन्देह को अमूलक न कह सके। पश्चात् स्वयं अनुसन्ध'न कर के देखा कि यह गऊ प्रत्यह एक पर्वत गुहा में जाया करती थी और वहां से प्रत्यागमन करने से उसके स्तन पयःशून्य हो जाते हैं। वाप्पा ने गऊ का अनुसरण कर के एक दिन गुहा में प्रवेश किया और देखा कि उस वेतसवन में एक योगी ध्यानावस्था में उपविष्ट है। उन के सम्मुख में एक शिवलिंग है और उसी शिवलिंग के मस्तक पर पयस्विनो का धवल पयोधर प्रचुर परिमाण से परिवर्षित होता है।

पूर्व्वकाल के योगी ऋषिगण भिन्न यह प्राकृतिक और पवित्र देवस्थली इति पूर्व्व में और किसी को दृष्टिगोचर नहीं हुई थी। वाप्पा ने जिन योगी का ध्यान अवस्था में दर्शन किया था उन का नाम हारीत † उन समागम से जोगी का ध्यान भंग हुआ, वाप्पा का परिचय जिज्ञासा करने से वाप्पा ने आत्म वृत्तान्त जहाँ तक अवगत थे सब निवेदन किया। योगी के आशीर्वाद ग्रहणान्तर उस दिन गृह में प्रत्यागत भए। अतः पर वाप्पा प्रत्यह एक बार योगी के निकट गमन कर के उन का पादप्रक्षालन, पानार्थ पयःप्रदान और शिवप्रीति काम हो कर धतूरा अर्क प्रभृति शिव-प्रिय वन पुष्प समूह चयन किया करते। सेवा से तुष्ट हो कर योगीवर ने उन को क्रम क्रम से नीति शास्त्र में शिक्षित और शैव मन्त्र से दीक्षित किया और स्वकर से उन के कण्ठ में पवित्र यज्ञसूत्र समर्पण पूर्व्वक "एक लिङ्ग को देवान" यह उपाधि प्रदान किया।

तत्पश्चात् वाप्पा का यह क्रम था कि नित्य प्रति योगी का दर्शन करना और तत्कथित मन्त्र का अनुष्ठान करना। काल पा कर भगवती पार्वती ने मन्त्र प्रभाव

* सूर्य्यवंशियों में ब्राह्मण की गोचारण करना प्राचीन प्रथा है। रघुवंश में दिलीप का इतिहास देखो।

† हारीत के वंशीय ब्राह्मण लोग अद्यावधि एक लिङ्ग के पूजक पद में प्रतिष्ठित हैं। टाड साहब के समकालीन पुरोहित हारीत से षष्टाधिक षष्ठितम पुरुष थे उन के निकट में राणा के मध्य वर्त्तिता से शिवपुराण प्राप्त हो कर टाड साहब ने इंग्लैण्ड के रायल एशियाटिक सोसाइटी (Royal Asiatic Society) समाज को प्रदान किया था।

से बाप्पा को दर्शन दिया और राज्यादिक के वरप्रदान पूर्व्वक दिव्य शस्त्र से बाप्पा को सुसज्जित किया।

कियत् कालान्तर ध्यान से योगी ने अपने परमधाम जाने का समय निकट जान कर बाप्पा को तद्वृत्तांत विदित कर बोले "कल तुम अति प्रत्यूष में उपस्थित होना।" बाप्पा निद्रा के वशीभूत हो कर आदेशानुरूप प्रत्यूष में उपस्थित नहीं हो सके और विलम्ब कर के जब वहाँ गए तो देखा की हारीत ने आकाश पथ में कियत् दूर तक आरोहण किया है। उन का विद्युत-निभ विमान उज्ज्वलांग अप्सरागण बहन करती हैं। हारीत ने विमान गति स्थगित कर के बाप्पा को निकटस्थ होने का आदेश किया। उस विमान तक पहुंचने के उद्यम से बाप्पा का कलेवर तत्क्षणात् २० हाथ दीर्घ हो गया। किन्तु तथापि उन को गुरुदेव का रथ प्राप्त नहीं हुआ। तब योगी ने उन को मुख व्यादान करने को कहा। तदनुसार बाप्पा ने बदन व्यादित किया। कथित है योगीश्वर ने उन के मुख विवर में उगाल परित्याग किया था।* बाप्पा ने उस से घृणा कर के इस निष्ठीवन का पदतल में निक्षेप किया और इसी अपराध से उन को अमरत्व-लाभ नहीं हुआ। केवल उन का शरीर अस्त्र शस्त्र से अभेद्य हो गया। हारीत अदृश्य हुए। बाप्पा इस प्रकार सदेवानुगृहीत हो कर और अपने को चित्तौर के मौरी राजवंश का दौहित्र जानकर और आलस्य में कालक्षेप करना युक्तिसंगत अनुमान नहीं किया। अब गोचारण से उन को अत्यन्त घृणा हुई और उन्हों ने कतिपय सहचर समभिव्यवहार में ले कर अरण्यवास परित्याग करके लोकालय में गमन किया। मार्ग में † नाहर-मगरा नामक पर्व्वत में विख्यात 'गोरखनाथ' ऋषि के साथ उन का साक्षात् हुआ था। गोरक्ष ने उन को और द्विधार तीक्ष्ण करवाल ‡ प्रदान किया था। मंत्रपूत कर के चलाने से उस तीक्ष्ण

---

* कथित है मुसलमानधर्म्मप्रचारक मुहम्मद ने स्वीय प्रिय दौहित्र हसन के बदन में ऐसा ही निष्ठीवन परित्याग किया था। क्या आश्चर्य्य है जो मुसल्मान लोगों ने यह कथा भारतवर्ष के इसी उपाख्यान से ली है।

† मेवार के राजधानी उदयपुर के पूर्व्व भाग में प्रवेश करने को रास्ते में कोस के अन्दर नाहरमगरा पर्व्वत अवस्थित है। इस पर्व्वत में राजा और तत्पारिषद वर्ग मृगया काल में उपवेशन करते थे। उन लोगों के बैठने के स्थान सब अद्यापि असंस्कृत और जीर्ण अवस्था में पतित हैं।

‡ कथित है वह करवाल अद्यावधि विद्यमान है। राणा प्रति वत्सर में निरूपित दिवस में उस की पूजा करते हैं।

कृपाण के आघात से पर्व्वत भी विदीर्ण हो जाता था। बाप्पा ने उसी के प्रताप से चित्तौर का सिंहासन प्राप्त किया था। भट्ट कविगण के ग्रन्थ में बाप्पा के नागेन्द्र नगर से प्रस्थान का यह विवरण प्राप्त होता है। और इस विवरण में मिवार निवासी लोगों का प्रगाढ़ विश्वास भी है।

मालव के भूत पूर्व्व अधिपति प्रमारवंशीय तत्काल में भारतवर्ष के सार्व्व भौम थे। इस वंश की एक शाखा का नाम मोरी। मोरी वंशियों का इस समयमें चित्तोर पर अधिकार था, किन्तु चित्तोर तत्काल प्रधान राजपाट था या नहीं यह निश्चित नहीं। विविध अट्टालिका और दुर्ग प्रभृति में इस वंश के राजत्व काल की खोदित लिपि विद्यमान हैं, उस से ज्ञात होता है कि मौरी राज गण उस समय में विलक्षण पराक्रमशाली थे।

बाप्पा जब चित्तौर में उपस्थित हुए तत्कालं में मोरीवंशीय मान राजा सिंहासनारूढ़ थे। चित्तौर के राजवंश के साथ उन का सम्बन्ध था * सुतरां विशेष समादर से राजा ने उन को सामन्त पद में अभिषिक्त कर के तदुचित भूमिवृत्ति प्रदान किया। चित्तोर के सरदार गण सैनिक नियम भोग करते थे †। वे लोग समुचित सम्मानभाव से इति पूर्व्व में मान राजा के ऊपर विरक्त हो रहे थे। एक आगन्तुक बाप्पा के ऊपर उन के समधिक अनुराग सन्दर्शन से वे लोग और भी सातिशय ईर्षान्वित हुए। इसी समय में चित्तौर राज विदेशीय शत्रु कर्तृक आक्रान्त होने से सर्दार लोग युद्धार्थ आहूत हुए, परन्तु उन लोगों ने युद्धोद्योग नहीं किया। अधिकन्तु सैनिक नियमानुसार भुक्त भूमि का पट्टा प्रभृति दूर निक्षेप करके साहङ्कार वाक्य बोले कि राजा अपने प्रियतर सरदार को युद्धार्थ नियोग कर।

* बाप्पा की माता प्रमारवंशीया थी। सुतरां वर्त्तमान प्रमारा के सहित मामा-भागिनेय का सम्बन्ध था।

† सैनिक नियम (Feudal System) इस नियमानुसार से भुक्त भूमि के कर के परिवर्त्तन में प्रत्येक सरदार को अपने अपने वृत्ति भूमि के परिमाणानुरूप नियमित संख्या की सेना ले कर विग्रह समय में विपक्ष के साथ संग्राम करना होता है। प्राचीनकाल में वृहत् वृहत् राज्य भूमि संक्रान्त यह नियम प्रचलित था। राजा और सरदारगण के मध्य और सरदार और तदधीन साधारण प्रजावर्ग के मध्य पूर्व्वोक्त मूल नियम के आनुषंगिक अन्यान्य नियम समुदय पृथक्-पृथक् रूप से व्यवसित करते थे। राजस्थान के सैनिक नियम का विवरण इतः पर पृथक् एक खण्ड में सविस्तार से प्रकटित होगा।

बाप्पा ने यह सुन कर उपस्थित युद्ध का भार ग्रहण करके चित्तौर से यात्रा किया। सरदार गण यद्यपि भूमि-वृत्ति-वञ्चित हुए थे तथापि लज्जावशतः बाप्पा के अनुगामी हुए। समर में विपक्ष गण ने पराजित होकर पलायन किया। बाप्पा ने सरदार गण के साथ चित्तौर में प्रत्यागत न होकर स्वीय पैत्रिक राजधानी गाजनी नगर में गमन किया। सलीम नामक जनैक असभ्य उस काल में गाजनी के सिंहासन पर था। बाप्पा ने सलीम को दूरीभूत करके वहां का सिंहासन जनैक चौर वंशीय राजपूत को दिया और आप पूर्वोक्त असन्तुष्ट सरदार गण के साथ चित्तौर प्रत्यागमन किया। कथित है कि बाप्पा ने इस समय सलीम की कन्या का पाणिग्रहण किया था। जातरोष सरदार गण ने चित्तौर राजा के साथ बैर-निर्यातन में कृतसङ्कल्प होकर सब ने एक वाक्य होकर नगर परित्याग करके अन्यत्र गमन किया। राजा ने उन लोगों के साथ सन्धि करने के मानस से बार-म्बार दूत प्रेरण किया, किन्तु किसी प्रकार सरदार गण का कोप शान्त नहीं हुआ। उन लोगों ने कहा, "हम लोगों ने राजा का नमक खाया है इस से एक वत्सर काल मात्र प्रतीक्षा करेंगे। अनन्तर उन को व्यवहार के विहित प्रतिशोध देने में त्रुटि न करेंगे।" बाप्पा के वीरत्व और उदार प्रकृति के वशम्बद होकर सरदारगण ने उन को चित्तौर का अधिपति करने का अभिप्राय प्रकाश किया। बाप्पा ने सरदार गण के सहायता से चित्तौर नगर पर आक्रमण करके अधिकार कर लिया। भट्ट कविगण ने लिखा है "बाप्पा मोर राजा के निकट से चित्तौर ले कर स्वयं उस के "मौर" (अर्थात् मुकुट सुरूप) हुए। चित्तौरप्राप्ति के पश्चात् सर्व्व सम्मति से बाप्पा ने 'हिंदूसूर्य', 'राजगुरु' और 'चक्कवै' यह तीन उपाधि धारण किया था। शेषोक्त उपाधि का अर्थ सर्व्वभौम।

बाप्पा के अनेक पुत्र हुए थे। उन में किसी किसी ने स्वीय वंश के प्राचीन स्थान सौराष्ट्र राज्य में गमन किया। आईन अकबरी ग्रन्थ में लिखा है कि अकबर सम्राट के समय में इस वंश के पचास सहस्र पराक्रान्त सरदार सौराष्ट्र देश में वास करते थे। बाप्पा के अपर पांच पुत्र ने मारवाड़ देश में गमन किया था। गोहिल-बाल नामक स्थान में गोहिल वंशीय बाप्पा की सन्तान हैं। परन्तु वे लोग अपने वंश का मूल विवरण आप भूल गए हैं। इति पूर्व्व में उन लोगों ने क्षीर* प्रदेश में आ कर वास किया था और अब पूर्व्व काल के पूर्व्व पुरुषगण के नाम वा वंश का अन्य कोई विवरण वह लोग नहीं बतला सकते। घटना क्रम से उन लोगों ने बालभी ग्राम में वास भी किया, किन्तु यह नहीं जाना कि यही स्थान उन लोगों

* मारवाड़ प्रदेश के दक्षिण-पश्चिम प्रांत में लूणी नदी के निकट क्षीर भूमि है

की पैत्रिक भूमि है। यह लोग अब अरब गण के सहवास से वाणिज्य करके जीविका निर्व्वाह करते हैं।

बाप्पा के चरम काल का विवरण सर्व्वापेक्षा आश्चर्य्य है। कथित है कि परिणत वयस में उन्हों ने स्वीय राज्य सन्तान गण को परित्याग करके खुरासान राज्य में गमन किया था, और तद्देश अधिकार कर के म्लेच्छ वंशीय अनेक रमणि का पाणिग्रहण किया था। इन सब रमणी के गर्भ से बहुसंख्यक सन्तान समुत्पन्न हुए थे।

सुना जाता है कि एक शतवर्ष की अवस्था में बाप्पा ने शरीर त्याग किया। देलवारा प्रदेश के सरदार के निकट एक ग्रन्थ है उस में लिखा है कि बाप्पा ने इस्पहान, कन्दहार, कश्मीर, इराक, तूरान और काफरिस्तान प्रभृति देश अधिकार कर के तत् समुदय देशीया कामिनियों का पाणिपीड़न किया था। उन म्लेच्छ महिला के गर्भ से उन को १३० पुत्र जन्मे थे। उन लोगों की साधारण उपाधि "नौशीरा पठान" है। उन सब पुत्रों में से प्रत्येक ने अपने अपने मात्रिनामानुयायी नाम से एक एक वंश विस्तार किया है। बाप्पा के हिन्दू सन्तान की संख्या भी अल्प नहीं। हिन्दू महिल गण के गर्भ से उन्होंने ९८ पुत्र सन्तान उत्पादन किया था उन लोगों की उपाधि "अग्नि उपासी सूर्य्यवंशीय" है। उक्त ग्रन्थ में लिखा है, बाप्पा ने चरम काल में सन्यास आश्रम अवलम्ब कर के सुमेरु शिखर* मूल में अवस्थिति किया था, उनका प्राण त्याग नहीं हुआ है जीवदशा में इस स्थान में उन की समाधि क्रिया सम्पन्न हुई थी। अन्यान्य प्रवाद में कथित है कि बाप्पा की अंत्येष्टि क्रिया सम्बन्ध में उन के हिन्दू और म्लेच्छ प्रजागण के मध्य तुमुल कलह उपस्थित हुआ

---

* कोई कोई कहते हैं हिंदू ग्रन्थानुसार पृथ्वी के उत्तर केन्द्र का नाम सुमेरु। किसी किसी ग्रन्थ में सुमेरु तद्रूप अर्थ में व्यवहृत हुआ है, परन्तु पुराण के वर्णन से अनुमान होता है कि किसी विशेष पर्व्वत का नाम सुमेरु है। जम्बूद्वीप के मध्य इलावृत्त वर्ष में "कनकाचल सुमेरु विराजमान है, इस के दक्षिण में हिमवान हेमकूट और निषध पर्व्वत, उत्तर नील और श्वेत पर्व्वत।" चन्द्रवंश को आदि पुरुष इला स्त्री रूप में जहाँ "आवृत्ति" हुए थे, उस का नाम इलावृत्ति वर्ष। "सुमेरु के दक्षिण में प्रथमतः भारतवर्ष" इस से अनुमान होता है कि मध्य एशिया का नाम इलावृत्त वर्ष। अनुसन्धान करने से सुमेरु आविकृत हो कर पौराणिक भूगोल वृत्तान्त का अधिकांश परिष्कृत हो सक्ता है। केवल नाम परिवर्त्तित हो कर इतना गबड़ा हुआ। कोई कोई कहते हैं कि पेशावर और जलालाबाद के मध्यस्थल में प्रायः चौदह सौ हस्त उच्च मारकोह नाम अति अनुर्व्वर जो एक पर्व्वत है वही हिन्दू पुराणिक सुमेरु है।

था। हिन्दू लोग उन का शरीर अग्निदग्ध और म्लेच्छ लोग मिट्टी में प्रोथित करने को कहते थे। उभय दल ने इस विषय का विवाद करते करते शव का आवरण खोल कर देखा शव नहीं है तत् परिवर्त्तन में कतिपय प्रफुल्ल शतदल विराजमान हैं। उन लोगों ने वह सब कमल ले कर ह्रद में रोपन कर दिया था। पारस्य देश के नौशेरवां और काशी के प्रसिद्ध भगवद्भक्त कबीर की अन्त्येष्टि क्रिया का प्रवाद भी ठीक ऐसा ही है।

मिवाड़ के राजवंश के प्रधान पुरुष बाप्पा का यह संक्षेपक इतिहास प्रकटित किया गया। प्राचीन कालीन अन्यान्य राजपुरुष की भाँति बाप्पा की कहानी भी सत्यमिथ्या से मिलित है! किन्तु उस विचार को छोड़ कर चित्तौर के सिंहासन में सूर्य्यवंशी राजगण ने दीर्घ कालावधि जो आधिपत्य किया था, उस आधिपत्य का बाप्पा ही से प्रारम्भ है इस कारण गिहलोट गण का चित्तौर का राजत्व कितने दिन का है यह निरूपण को बाप्पा का जन्मकाल का निरूपण करना अत्यन्त आवश्यक है। बल्लभीपुर २०५ संवत् में शिलादित्य के समय में विनष्ट हुआ था। शिलादित्य से बाप्पा दशम पुरुष, परन्तु आश्चर्य्य का विषय यह है कि उदयपुर के राजभवन की वंशपत्रिका में बाप्पा का जन्मकाल १९१ संवत् में लिखा है। विशेषतः चित्तौर की एक खोदित लिपि से प्रकाश हुआ था कि ७७० सवत् में चित्तौर नगर मोरी वंशीय मान राजा के अधिकार में था। इसी मान राजा के समय में असभ्य गण ने चित्तौर नगर आक्रमण किया था। उन लोगों को पराभव कर के उस के पश्चात् बाप्पा ने पञ्चदश वर्ष की अवस्था में चित्तौर का सिंहासन प्राप्त किया था। इस कारण ईदृश विवरण से बाप्पा का जन्मकाल १९१ संवत् किसी प्रकार स्वीकृत नहीं हो सक्ता। परन्तु उदयपुर के राजवंश के कुलाचार्य्य भट्टगण पूर्वोक्त समुदय घटना स्वीकार कर के भी कहते हैं कि बाप्पा ने १९१ संवत् में जन्म ग्रहण किया था। टाड साहब ने अनेक अनुसन्धान कर के अवशेष में सौराष्ट्र देश में सोमनाथ के मन्दिर की एक खोदित लिपि से जाना था कि वल्लभी संवत् नाम का एक और भी संवत् प्रचलित था। वह संवत् विक्रमादित्य की संवत् से ३७५ बरस के पश्चात् प्रारम्भ हुआ था, २०५ बल्लभी सम्वत् में बल्लभीपुर विनष्ट हुआ था, सुतरां विक्रमादित्य के संवतानुसार उस के विनाश का काल ५८० हुआ। जिस प्रणाली से टाड साहब ने चित्तौर के मान राजा का राजत्व, बल्लभीपुर का विनाश और कुलाचार्य्य गण लिखित बाप्पा के जन्मसमय का परस्पर समन्वय साधन किया है वह विलक्षण बुद्धि व्यञ्जक है, परंतु जटिल और नीरस है इस कारण सविस्तर से इस स्थान में प्रकटित नहीं किया। उस की मीमांसा का स्थूलतात्पर्य्य यह कि बल्लभीपुर विनाश के१९०बरस पश्चात् विक्रमादित्य ने७६९ संवत् में बाप्पा

ने जन्म ग्रहण किया था। कुलाचार्य्य गण ने भ्रम वशतः इस १९० संख्या को विक्रमादित्य का संवत् कर के लिखा है। तत् पश्चात् पञ्चदश वर्ष की अवस्था में बाप्पा चित्तौर राज्य में अभिषिक्त हुए थे। सुतरां ७८४ संवत् उन का चितौर प्राप्तकाल निरूपित हुआ। उस समय से सार्द्ध एकादश वत्सरावधि बाप्पा के वंशीय ६० राजा गण ने क्रमान्वय से चित्तौर के सिंहासन पर उपवेशन किया है।

यद्यपि भट्ट गण के ग्रन्थानुयायी बाप्पा के जन्मकाल की प्राचीनत्व रक्षा नहीं हुई, परन्तु जो समय टाड साहब ने निरूपित किया है वह भी नितान्त आधुनिक नहीं है। तदनुसार प्रकाश होता है कि बाप्पा फरासी राजा के करोली भिञ्जिया वंशीय राज गण के और मुसल्मान साम्राज्य के वलीद खलीफा के समकालवर्ती थे। आइतपुर* नगर से मिवाड़वंशीय और एक खोदित लिपि संगृहीत हुई थी। वह लिपि १०२४ संवत् समय की है तत्कालीन चित्तौर के सिंहासन में बाप्पा के वंशीय शक्ति कुमार राजा प्रतिष्ठित थे। उस लिपि में शक्ति कुमार के चतुर्दश पुरुष के मध्य एक जन शील नाम से अभिहित हुए हैं। राजभवन की वंशावली अपेक्षा तल्लिपि में यही एक नाम अतिरिक्त नाम लक्षित होता है, तद्भिन्न और सब विषय में समता है। इङ्गलैंड के प्रसिद्ध कवि ह्यम ने कहा है "यद्यपि कविगण सूक्ष्म सत्य के तादृश्य अनुरागी नहीं, और यदिच वह इतिवृत्त का रूपान्तर कर देते हैं, तो भी उन लोगों की अत्युक्ति के मूल में सत्य भी सत्वालक्षित होती है" हम वर्णित विषय में ह्यूम की एतदुक्ति का सारत्व प्रतीयमान होता है। जन समागम शून्य स्वापद पूर्ण आइतपुर के कानन में जो सब नाम बिलुप्त हो जाते और उन सब नामों के कभी किसी के कर्णगोचर होने की संभावना नहीं थी, किन्तु भट्ट कविगण की वर्णना प्रभा में मिवाड़ राजवंश के प्राचीन काल के वह सब नाम चिरस्मरणीय हो रहे हैं।

इस १०२४ संवत् समय में वलीदखलीफा के सेनापति महम्मद बिन्-कासिम ने भारतवर्ष में आकर सिन्धु देश जय किया था। इस के पहले मोरी वंशीय मानराजा के समय जिस असभ्य राजा ने चित्तौरनगर आक्रमण किया था और बाप्पा कर्तृक जो पराजित हुआ था, वह अनुमान होता है कि यही बिन कासिम है।

बाप्पा और शक्ति-कुमार के मध्यवर्ती ९ राजा ने चित्तौर में राजत्व किया था। उस समय से दो शत वर्ष के मध्य में ९ जन राजा का राजत्व असम्भव नहीं। तदनुसार मिवार के इतिवृत्त का निम्नोक्त चार प्रधान काल निरूपित हुआ। प्रथम, कनकसेन का काल १४४। द्वितीय, शिलादित्य और बल्लभीपुर विनाश का काल

---

* आइतपुर—सूर्य्यपुर। आदित्य शब्द का अपभ्रंश आइत। आइत शब्द का संकीर्ण रूप एत, यथा एतवार आदित्यवार।

५२४। तृतीय, बाप्पा के चित्तौर प्राप्ति का काल खृष्टाब्द ७२८। चतुर्थ, शक्तिकुमार का राजत्व काल खृष्टाब्द १०६८।

तृतीय अध्याय।

बाप्पा और समर सिंह के मध्यवर्त्ती राजगण, बाप्पा का वंश, अरब जाति के भारतवर्ष आक्रमण का विवरण, मुसलमानगण से जिन सब राजाओं ने चित्तौर नगर रक्षा किया था उन लोगों की तालिका।

७८४ संवत् में बाप्पा को चित्तौर सिंहासन प्राप्त हुआ था। मिवार के इतिवृत्त में तत्परवर्त्ती प्रधान समय समर सिंह का राजत्व काल—संवत् १२४९। अतएव बाप्पा के ईरान राज्य गमन के समय ८२० संवत् से समर सिंह के समय पर्य्यन्त भट्टगण के ग्रन्थानुसार मिवार राज्य का वृत्तान्त संप्रति प्रकटित होता है। समर सिंह का राजत्व काल केवल मिवार के इतिवृत्ति का प्रधान काल नहीं, स्वरूपतः समुदय हिन्दू जाति के पक्ष में एक प्रधान समय है। उन के राजत्व समय में भारतवर्ष का राज किरीट हिन्दू के सिर से अपनीत होकर तातारी मुसलमान के सिर में आरोपित हुआ था। बाप्पा के समर सिंह के मध्य चार शताब्दी काल का व्यवधान है। इस काल के मध्य में चित्तौर के सिंहासन पर अष्टादश राजाओं ने उपवेशन किया था। यदिच उन लोगों का राजत्व का विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता, तौ भी नितान्त नीरव में तत्तावत् काल उल्लङ्घन करना उचित नहीं। उन सब राजा को लोहितवर्ण पात का सुवर्णमयी प्रतिमा से शोभमान चित्तौर के सौध शिखर पर उड्डीयमान थी और तन्मध्य में अनेक का नाम उन लोगों के राज्यस्थ शैल शरीर में लोह लेखनी की लिपि योग से अद्यावधि विद्यमान है।

इस के पहिले आइतपुर की जिस खोदित लिपि का उल्लेख किया है, उस से बाप्पा और समर सिंह के मध्यवर्ती शक्तिकुमार राजा का राजत्व काल संवत् १०२४ निरूपित हुआ। जैन ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि शक्तिकुमार के चार पुरुष पूर्व्ववर्ती उल्लत नाम राजा ९२२ संवत् में चित्तौर के सिंहासनारूढ़ हुए थे। ७६४ खृष्टाब्द में बाप्पा ने ईरान देश में गमन किया। ११९३ खृष्टाब्द में समर सिंह के समय में हिन्दू राजत्व का अवसान हुआ। इस उभय घटना के मध्यवर्ती समय में मिवार राज्य और एक बार मुसलमान गण से आक्रान्त होने का विवरण राजवंश के ग्रन्थ में प्राप्त होता है। तत्काल खोमान नामक एक राजा चित्तौर के सिंहासनस्थ थे। उन के राजत्व काल में ८१२ से ८३६ खृष्टाब्द के अन्तर्गत किसी समय में मुसलमानों ने चित्तौर नगर आक्रमण किया था। खोमान रास नामक ग्रन्थ में तत् आक्रमण संक्रांत वृत्तांत सविस्तार निवृत्त हुआ है। मिवार राज्य के पद्य विरचित इतिहास ग्रन्थ समूह के मध्य खोमानरास सर्व्वापेक्षा पुरातन है।

टाड साहब कहते हैं भारतवर्ष का एतत् समय का इतिवृत्त नितान्त तमसाच्छन्न है इस कारण खोमान रासा प्रभृति हिन्दू ग्रन्थ से तत् संबंध में जो कुछ आलोक लाभ हो सकता है वह परित्याग करना उचित नहीं। भारतवर्ष में एतत् काल में जो सब ऐतिहासिक विवरण सत्य कह कर प्रसिद्ध है सो हिन्दू ग्रन्थ में लिखित विवरण अपेक्षा अधिक असङ्गत वा परिच्छन्न नहीं। जो हो, तदुभय एकत्रित रहने से भावि कालीन इतिवृत्तप्रणेता उस में से अनेक उपकरण लाभ कर सकेंगे। इस कारण (मुसलमान साम्राज्य के आरम्भ से गजनगर राज्य संस्थापन पर्य्यन्त) भारतवर्ष में अरब जाति के समागम का संक्षिप्त विवरण इस अध्याय में सन्निविष्ट किया जायगा। परन्तु अरब समागम का सविस्तार विवरण विशिष्ट कोई ग्रन्थ नहीं मिलता यह बड़े शोच की बात है। अलमकीन नामक ग्रन्थकार ने खलीफा गण के इतिवृत्त में भारतवर्ष का प्रायः उल्लेख नहीं किया है। अबुलफजल के ग्रन्थ में अनेक विषय का सविशेष बिवरण प्राप्त होता है और वह ग्रन्थ भी विश्वास के योग्य है। फरिस्ता ग्रन्थ में इस विषय का एक पृथक अध्याय है, परन्तु उस का अनुवाद यथोचित मत से निष्पन्न नहीं हुआ है *। अब पहिले बाप्पा के वंशीय राजगण का वृत्तान्त विवरित किया जाता है, पश्चात् यथायोग्य स्थान में मुसलमान गण का भारतवर्ष संक्रान्त इतिवृत्त प्रकटित होगा।

गिहेलिट वंश की चतुर्विंशति शाखा। तन्मध्य अनेक शाखा बाप्पा से समुत्पन्न। चित्तौर अधिकार के पश्चात् बाप्पा ने सौराष्ट्र देश में गमन कर बन्दर द्वीप के

---

* टाड साहब ने फ़िरिस्ता के अनुवाद में जो सब विषय परित्याग किया है तन्मध्य में अफ़गान जाति की उत्पत्ति का विवरण अतीव प्रयोजनीय। मुसलमान गण के साथ हिजरी ६२ अब्द में जिस काल में अफ़गान जाति का प्रथम आगमन हुआ तब वे लोग सुलेमान पर्व्वत के निकटस्थ प्रदेश में वास करते थे। फ़िरिस्ता ने जिस ग्रन्थ के ऊपर निर्भर कर के अफ़गान का विवरण लिखा है वह यह है "अफ़गान लोग कायर जाति के लोग फिर उस उपाधिकारी राजगण के आधीन बास करते थे उन लोगों में बहुतों ने मूसा की प्रतिष्ठित नूतन धर्म्म व्यवस्था अवलंबन किया था। जिन लोगों ने पूर्व्व की पौत्तलिकता त्याग नहीं किया वे लोग हिन्दुस्तान से भाग कर कोह–सुलेमान के निकटवर्त्ती देश में वास करते थे। सिन्धु देश से आगत बिनकासिम के साथ उन लोगों का समागम हुआ था। हिजरी १४३ अब्द में उन लोगों ने किरमान और पेशावर प्रदेश और तत् सीमा वर्त्ती समुदय स्थान अधिकार किया था।" कोहिस्थान का भूगोल वृत्तान्त, रोहिला शब्द की व्युत्पत्ति और अन्यान्य प्रयोजनीय विषय टाड साहब ने स्वीय अनुवाद में परित्याग किया है।

यूसुफगुल* नाम राजा की कन्या से विवाह किया। बन्दर द्वीप निवासी व्यानमाता नामक एक देवी की उपासना करते थे। बाप्पा ने इस देवी की प्रतिमा और स्वीय बनिता सह चितौर में प्रत्यागमन किया था। गिहलोट वंशीय अद्यावधि व्यानमाता की उपासना करते हैं। बाप्पा ने इस देवी को जिस मन्दिर में प्रतिष्ठित किया था, वह आज तक चित्तौर में विद्यमान हैं, तद्भिन्न तत्रत्य अन्यान्य अनेक अट्टालिका बाप्पा कर्तृक विनिर्म्मित हैं, यह भी प्रवाद प्रचलित है। यूसुफगुल के कन्या के गर्भ में बाप्पा को एक पुत्र जन्मा था, उस का नाम अपराजित। द्वारका नगरी के निकटवर्ती कालिवायो नगर के प्रमारा वंशीय जनैक राजा की कन्या से भी बाप्पा ने विवाह किया था। उस रमणी के गर्भ में इस के पहिले बाप्पा को और एक आसिल नामक पुत्र जन्मा था, यदिच आसिल ज्येष्ठ तथापि अपराजित चित्तौर में जन्मे थे, इस कारण उन्हों ने वहां का राज प्राप्त किया। आसिल सौराष्ट्र देश के किसी एक राज्य में राजा हुए थे† उन की सन्तान परम्परा से वहां विपुल वंश विस्तार हुआ था। इस वंश की उपाधि आसिला गिहलोट है।

---

* कथित है, समुद्र में बन्दर द्वीप और स्थल में चोयाल नामक स्थान यूसफ़गुल राजा के अधिकार में था। यूसुफ़गुल चौर वंशीय राजपूत, अनल परम का संस्थापन कर्त्ता रेणु राज अनुमान होता है। इसी यूसफ़गुल का वृत्तान्त कुमार पालचरित नामक ग्रन्थ में लिखा है, रेणुराज के पूर्व्व पुरुष बन्दर द्वीप के अधिपति थे। बन्दर द्वीप आज कल पोर्त्तगीस जाति के अधिकार में है। इस का आधुनिक नाम डिऔ है यह नाम पोर्त्तगीस जाति प्रदत्त है।

† आसिला के नामानुसार एक किला का आसिला नाम रक्खा था, यह वंशपत्रिका से ज्ञात होता है। संग्रामदेव नामक जनैक राजा के निकट से कुंबायत (कांबे) नगर अधिकार करने के अभिलाष में आसिल के पुत्र विजयपाल समर में निहत हुए थे। विजय की इसी आकस्मिक मृत्यु घटना के पहिले तद गर्भस्थ पुत्र अकाल में भूमिष्ठ हुआ था, उस पुत्र का नाम सेतु टाड साहब कहते हैं अस्वभाविक मृत्यु प्राप्त व्यक्तिगण भूतयोनि प्राप्त होते हैं। हिंदूगण का यह संस्कार है और स्त्री भूत का हिंदुस्तानी नाम चुरइल, सेतु की माता के अस्वाभाविक मृत्यु वशात: सेतु का वंश काचोराइल नाम से प्रसिद्ध हुआ। आसिल से द्वादश-तम अधस्तन पुरुष बीजा गिरनार के राजा शृङ्गारदेव के भांजे थे और मातुल के निकट से इन्हों ने सालन स्थान प्राप्त किया था। सुराट का राजा जयसिंह देव के साथ समर में बिजा निहत हुए थे। फ़िरिस्ता ग्रन्थ में जो देवी सालिमा वंश का उल्लेख है, अनुमान होता रहा है देवी और चोरइल, इन दो नाम की समता से तन्नाम की उत्पत्ति हुई है।

विविध निबंध

[इस शीर्षक के अंतर्गत आए हुए लेखों से भारतेंदु की प्रतिभा की विलक्षणता और अनेकरूपता का पता चलता है। उनकी दृष्टि कितनी पैनी और दूरदर्शी थी तथा उनकी जिज्ञासा कितनी बढ़ी थी—इसका थोड़ा सा आभास इन निबंधों से मिल सकता है।

'सम्पादक के नाम पत्र' में भारतेंदु आचार्यरूप में हमारे सामने आते हैं। इस पत्र में वह भक्ति आनंद आदि को स्वतंत्र रस के रूप में ग्रहण कर उसकी स्वतंत्र स्थापना में प्रवृत्त हुए हैं। उनके आचार्यत्व का इस पत्र से कुछ आभास मिलेगा।

'मदालसा उपाख्यान' मार्कंडेयपुराण के आधार पर लिखा गया है। हम चाहें तो इसे भावानुवाद कह सकते हैं। कहा जाता है कि भारतेंदु ने कोई कहानी नहीं लिखी। विषयगत और शैलीगत भेद के होते हुए भी हमें इस उपाख्यान में भारतेंदु का कथाकार या गल्पकार का बीजरूप देखने को मिल सकता है।

'संगीत सार' के द्वारा संगीतशास्त्र का परिचय दिया गया है। इस प्रकार के ज्ञानात्मक और शिक्षाप्रद लेखों का भारतेंदुयुग में बड़ा प्रचार था। संस्कार-सुधार या नेतृत्व के साथ साथ जनता का ज्ञान-वर्धन भी भारतेंदुयुग के लेखकों का प्रधान लक्ष्य था।

ी' भारतेंदु का उर्दू भाषा किंतु नागरी लिपि में खुशी के विषय पर लिखा हुआ लेख है। भारतेंदु ने उर्दू में कविता और गद्य दोनों की रचना की है। प्रस्तुत विचारात्मक लेख उनके उर्दू निबंध-लेखन का अच्छा उदाहरण है।

'जातीय संगीत' भारतेंदु के उदार व्यक्तित्व का परिचायक है। इसमें भारतेंदु का ध्यान केवल शिक्षित समुदाय तक सीमित न रह कर सामान्य जनता तक व्याप्त है, प्रचार और सुधार के लिए उन्होंने ग्रामगीतों की महत्ता और प्रभावात्मकता को स्वीकार किया है। ग्राम्यभाषा में ग्रामगीतों की रचना के लिए उन्होंने दूसरों को उत्साहित किया और स्वयं भी लिखने की इच्छा प्रकट की, ग्रामगीतों के लिए उन्होंने जिन विषयों का प्रस्ताव किया है—बालविवाह, शिक्षाप्रसार, जन्मपत्री का मिलान, स्वदेशनिर्मित वस्तुओं का प्रयोग आदि—उससे उनकी लोकव्यापी दृष्टि और कुशल नेतृत्व का पता लगता है। इस प्रकार भारतेंदु ने सबसे पहले ग्रामगीतों का महत्त्व समझा और समझाया।]

श्री क० व० सु० सम्पादकेषु

(Vol.III No. 22 Friday 5th July 1872)

शृंगार रत्नाकर नामक श्रीताराचरण तर्करत्न ने जो नया प्रबन्ध बनाया है उस्में मेरा मत लिखा है कि "हरिश्चन्द्र भक्ति, सख्य, वात्सल्य और आनन्द यह चार रस और भी मानते हैं" इस पर काशीविद्यासुधानिधि नामक मासिक पत्र के सम्पादक (पूर्व्व के किसी पत्र में) ने बड़े चढ़ाव से आनन्द रस की हंसी किया है और उन के लिखने से ऐसा जाना जाता है कि आनन्द रस हास्य के अन्तर्गत है और मानने के योग्य नहीं है तथा श्रीनृसिंह शास्त्री ने काव्यात्मसंशोधन नामक जो ग्रन्थ निर्माण कर के बहुत सा कागज का व्यय किया है उस्में भी इन चारों रस को व्यर्थ और शृंगारादि रसों के अन्तर्गत किया है तथा इन्दुप्रकाश समाचार पत्र में भी आनन्द रस को तुच्छ लिखा है और ये महात्मा लोग इस्में कारण यह लिखते है कि प्राचीन लोग नहीं मानते ।

वाह वाह ! रसों का मानना भी मानों वेद के धर्म्म का मानना है कि जो लिखा है वही माना जाय और उस्के अतिरिक्त करै तो पतित होय रस ऐसी वस्तु है जो अनुभव सिद्ध है इस्के मानने में प्राचीनों की कोई आवश्यकता नहीं यदि अनुभव में आवै मानिये न आवै न मानिये । आज इस स्थान पर चारों रसों को पृथक् पृथक् स्थापन करते हैं ।

भक्ति—कहिये इस रस को आप किस के अन्तर्गत करते हैं क्योंकि इस रस की स्थाई श्रद्धा है और इस के आलम्बन भक्त और इष्ट देवता हैं और उद्दीपन पुराणादिक भक्तों के प्रसंग तथा सत्संग हैं अब जो इसे शान्त के अन्तर्गत कीजियेगा तो शान्त की स्थाई बैराग्य है और इस्की भक्ति है आसक्ति से और वैराग्य से जो अंतर है सो प्रसिद्ध है बैराग्य उसे कहते हैं जो संसार से विरक्तता होय और सब सुखों को त्याग करै और भक्ति उसे कहते हैं जो गृहस्थ लोग भी कर सकते हैं और भक्ति देवता के सिवा माता पिता गुरु राजा और स्वामि की भी मनुष्य कर सकता है तो जहां ऐसे प्रसंग जिस में शुद्ध भक्ति का वर्णन है और हनूमानजी इत्यादिक भक्तों के प्रसंग में यह कौन कह सकता है कि यह शान्त रस है क्योंकि इन वर्णनों में स्थाई रूप वैराग्य नहीं है स्थाई रूप भक्ति है और दास्यत्व की मुख्यता है फिर कौन कह सकता है कि शान्त और भक्ति एक है ॥

सख्य—इस रस को लोग शृंगार के अन्तर्गत करते हैं हम उन लोगों से पूछते हैं कि जहां श्रीकृष्ण और अर्जुन का प्रसंग और इसी भांति अनेक मित्रों के विपत्ति में मित्रों के संग देने के प्रसंग में शृंगार रस किस भांति आवैगा क्योंकि शृंगार की स्थाई रति है और यहां मित्रता में रति का क्या कार्य है ॥

वात्सल्य—इस रस को लोग शृंगार के अन्तर्गत करते हैं अब हम उन से पूछते हैं कि आप जिस समय अपने पुत्र को या कन्या को देखियेगा या उन का वर्णन पढ़ियेगा तो आप को कौन रस उदय होगा यदि उस समय अर्थात् पुत्र और कन्या को देखके शृंगार रस उदय होय तो आप धन्य हैं और जो कहैं सो मानने योग्य है ॥

आनन्द—लोग कहते हैं कि इस रस के मानने से कोई लाभ नहीं है। मैंने माना कि लाभ नहीं पर मैं यह पूछता हूं कि जहां कवि की दृष्टि शुद्ध शब्दालंकार पर है और उस शब्द जमक वा और किसी वर्ण या शब्द चित्र के पाठ से जो आनन्द होता है वहां तुम कौन रस मानोगे वा जहां कोई नीति की बात वा किसी वस्तु की शोभा बर्णन की जायगी वहां कौन सा रस होगा निस्सन्देह सब काव्य में रस होता है क्योंकि बिना रस के काव्य व्यर्थ हैं "रसो वै सः यल्लब्ध्वानन्दीभवतीति" तो इस्से कृपा कर के आग्रह छोड़िये और काव्य विषय में जो कुछ अनुभव में आता जाय उस्को मानते जाइये इसमें शब्द प्रमाण का कोई काम नहीं है ॥

कृपा कर के इस पत्र को छाप दीजिये ॥

रामकटोरा
ज्येष्ठ शु० ११

आपका मित्र
हरिश्चन्द्र

मदालसा उपाख्यान

(उपाख्यान मारकण्डेय पुराण से)

पुराने जमाने में शत्रुजित नाम का एक राजा था और उस को अरिविदारण ऋतध्वज नाम एक लड़का था। अश्वतर नाग के दो लड़के ब्राह्मण बनकर उस के साथ खेलने आते थे। राजकुमार से उन से ऐसी प्रीति हो गई थी कि वे रात दिन नाग लोक छोड़ कर यहीं भूले रहते थे। एक दिन नागों के राजा अश्वतर ने अपने लड़कों से पूछा, "प्यारे लड़को, आज कल तुम लोग नाग लोक छोड़ कर मृत्यु लोक ही में क्यों रमे रहते हो ?' वे बोले "पिता, शत्रुजित राजा के कुमार ऋतध्वज के शिष्टाचार और प्रीति से हमारा मन ऐसा मोहा है कि पाताल उस के बिना गर्म और उस के मिलने से सूर्य्य ठंढा मालूम पड़ता है।" पिता ने कहा "निस्संदेह वह पुरुष धन्य है जिस को ऐसा मित्रों को सुखदाई पुत्र हुआ है, भला ऐसे सच्चे सुहृद का तुम लोगों ने कुछ उपकार भी किया ?" लड़के कहने लगे "भला हम लोग उस का क्या उपकार करेंगे ! धन जन विद्या सब में वह हम से बढ़कर है और जो उस का एक काम है उस को ब्रह्मादिक ईश्वर के सिवा कोई कर नहीं सकता। नागराज ने कहा "भला हम सुनें तो सही ऐसा कौन काम है जो आदमी न कर सके। किसी प्रकार भी तुम लोग उस मित्र का प्रति उपकार कर सको तो मैं अपने को ऋण से छूटा समझूं।" नागपुत्र बोले "उस मित्र के पिता के पास उस की जवानी में गालव नाम का ब्राह्मण एक बहुत बढ़िया घोड़ा लेकर आया और बोला कि 'महाराज एक राक्षस हम लोगों को बहुत दुख देता है, नित्य तप में विघ्न कर के उस ने हमारी नाकों में दम कर रक्खा है और हम लोगों ने बड़े कष्ट से तप किया है इस से उस को शाप दे कर तप नहीं न्यून किया चाहते। एक दिन बड़े दुखी हो कर जो मैंने एक लम्बी ठंढी सांस भरी तो देखता हूं कि यह घोड़ा आसमान से उतरा चला आता है साथ ही आकाशवाणी भी सुनी कि इस घोड़े की गति पृथ्वी और आकाश पाताल सब जगह है। और ऐसा घोड़ा पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। चाल में हवा को भी यह पीछे छोड़ता हुआ संसारियों के मन की भांति उड़ा चलता है। इस का नाम कुवलय है। इसे राजा शत्रुजित को दो और उस का पुत्र इस घोड़े पर सवार हो कर उस राक्षस को मारै। इस से उस राजा की बड़ी कीर्ति होगी। सो अब मैं आप के पास आया हूं। राजा ने कुमार को उसी समय सज सजाकर असीस दी और ब्राह्मण के साथ बिदा किया। राजकुमार गालव के आश्रम में रहने लगा। एक दिन वह राक्षस जंगली सुअर

बन कर आया और जब कुंअर उस के पीछे धनुष तान कर घोड़ा दौड़ाया तो वह एक घने जंगल में भागा। भागते भागते वह बहुत दूर जा कर एक गड़हे में गिर पड़ा, तो कुंअर भी साथ ही कूदा। अंधेरे में वह कुंअर को कुछ भी नहीं देखाता था पर घोड़ा झोंके चला जाता था जब उंजेला आया तो वह सुअर न दिखाई पड़ा। सिर्फ एक बड़ा रत्नों से जड़ा घर सामने खड़ा था। उस के दरवाजे की सीढ़ी पर एक जवान सुंदर स्त्री चढ़ी जाती थी। कुंअर भी दरवाजे पर घोड़ा बांध बेधड़क उस मकान में घुसा और बड़ी सजी सजाई जड़ाऊ दालान में हिंडोला खाट पर उसे एक कन्या दिखाई पड़ी और जो स्त्री उसे सीढ़ी पर चढ़ती मिली थी वह भी उस के पास बैठी थी! कुंअर को देखते ही वह कन्या बेहोश हो गई। उस स्त्री और कुंअर ने किसी तरह उस को सावधान किया। तब कुंअर उस सखी से उन लोगों का नाम गांव और बेहोशी का कारण पूछने लगा। स्त्री बोली यह गन्धर्व के राजा विश्वावसु की कन्या है इस को पातालकेतु नाम का दैत्य माया से उठा लाया है अगली तेरस को वह दुष्ट इस से ब्याह करने को था और जब इस दुख से यह प्राण देने लगी तो आकाशवाणी हुई कि प्राण मत दे। गालव के आश्रम में जिस राजकुमार से यह मारा जायगा वही तेरा हाथ पीला करैगा। मैं इस की सखी विन्ध्यवान की पुत्री कुंडला हूं। मेरे पति पुष्करमाली को जब शम्भू दैत्य ने वध कर डाला तब से धर्म में लगी हूं। इस के मूर्छा का कारन यह है कि आज मैं खबर ले आई हूं कि गालव के आश्रम में किसी ने उस सुअर बने हुए दैत्य को बान से मारा है अब वही इस का पति होगा। पर यह तुम्हारे रूप से मोह गई है और सोचती है कि हाय जिस को मैं चाहती हूँ उस से न ब्याही जाऊंगी। अब आप कौन हैं कहिए। राजकुमार ने सब हाल कहा और अपना राक्षस का मारना बरनन किया सुनते ही उस कन्या ने घूंघट कर लिया और बहुत प्रसन्न हो कर कुंडला से बोली सखी सुरभी का कहना क्या झूठ हो सकता है। कुंडला ने उसी समय तुंबरु गन्धर्व का ध्यान किया। उस ने आते ही प्रसन्नता से अग्नि को साक्षी देकर दोनों का हाथ दोनों को पकड़ा दिया और आप तप करने चला गया। कुंडला भी अपनी सखी को गले लगा कर दुलहा दुलहिन दोनों को कुछ हित की बातें सिखाकर तप करने गई। कुंअर उस कन्या (मदालसा) को घोड़े पर बिठाकर उस पाताल की गुफा से बाहर निकलने लगा पर उसी क्षण राक्षस की फौज ने चोर चोर कर आन घेरा और मदालसा उससे छुड़ाना चाहा। कुंअर ने बहादुरी से उन सबों को बात की बात में मार गिराया और आप राजी खुशी से अपने घर आया। पिता के पैरों पर पड़कर सब हाल कह सुनाया। राजा रानी बहू बेटा पाकर बड़े प्रसन्न हुए और सब लोग सुख से रहने लगे। राजा ने कुंअर को आज्ञा दे दी थी कि तुम नित्य घोड़े पर चढ़ कर मुनियों की रखवाली किया

करो। कुंअर घोड़े पर चढ़ा एक दिन जमुना किनारे के मुनियों की रखवाली कर रहा था कि एक आश्रम देखा। इस आश्रम में उस पातालकेतु राक्षस का भाई तालकेतु कपटी मुनि बनकर बैठा था कुंअर को देखते ही पुराना बैर याद करके बोला कि कुंअर तुम अपने गहिने हम को दो और जब तक हम पानी में जाकर वरुण की पूजा कर के न फिरैं तब तक तुम हमारे आश्रम की चौकी दो। राज-पुत्र ने सब गहना उतार दिया और उसी कुटीचर की कुटी का पहरा देने लगा। वह दुष्ट गहना लेकर जल में डूब कर माया से कुंअर के महलों में गया और मदा-लसा से बोला कि हमारे आश्रम में ऋतध्वज को एक राक्षस ने मार डाला और हिनहिनाते हुए उस बिचारे घोड़े को भी घसीट ले गया। शूद्र तपसियों से क्रिया करा के उस का गहना ले कर मैं तुम को देने आया हूं। इतना कह कर आभूषण सब फेंक किए और आप चलता हुआ। उसी समय में मदालसा ने पति के दुख से प्राण त्याग किए। महल में हाहाकार मच गया जिधर देखो कोहराम पड़ा हुआ था और दर दीवार से हाय कुंअर हाय बहू की आवाज आती थी। राजा शत्रुजितधीरज रखकर बोला कि इतना क्यों रोते हो। इस का क्या सोच है। मुनियों की रक्षा में हमारा पुत्र यश कमाकर मारा गया। उस की मां भी बोली कि बड़ों का यश बढ़ा-कर जो क्षत्री युद्ध में मरै और ऐसी बहू का भी क्या सोच जो पति के सब सुख भोगकर अन्त में पतिलोक उस के साथ ही गई। उठो क्रिया करो और सोच दूर करो। राजा ने नगर के बाहर सब लोक रीति किया और बेटे बहू को पानी देकर घर फिरा। इधर कपटी मुनि भी कुंअर से आकर बोला कि मेरा काम हो गया आप का कल्याण हो। अब घर सिधारिये। कुंअर जब नगर में आया तो सब को उदास पाया कुंअर को देखते ही बधाई बधाई का चारों ओर से शोर मच गया। कुंअर बहुत चकपकाया कि यह मामला क्या है। अन्त में घर पर गया और सब हाल सुनकर बहुत ही घबड़ाया। मां बाप के डर से रो तो न सका पर अपनी पति-व्रता प्राणप्यारी के बिछुड़ने से बहुत ही उदास हो गया और यह प्रतिज्ञा कर ली कि मैं प्राण तो नहीं देता पर अब किसी दूसरी स्त्री से जन्म भर न मिलूंगा। तब से इस सुख से वंचित है और यदि संसार में उस का कोई हित है तो इतना ही है कि मदलसा उस को फिर मिलै। पर यह सिवा ईश्वर के कौन कर सकता है।" नाग-राज ने कहा पुत्र ईश्वर की दया और मनुष्य के परिश्रम के आगे कोई बात कठिन नहीं। उसी दिन से अश्वतर ने हिमालय पर्वत पर सरस्वती की आराधना करनी आरम्भ कर दी। जब सरस्वती प्रसन्न हुई कहा बर मांगो तो नागराज ने यह वर लिया कि उन्हें और उनके भाई कवल को संगीत विद्या पूर्ण रीति से आ जाय। यह वर पाकर कवल अश्वतर दोनों कैलाश को गए और जाकर श्री भोलानाथ सदा-शिव को ऐसा रिझाया कि महादेव पार्वती साथ ही बोले मांगो क्या चाहते हो

दोनों ने हाथ जोड़ कर कहा नाथ कुवलयाश्व की स्त्री मदालसा उसी रूप और अवस्था से हमारे घर में फिर जन्म ले। एवमस्तु त्रिनयन जी ने कहा और यह भी आज्ञा दिया कि तुम्हारी सांस से आज के तीसरे दिन मदालसा उत्पन्न होगी। तीसरे दिन मदालसा का जब जन्म हुआ तो नागाधिप ने सबसे छिपाकर उसको निज के जनाने में रक्खा। एक दिन बातों बात में अश्वतर ने कहा बेटा भला हम भी तुम्हारे मित्र को देखें। नागकुमार उसी समय कुवलयाश्व के पास आए और बोले हम आपसे कुछ जाचते हैं। कृतध्वज बोला मित्र हमारे धन्य भाग। इतने दिन तक आप लोग मेरे साथ रहे कभी कुछ न कहा आज भला इतना कहा तो। मैं राज्य और प्राण भी देने को प्रस्तुत हूं। कुमारों ने कहा मेरे पिता जी आप को देखा चाहते हैं। राजकुमार उन ब्राह्मण बने हुए नागकुमारों के साथ चला और वे दोनों उस का हाथ पकड़ कर यमुना में कूद पड़े। जब पैर तल पर लगे और कुंअर ने आंख खोली तो देखा कि एक रत्नमय नगरी में खड़े हैं। नागपुत्र कुमार को लेकर नागेश्वर के सामने गए। कुमार नाग लोगों का वैभव देखकर चकित हो गया। उसके नगर के जौहरी जितनी बड़ी मनियों का ध्यान भी नहीं कर सकते वैसी वहां अनेक देखने में आईं। नागसम्राट को तीनों कुमारों ने साष्टांग दण्डवत किया अश्वतर ने राजकुंअर का सिर सूंघा और गोद में बैठा कर बोले पुत्र तुम धन्य हो। आज तक तुम्हारे गुणों को अपने पुत्रों के मुख से सर्वदा सुनने से तुम्हें देखने की जो मेरी लालसा थी वह पूरी हुई। कहो कुछ हम भी तुम्हारा उपकार कर सकते हैं। कुंअर ने हाथ जोड़ कर कहा आप की कृपा से मेरे सब काम पूर्ण हैं यदि वर दिया ही चाहते हैं तो इतना ही दीजिये कि मेरी मति सदा सुपथ पर चले नागराज ने कहा तुम्हारी मति तो आप ही सुपथ पर है। कोई दूसरा वर मांगो। कुंअर नहीं मांगता था। गरज इसी संवाद में अवसर पाकर नागनंदन बोले पितः इन को तो केवल एक मात्र दुख है जो मैंने आप से पूर्व ही कहा था। कम्बलानुज उसी समय महल में से मदालसा को ले आये और कुमार का हाथ पकड़ा दिया। उस समय कुमार को जो अलौकिक आनंद हुआ वह कौन वर्णन कर सकता है। यदि ऐसे ही मरा हुआ कोई प्राण दिया मित्र मिलै तो उस का अनुभव किया जाय। पन्नगाधिपति ने पाताल में बड़ा उत्सव कर के उन दोनों का फिर से पाणिग्रहण कराया। नागनदंनों ने भी बड़ा आनंद किया और बड़े धूम धाम से कुंअर की दावतें हुईं। सारा नागलोक उमड़ पड़ा था और कुंअर को सब बधाई देते थे। कुंडला जो तप के बल से अब विद्याधरी हो गई थी मदालसा के गले से लगी और बधाई देकर बोली बहिन मेरे धन्य भाग हूँ कि तुझे जीती जागती भली चंगी अपने पति के साथ देखती हूं। भगवान करे तू सीली सपूती ठंढी सुहागिन हो और धन जन पूत लक्ष्मी से सदा से सदा सुखी रहे। अश्वतर का

भाई कंबल और भी बड़े-बड़े नाग लोग इस उत्सव में आए थे और कुंअर से मिल कर सब प्रसन्न हुए। मणिधर मुकुट मणि अश्वतर ने कुवलयाश्व को बहुत से मणि दिव्यवस्त्र चंदन इत्यादि देकर बड़ी प्रीति से धूम धाम से विदा किया और एक सज्जन मित्र का उपकार करके अपने को कृतकृत्य समझा और कुंअर से बहुत तरह से विनती करके कहा कि सदा आना जाना बनाये रहना और पिता से हमारा बहुत प्रणाम कहना। तुम्हारे स्नेह ने हमें बिना सैन्य जीत लिया है। नाग पत्नी और नागकन्याओं ने बहुत सा गहना कपड़ा दे उसका सिंगार किया और असीस देकर आंखों में आंसू भर के अपनी निज बेटी की भांति बिदा किया। कुंअर हंसी खुशी गाजे बाजे से उसी धूम धाम के साथ घर पहुंचा। मां बाप का बहू बेटे को देखकर ऐसा कलेजा ठंढा हुआ जैसे किसी को खोई हुई सम्पत्ति मिलै। राजा के सारे राज्य में आनंद फैल गया और घर घर बधाइयां होने लगीं। कुंअर को राज का बोझ सपुर्द कर के राजा भी सुचित हुआ और कुंअर भी मदालसा के साथ सुख से काल बिताने लगा। काल पाकर राजा रानी परलोक सिधारे और कुवलयाश्व राजा और मदालसा रानी हुई। राज का प्रबंध कुवलयाश्व ने बहुत अच्छा किया। प्रजा सब सुखी और चौर और दुखी। कुवलयाश्व मदालसा के साथ महल बगीचे बन पहाड़ों और नदियों के सुदंर सुंदर स्थानों में सुख से काल बिताता था। समय से मदालसा के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। नामकरण के दिन जब राजा ने उस का सुबाहु नाम रक्खा तो मदालसा हंसी। राजा ने पूछा "ऐसे अवसर में तुम क्यों हसी?" मदालसा ने कहा सुबाहु किसकी संज्ञा है इस जीव को कि इस देह की। देह की कहो तो नहीं हो सकती क्योंकि यह मेरा हाथ यह मेरा देह यह सब लोग कहते हैं इस से देह का कोई दूसरा अभिमानी मालूम होता है और जो कहो जीव की है तो जीव को तो बाहु हुई नहीं वह तो निर्लेप है फिर इस की सुबाहु संज्ञा क्यों। मेरे जान यह नामकरण इस का व्यर्थ है। राजा को ऐसे नामकरण के आनंद के अवसर में उस का यह ज्ञान छांटना जरा बुरा मालूम हुआ पर वह चुप कर रहा मदालसा जब बालक को खिलाने लगती तो यह कह कर खिलाती।

बैत। अरे जीव तू आतमा शुद्ध है। निरंजन है तू और तू बुद्ध है।
फंसा है तू आकर के भौजाल में। निराला है तू इन से पर चाल में।
न माया में इनके अरे कुछ भी भूल। न सपने की संपत पै इतना तू फूल।
तेरा कोई दुनिया में साथी नहीं। तेरा राज घोड़ा व हाथी नहीं।

चौपाई। पुत्र भूल तू जग में आया। माया ने तुझ को भरमाया।
तू है अलख निरंजन बेटा। जब माया ने तुझै लपेटा।
है तू इस शरीर से न्यारा। परमातमा शुद्ध अविकारा।
वही जतन कर तू सुत मेरे। जिस से छूटैं बंधन तेरे।

छोटेपन से ही ज्ञान के संस्कार से बड़ा होते ही वह लड़का संसार को छोड़-कर वन में चला गया और उसके पीछे दो लड़के और भी हुए वे भी बालकपन ही से ज्ञान का उपदेश सुनते सुनते जब बड़े हुए तो संसार से उदास होकर घर छोड़ गए क्योंकि कच्चे कलेजे में जो बात सिखलाई जाती है बड़े होने पर उसका असर चित्त पर बहुत रहता है। जब चौथा लड़का हुआ और उस का नामकरण करने लगा तो मदालसा से बोला कि अब की तुम्हीं इस का नाम रक्खो उन तीनों के हमारे नाम रखने से तुम हंसती थी। मदालसा ने उस लड़के का नाम अलर्क रक्खा। राजा ने पूछा अलर्क शब्द का तो कुछ अर्थ ही नहीं ऐसा नाम क्यों। मदालसा ने कहा पुकारने के वास्ते कोई संज्ञा रखनी चाहिए इस में सार्थक और निरर्थक क्या? एक दिन राजा ने देखा कि उस को भी वही सब कहकर खिला रही है तो राजा को बड़ा ही क्षोभ हुआ।

हाथ जोड़ कर बोला चण्डिके यह बालक हमें दान कर दो तीन को तुम मिट्टी में मिला चुकी यही एक बाकी रहा है। पति की इच्छानुसार मदालसा ने उसे ज्ञानोपदेश न करके उसके बदले अनेक प्रकार की नीति और धर्म पढ़ाया जिस के प्रताप से किसी समय अलर्क बड़ा प्रतापी हुआ क्योंकि माता की शिक्षा सब शिक्षा से बढ़कर है। राजा रानी ने अलर्क को समर्थ देखकर राज का भार सौंप दिया और आप तप करने बन में चले गए। यही अलर्क जब राज काज में भूलकर संसार में फंस गया था तो मदालसा के दिए हुए यत्र को (जिस में लिखा था सम्पति में औदार्य, विपत्ति में धैर्य, संग्राम में शौर्य और सब समय में जिसे ज्ञान नहीं उस का संसार में जन्म व्यर्थ है, सङ्ग, काम, क्रोध, लोभ, मोह यह पांचो दुस्त्यज्य हैं इस से इन को १ सत २ स्वकीया ३ अपनी अकृतज्ञता ४ सिद्धान्त ५ भगवान की ओर प्रयुक्त करै) पढ़कर और अपने बड़े भाइ सुबाहु की कृपा और दत्तात्रेय जी के उपदेश से बड़ा ज्ञानी गुणी प्रतापी और प्रसिद्ध राजा हुआ है।

मदालसोपाख्यान

(मार्कंडेय पुराण से संगृहीत)

जिसे

बाबू हरिश्चन्द्र ने

अपनी पत्रिका बालाबोधिनी से लेकर

युवराज

श्रीयुत प्रिन्स आव वेल्स बहादुर

के

शुभागमन के आनंद के अवसर में

बालिकाओं को

वितरण के अर्थ अलग छपवाया

जिस लड़की को यह पुस्तक दी जाय उससे अध्यापक लोग
४ बेर यह कहलावें "राजपुत्र चिरंजीव" ।

Benares Light Press

बनारस लाइट छापाखाना में मुद्रित हुआ ।

संगीत सार

भारतवर्ष की सब विद्याओं के साथ यथाक्रम संगीत का भी लोप हो गया। यह गानशास्त्र हमारे यहां इतना आदरणीय है कि सामवेद के मंत्र गाए जाते हैं। हमारे यहां वरंच यह कहावत प्रसिद्ध है 'प्रथम नाद तब वेद'। अब भारतवर्ष का संपूर्ण संगीत केवल कजली ठुमरी पर आ रहा है। तथापि प्राचीन काल में यह शास्त्र कितना गंभीर था यह हम इस लेख में दिखलावेंगे।

गाना, बजाना, बताना और नाचना इस के समुच्चय को संगीत कहते हैं। प्राचीन काल में भरत, हनुमत्, कलानाथ और सोमेश्वर यह चार मत संगीत के थे। कोई कोई शारदा, शिव, हनुमत् और भरत यह चार मत कहते हैं। सात अध्यायों में यह शास्त्र बंटा है—जैसे स्वर, राग, ताल, नृत्य, भाव, कोक और हस्त। सम्यक् प्रकार से जो गाया जाय उसे संगीत कहते हैं, धातु और मातु संयुक्त सब गीत होते हैं। नादात्मक धातु और अक्षरात्मक मातु कहलाते हैं। वह गीत यंत्र और गात्र विभाग से दो तरह के हैं। बीना बेनु इत्यादि से जो गाया जाय वह यंत्र और कंठ से जो गाया जाय वह गात्र गीत है। गीत निबद्ध और अनिबद्ध दो प्रकार के होते हैं, अक्षरों के नियम और गमक के नियम बिना अनिबद्ध और ताल मान गमक अक्षर रसादि के नियम सहित निबद्ध। शुद्ध, शालग और संकीर्ण के भेद से यह गीत तीन प्रकार के हैं परंतु यह भेद प्रबंध होके होते हैं। शुद्ध के एलादिक बीस भेद हैं। यथा एला, सोध्यभपा, पाटकरण, यंत्र, तालेश्वर, कैरात, स्मर, चक्रपाल, विजया, गद्य, त्रिभंगी, टेंको, वर्णपुर, सर्गपुट, द्विपदिका, मुक्तावली, मातका, लंब, दंडक और वर्त्तनी। इन गीतों के छ अंग हैं यथा पद, तान, बिरुद, ताल, पाट और स्वर। ध्रुपक, मंडक, प्रतिमंडक, निःसारक, वासक, प्रतिलाभ, एकतालिका, यति और झूमरी ये शालग के भेद हैं। पैना, मंगलक, नगनिका, चर्चा, अतिनाट, उन्नवीं, दोहा बहुला, गुरुबला, गीता, गोवि, हेम्ना, कोपी, कारिका, त्रिपदिका और अधा ये संकीर्ण के भेद हैं। गीत प्रबंध में अक्षरों के मात्राशुद्धि पुनरुक्ति इत्यादि दोष नहीं होते। गाना बजाना सब दो प्रकार का होता है एक ध्वन्यात्मक दूसरा रागात्मक। रागात्मक चार प्रकार के होते हैं, यथा स्वर प्रधान अर्थात् स्वर के आग्रह से जिस में ताल की मुख्यता न रहै, दूसरा उभय प्रधान जिसमें ताल बराबर रहे और स्वर भी सुंदर हों, तीसरा शुद्धता प्रधान जिस में राग के शुद्ध रूप रहने का आग्रह हो चाहै माधुर्य हो चाहै न हो, चौथा माधुर्य्य प्रधान जिस में राग का शुद्ध रूप कुछ बिगड़ै तो बिगड़ै पर माधुर्य रहै।

स्वर—षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, धैवत, पंचम और निषाद ये सात हैं। मयूर, गऊ, बकरी, क्रौंच, कोकिल, अश्व और हाथी इन के शब्द में क्रम से पूर्वोक्त स्वर निकलते हैं। नासा, कंठ, उर, तालु, जिह्वा और दंत छ स्थान से जो उत्पन्न हो वह षड्ज, (ऋषीशगतौ) स्वर की गति नाभि से सिर तक पहुंचै इस से ऋषभ, गंधवाही वायु की नलिकाओं में वह स्वर पूर्ण हो इस से गांधार, फिर वह स्वर मध्य अर्थात् नाभि तक प्राप्त हो इस से मध्यम, (धयति स्वरान् इति धैवत) मध्यम के आगे भी जो स्वरों को खींचैं वह धैवत, पूर्वोक्त पाँचों सुरों को पूर्ण करै वा पंचम स्थान मूर्द्धा तक पहुंचे वह पंचम और (निषीदन्ति स्वरा अस्मिन् इति निषाद:) स्वरों का जिस में विराम हो अर्थात् जिस से ऊँचा और स्वर न हो वह निषाद। इन्हीं सातों सुरों के प्रथमाक्षर * से स रि ग म प ध नि ये सात स्वर वर्ण नियत हुए। षड्ज, पंचम और मध्यम में चार; ऋषभ-धैवत में तीन और गांधार-निषाद में दो श्रुति हैं। संपूर्ण स्वर सरिगमपधनि। खाड़व निषाद बिना अर्थात् सरिगमपध और उड़व ऋषभ और पंचम बिना अर्थात् सगमधनि। नाटव—संतादि संपूर्ण राग सातों सुर से, खाड़व राग छ सुर से और उड़व पाँच सुर से गाए जाते हैं। नाम के क्रम से रखने से इन का प्रस्तार होता है और नष्ट, उद्दिष्ट, मेरु, मर्कटी, पताका, सूची, सप्तसागर इत्यादि में इस का विस्तार होता है।

राग—जैसे रास में वंशी के सात रंध्रों से सात सुरों की उत्पत्ति मानते हैं वैसे ही रास में १६०८ गोपियों के गाने से सोलह सौ आठ तरह के राग हैं, जो एक एक मुख्य से दो सौ अट्ठाईस तरह के हो कर बने हैं। भरत और हनुमत मत से छ राग भैरव, कौशिक (मालकोस), हिंदोल, दीपक, श्री और सोमेश्वर, और कलानाथ के मत से छ राग श्री, बसंत, पंचम, मेघ, और नटनारायण। पूर्वमत में प्रत्येक राग को पांच रागिनी, पर मत में छ रागिनी आठ पुत्र और एक एक पुत्रभार्य्या। अन्य मत से मालव, मल्लार, श्री, बसंत, हिल्लोल और कर्णाट ये छ राग हैं। मालव की रागिनी धानसी, मालसी, रामकीरी, सिंधुड़ा, भैरवी, और आसावरी। मल्लार की बेलावली, पूर्वा, कानड़ा, माधवी, कोड़ा और केदारिका। श्री की गांधारी, शुभगा, गौरी, कौमारिका, बेलवारी और बैरागी। बसंत की टोड़ी, पंचमी, ललिता, पटमंजरी, गर्जरी, और विभाषा। हिल्लोल की मायूरी, दीपिका, देशवारी, पाहिड़ा, बराड़ी और मोरहारी। कर्णाट की नातिका भूपाली, रामकली, गडा, कामोदा और कल्यानी। इन में बराड़ी, मायूरी, कोड़ा,

---

* 'ष', 'ऋ' के उच्चारण की सुगमता के हेतु 'स' 'रि' माना है।

बैरागी, धानुषी, वेलावली और मोरहारी मध्यान्ह को, गांधारी, दीपिका, कल्यानी, पूरबी, कान्हड़ा, शाखी, गौरी, केदारा, पाहड़ी, मालसी, नाटी, मायूरी, भूपाली और सिंघड़ा सांझ को और बाकी सबेरे गाना। राग छओ तीसरे पहर से आधी-रात तक। वर्षा में मल्लार और बसंत पंचमी से रामनवमी तक बसंत और वामन द्वादशी से विजयादशमी तक मालसी यह समय नियत है। वेलावली, गांधारी, ललिता, पटमंजरी, वैरागी मोरहारी, और पाहिड़ी (पहाड़ी) यह करुणा में, पूरबी, कान्हड़ा, गौरी, रामकीरी, दीपिका, आशावरी, विभाषा, बड़ारी और गड़ा यह बीर में, शेष श्रृंगाररस में गाना। वैसे ही मालव, श्री, हिल्लोल और मल्लार शृङ्गार में और बसंत और कर्णाट वीररस में गाना। यह पूर्वोक्त अन्य मत दक्षिण में प्रचलित है इधर नहीं। कहते हैं कि शिव, शारद, नारद और गंधर्व यह चार मत पृथक हैं। इधर हनुमत् और भरत मत मिल के प्रचलित हैं। हनुमत् मत से प्रथम राग भैरव, उस का ध्यान महादेवजी की भांति, उत्पत्ति शिव जी के मुख से, जाति उड़व अर्थात् धनिसगम, यह पंचस्वर, गृह धैवत, गाने का समय शरदऋतु में प्रातःकाल, भैरवी, बंगाली, बरारी, मधुमाधवी और सिंधवी यह पाँच रागनी, हर्ष, तिलक, सूहा, पूरिया माधव, बलनेह, मधु और पंचम ये आठ पुत्र। कलानाथ मत से यह चतुर्थ राग, इस की भैरवी, गुर्जरी, भासा, ब्रिलावली, कर्णाटी और बड़हंसा यह छ रागिनी, देवशाख, ललित, मालकोस, विलावल, हर्ष, माधव, बलनेह और मधु ये आठ पुत्र। सोमेश्वर-मत से भैरवी, गुनकली, देवा, गूजड़ि, बंगाली, और बहुली ये छ रागिनी और गाने का समय ग्रीष्म। भरत-मत से ललिता, मधुमाधवी, बरारी, बाहाकली और भैरवी यह पांच रागिनी, देवशाख, ललित, विलावल, हर्ष, माधव बगाल, विभास और पंचम ये आठ पुत्र, सूहा, विलावली, सोरठी, कुंभारी, अंदाही, बहुलगूजरी, पटमंजरी मिरवी यह आठ पुत्र-भार्या, मतांतर से भैरवी, बंगाली, बैराटी, मध्यमा, मधु-माधवी और सिंघवी यह छ रागिनी, कोशक, अजयपाल, श्याम, खरताप, शुद्ध और टोल यह छ पुत्र, अष्टी, रेवा, बहुला, सोहिनी, रामेली और सूहा यह छ पुत्रवधू। सब मतों से रागों को वर्णित करते हैं। मालकोस भरत मत से दूसरा राग है, विष्णु के कंठ से निकला है; संपूर्ण जाति, स्वर सातो सरिगमपधनि; गृह षड स्वर, शरद्ऋतु में पिछली रात को गाने का समय, ध्यान युव गौर पुरुष, इस की रागिनी हनुमत् मत से गौरी, दयावती देवदाली, खंभावती और ककुभ रागिनी, और गांधार, शुद्ध, मकर त्रिछन, महाना, शकबल्लभ माली और कामोद पुत्र, धनाश्री, मालश्री, जयश्री, सुधवारी दुर्गा, गांधारी, भीमपलासी और कमोद आठ पुत्र-भार्या। हिंदोल भरत मत से द्वितीय और हनुमत से तृतीय राग है; उत्पत्ति ब्रह्मा के शरीर से, जाति उड़ब, स्वर सगमपध पान्च, गृह षड्ज, गान समय वसंत ऋतु

दिन का प्रथम भाग, ध्यान स्वर्ण वर्ण हिंडोले पर झूलता हुआ। हनुमत मत से रागिनी रामकली, देशाखी, ललिता, विलावली पटमंजरी, पुत्र चंद्रबिंब, मंडल, शुभ, आनंद, विनोद, गौर प्रधान और विभास। भरत मत से रागिनी रामकली, मालावती, आशावरी, देवारी और गुनकली, पुत्र बसंत, मालव, मारू, कुशल, लंकादहन, वखार, बंध, नागधुन और धवल, पुत्रवधू, लीलावती, कैरवी, चैती, पारावती, पूरबी, तिरवरी, देवगिरी और सुरसती। दीपक हनुमत् मत से दूसरा और भरत मत से चतुर्थ राग, सूर्य के नेत्र से उत्पत्ति; जाति संपूर्ण, स्वर सरिगमपधनि सात, ग्रह षड्ज गाने का समय ग्रीष्म का मध्यान्ह, ध्यान हाथी पर सवार वीर वेष। हनुमत मत से रागिनी इस की देसी, कामोद, केदार, कान्हरा और कर्नाटी; पुत्र कुंतल, कमल, कामोद, चंदन, कुसुंभ, राम जहिल और हिम्माल। श्री राग दोनों मतों से पांचवां राग, जाति संपूर्ण, सात स्वर सारिगमपधनि ग्रह षडज, समय हेमंत की सन्ध्या, ध्यान सुंदर सिंहासनारूढ़ पुरुष। हनुमत मत से रागिनी मालश्री, मारवी, धनाश्री, बसंत आशावरी, पुत्र सिंधु मालव, गौड़, गुनसागर, कुंभ, गंभीर, संकर, और विहाग, भरत मत से रागिनी सिंधवी, काफी, देसी, विचित्रा और सोरठी, पुत्र श्री रमण, कोलाहल, सामंत, संकर, राकेश्वर, खट बड़हंस और देसकार (मतांतर से हम्मीर और कल्याण भी), पुत्र-भार्या कुंभा, सोंहनी, शारदा, धाया, शशिरेखा, सरस्वती, क्षमा और वैदा। मेघ दोनों मत से छठा राग, ध्यान श्याम रंग, शोणित-खंग-हस्त जाति उड़व, पंचस्वर यथा धनि-सरिग, ग्रह धैवत, गान-समय वर्षा की रात्रि, रागिनी टंक, मदपारी, गूजरी, भूपाली और देशी, पुत्र जालंधर, सार, नटनारायन, शंकराभरण, कल्याण, गजधर, गांधार और सहान, भरत मत से पांच रागिनी मलारी, सुलतानी, देसी रतिबल्लभा और कावेरी, पुत्र यथा कलामर, बागेश्वरी, सहाना, पूरिया, तिलक कान्हारा, स्तम्भ शंकराभरण पुत्र-वधू यथा कर्नाटी, कादपी, ककल्लनाट, पहाड़ी, मांझ, परज, नटमेजी शुद्ध नट। यह छ रागों का वर्णन हुआ। अब और बातों का भी वर्णन करते हैं।

मूर्च्छना वह वस्तु है जो खरज से ऋषभ तक पहुंचने में जहां स्वर बदलैगा वहां लगै। यह तो हनुमत् मत से है। भरत मत से स्वरों के गान में गले का कँपाना मूर्च्छना है। और मतों से ग्राम के सातवें भाग का नाम मूर्च्छना है। षडज ग्राम की मूर्च्छना, यथा ललिता, मध्यमा, चित्रा, रोहिनी, मतंगजा, सोव्वीरा षडमध्या। मध्यम ग्राम की मूर्च्छना, यथा पंचमी, मत्सरी, मृदु मध्या शुद्धा अन्ता, कलावती और तीव्रा। गांधार ग्राम की मूर्च्छना ७ यथा रौद्री, ब्राह्मी, वैष्णवी, खेदरी, सुरा, नादावती और विशाला। इन्हीं मूर्च्छनाओं का जहां शेष में विस्तार होता है उन को तान कहते हैं। वे ४ हैं। इन्ही में स्वरों के मेल से कूटतान होती हैं। इन मूर्च्छनाओं के जनक

तीन ग्राम हैं—षड्ज, मध्यम, गंधार। इन तीन ग्रामों में पूर्व दो पृथ्वी पर और अंत का स्वर्ग में गाया जाता है।

श्रुति वह वस्तु है जो स्वरों का आरंभ करती है और सूक्ष्म रूप से स्वरों में व्याप्त रहती है। ये ४ षड्ज में, ३ ऋषभ में, २ गान्धार में, ४ मध्यम में, ४ पंचम में, ३ धैवत में, २ निषाद में, यही २२ श्रुति हैं। कोमल, अति कोमल, समान, तीव्र, तीव्रतर से रीति रागों में यथा रीति सुर बरते जाते हैं और जहां सूक्ष्म और शुद्ध स्वर लगते हैं वहां काकली कहलाती हैं। लोगों का चित्त रंजन करते हैं इस से इन की राग संज्ञा है और जहां राग रागिनियों के ध्यान रूप क्रिया आदि लिखे हैं, उन का आशय यह है कि वैसे अवसर पर वे राग योग्य होते हैं। जैसे भैरवी का ध्यान है कि स्वेत वस्त्रा सबेरे शिवपूजन करती है। तो जानो कि ऐसे ही सबेरे शिव-पूजन के अवसर में इस का गाना उत्तम है।

हमारे प्रबंध के पढ़नेवालों को एक ही रागिनी का नाम बारम्बार कई रागों में देख कर आश्चर्य होगा। इस में हमारा दोष नहीं, यह संगीत शास्त्र के प्रचार की न्यूनता से ग्रंथों में गड़बड़ी हो गई है। कोई अन्वेषण करने वाला हुआ नहीं जो ग्रंथकारों को मिला वा उन्होंने सुना लिख दिया। यह तो जब अपने गले वा हाथ से करता हो और ग्रंथों को भी जानता हो वह एक बेर निर्णय कर के लिखै तब यह सब ठीक हो जाय।

ताल—समय का सूक्ष्म से सूक्ष्म और बड़ा से बड़ा समान विभाग ताल है। विचार कर के देखो तो छंदों की प्रवृति भी ताल ही से होगी। एक गिरह की लकीर खींचो तो इस बिंदु से लकीर के उस बिंदु तक उंगली ले जाने में जो काल लगैगा वह ताल ठहरा और उसी गिरह भर के बाल बराबर मोटे जितने सूक्ष्म भाग हैं उन के प्रति भाग पर जो काल लगा वह भी ताल है। पर ऐसे सूक्ष्म और ऐसे गुरु जिन के बरताव में काल का स्मरण न रहै वह कुछ काम नहीं आते। सिद्धांत यह कि गाने के अनुकूल समय का विभाग ही ताल है। नृत्य, गान वा वाद्य को नियमित काल से उठाना, नियमित काल पर समाप्त करना। उसी नियमित काल को अनेक समान भागों पर बांट देने की जो क्रिया है वह ताल है। महादेव जी के नृत्य तांडव और पार्वती जी के नृत्य लास्य का प्रथमाक्षर लेकर ताल शब्द बना है; वा ताल नाम हाथ की हथेली का पद-तल इस का भाव ताल है; क्योंकि प्रायः ताल विन्यास हाथ वा पैर ही से होता है। तालों के बनाने को चार मात्रा की कल्पना है, एक नियमित काल की मात्रा होती है। अर्द्ध मात्रा की द्रुत, एक मात्रा की लघु, दो मात्रा की गुरू और तीन मात्रा की प्लुत संज्ञा है। चंचत्पुट, चारुपुट इत्यादि साठ ताल के मुख्य और एक सौ एक गौण भेद संगीत दामोदर वाले शुभंकर ने किये हैं। इन चार मात्राओं पर अंगुल्यादि

से संकेत कर के ये ताल बनते हैं और इन्हीं मात्राओं को जहां बीच बीच में छोड़ देते हैं और काल के समाप्त का चिन्ह बीच में नहीं करते फिर दूसरे तीसरे इत्यादि पर चिन्ह करते हैं तो उस बीच में छूटे हुए काल में जहां नियमित मात्रा समाप्त होती है पर प्रगट नहीं की जाती उसे खवा खाली कहते हैं। एक नियम काल कल्पित मात्रा के ताल समाप्त होने पर फिर से वही ताल आरम्भ करने को इन दोनों की भिन्नता सूचक जो बीच का एक नियमित समान काल है वह भीख अर्थात् खाली कहलाता है। चंचतपुट ताल में दो गुरु एक लघु और एक प्लुत हैं, एक एक गुरु लघु और प्लुत चारुपुट में हैं, ऐसे ही सब तालों का प्रस्तार है। जहां मात्रा के काल अनुसार तान की समाप्ति होती है उस को सम कहते हैं, इन चौसठ तालों के अतिरिक्त आठ अष्टताल, ग्यारह रुद्रताल, चार ब्रह्मताल और चौदह इंद्रताल हैं। रुद्रताल का प्रथम भेद वीर विक्रम। यथा एक मात्रा एक शून्य ऐसी तीन आवृत्ति फिर दो ताल यह बीर बिक्रम हुआ। ऐसे ही सब ताल यथा मात्रानुसार जानो। आज कल प्रसिद्ध ताल चौताला, तिताला, एक ताला, आड़ा, रूपक, झपताल, इत्यादि हैं।

संगीत के पूर्वोक्त तीन भेद अर्थात् स्वर, राग और ताल गले के अतिरिक्त वाद्यों से भी संपादित होते हैं, अतएव अब वाद्यों का वर्णन करते हैं। बाजों के चार भेद हैं, यथा तत, सुशिर, आनद्ध और घन नए मत से अर्थात् कालानुसार दो भेद और कर सकते हैं; यथा समष्टि और स्वयंवह। तार से जो बजैं वह तत यथा वीणादिक। फूँकने से बजैं वह सुशिर यथा वंशी इत्यादिक। चमड़े से मढ़े हों वह आनद्ध यथा मृदंगादिक। कांसादिक से जो ताल सूचक हों वह घन यथा झांझ आदिक। ये चारों वा तीन वा दो जिस में मिले हों वह समष्टि यथा हारमोनियम आदि और जो ताली इत्यादि से बजैं वह स्वयंवह यथा अरगन आदि। ये सब वाद्य तीन भेद में विभक्त हैं यथा स्वरवाही, तालवाही और उभयवाही। तम्बूरादिक स्वरवाही, झांझ इत्यादि तालवाही, वीणादिक उभयवाही। इन चारों में तत में वीणा, सुशिर में वंशी आनद्ध में मृदंग और घन में ताल (झांझ) मुख्य हैं। तत यथा अलाबुनी, ब्रह्मबीना, किन्नरी, लघुकिन्नरी, विपंची, बल्लकी, ज्येष्ठी, चित्रा, ज्योतिष्मती, जया, हस्तिका, कुजिका, कूर्मा, शारंगी, परिवादिनी, त्रिशरी, शतचंद्री, नकुलौष्ठी, टंसरी, उडम्बरी, पिनाकी, निबन्ध, तानपूर, स्वरोद, स्वर मंडल, स्वर समुद्र, शुष्कल रूद्र, गदावारण, हस्तक, विलास्य, मधुस्पन्दी, और घोण इत्यादि। वीणा के तीन भेद हैं यथा वल्लकी, पंचतंत्री (विपंची) और परिवादिनी। ध्वनिमाला, रंगमल्ली, घोषवती, कंठ-कूजिका और विद्युत ये वीणा ही के नामांतर हैं। वीणा के सात भेद और हैं यथा नारद की महती, शिव की लम्बी, सरस्वती की कच्छपी, तुंबरू-की कलावती,

विश्वावसु की वृहती और चांडालों की कंडोलवीणा अथवा चांडाली (इस का प्रयोजन शव क्रिया के समय पड़ता था)। वीणा के अंग को कोलंबक, बंधन को उपनाह, दंड को प्रवाल, बगल के काठ को कुकुभ और प्रसवेक और वंशशाला, काकलिका, कूनिका, मेरु इत्यादि और वस्तुओं को कहते हैं। सुशिर यथा, वंशी, मुरली, वेणु (तीनों वंशी के भेद) पारी, मधुरी, तित्तरी, शंख, काहला, तोंमडी, निषंग, बुक्का, शृंगिका, मुखचंग, खरनाभि, आवर्त्ती, शृंग, कापालिका, चर्म्मवंश, स्वरनादी (सैनाई), बक्रगला, चर्म्मदेहा और गलखरा इत्यादि। वेणु रक्तचन्दन, खैर, चन्दन, स्वर्ण, चादी, तामा, लोहा और कठिन पाषाण का होता है परंतु बांस का सब से उत्तम है। मतंग मुनि के मत से बांस ही का वेणु होता है। दस अंगुल का वेणु महानंद, इस के ब्रह्मा देवता, ग्यारह अंगुल का नंद इस के रुद्र देवता, बारह अंगुल का विजय इस के सूर्य्य देवता और चौदह अंगुल का जय इस के विष्णु देवता। वंशी की फूंक में निबिड़ता, प्रौढ़ता, सुस्वरता, शीघ्रता, और मधुरता ये पांच गुण हैं और सीत्कार-बाहुल्य, स्तब्ध, विस्वर, खंडित, लघु और अमधुर ये छ दोष हैं। तेरह और सत्रह अंगुल की वंशी नहीं बनाना इस में आचार्यों ने दोष माना है। कानी उंगली जा सकै इतना बीच का छेद (पोलापन) रहै, यह छेद आरपार रहै, पर सिर की ओर किसी वस्तु से अवरुद्ध वा बंधनांतर संयुक्त रहै, सिरे से एक अंगुल वा दो अंगुल छोड़ कर स्वर का छेद करना, फिर पांच अंगुल छोड़ कर सात सुर के सात छेद आधे आधे अंगुल पर बैर के बीज के बराबर करै, दोनों ओर तार वा धर्म्मतार से वंशी को बांधै और बीच में सिक्कक (छींके) स्वर को मधुर और श्रुति उत्पन्न करने को लगावै। अयुक्ति बद्धयुक्ति और युक्ति [अर्थात् छिद्रों को बंद करना खोलना और उस से श्रुति लय तान इत्यादि किंचित् बंद कर के निकालना] ये तीन अंगुलिक्रिया हैं और अकम्पत्व और सुस्वरत्व में दो अंगुली के गुण हैं। गाने वालों को सहायता देना, स्थान देना, उन के दोष छिपाना और जिन स्वरों पर गला न पहुंचै वे स्वर निकालने ये चार इन में लाभ हैं। भगवान को तीन वंशी हैं यथा घर में बजाने की १२ अंगुल की मुरली संज्ञक, श्री गोपीजन को बुलाने की १८ अंगुल की वंशी संज्ञक और गऊ बुलाने की एक हाथ की वेणु संज्ञक। उस से ज्ञात होता है, वेणु का प्रमाण एक हाथ तक है। आनद्ध में मर्दल, अर्द्धमर्दल, मर्दल खण्ड, ढलक, मुरज, ढक्का, पटह, बिंबक, दर्पवाद्य, पवन, घन रुञ्ज, कलास, विकलास, टाकली अर्द्ध टाकली, जिलाटकलिका, गोमुद्री, अलाबुज, लावज, त्रिवल्य, कठ, कमठ, भेरी, हुडुक, कुडुक, झनस, मुरल, झल्ली, दुकुल्ली, दौंडिशान, डमरू, तुंबुर, टमुकिडु, कुंडली, स्तंकु, अभिघट, रज, दुंदुभी, दूदुभी, दर्दुर, उपांग खंजरीट, करचंग

ये सब हैं। इन में मर्दल [मृदंग] श्रेष्ठ है। मर्दल खैर के काठ का अच्छा होता है। चमड़े की डोरी से मेरु-संयुक्त कर के दोनों मुंह मढ़ा कर कसना मढ़ने के पीछे छ महीने तक न बजाना। काठ का दल आध अंगुल मोटा हो, बाईं ओर पूरी दस वा बारह अंगुल चौड़ा हो तथा दहिनी उस से एक वा आधी अंगुल छोटी हो। बाईं ओर तो पिसान की पूरी चिपकाना और दहिनी ओर खरली (खली) की पूरी लगा के सुखा देना। वह खरली—राख, गेरू, भात और केन्दुक (गालव, शायद भाषा में केंदुआ कहते हैं) की हो वा चिपीटक (चूड़ा ?) में जीवनीसत्व (?) मिला कर लगाना। मट्टी का हो तो मृदंग कहलाता है। इस में पाट, विधि पाट, कूटपाट, और खंड पाट ये चार प्रकार के वर्ण हैं और यति, उड़व, अवच्छेद, गजर रूपक, ध्रुव, गलय, सारिगींनी, नाद, कथित, ग्रहरन और वृंदन ये बारह प्रबंध हैं। घन में करताल, कांस्यताल, कम्बिका, जयघंटा, शक्तिका, पटवाद्य, पद्दातौप, घर्घर, दंदा, झंझा, मञ्जीर, कर्तरी, उंकुर, काष्टताल, प्रस्तरताल, दंतताल, जलतरंग, तालतरंग, पाञ्चतरंग त्रिकोण घंटा, ढोलक इत्यादि हैं। घन के दो भेद हैं। अनुरक्त वह जिन में गीतों का अनुगमन हो और विरक्त वह जो केवल ताल दें। लड़ाई में वीरों का गर्जन और ये चार वाद्य बजते हैं, इस से लड़ाई की पंचवाद्य संज्ञा है। यह वाद्यों का साधारण वर्णन हुआ। ऐसे ही अनगिनत वाद्य हैं, जो अब नाम मात्रावशेष हैं। उन के रंग रूप की किसी को खबर नहीं।

संगीत का चौथा अंग नृत्य है। ताल, मान, रस, भाव, हास, विलास, वाद्यादि संयुक्त अंग विक्षेप का नाम नृत्य, इस के दो भेद तालाश्रित नृत्य और भावाश्रित नृत्त। नृत्य मधुर हो तो लास्य और उत्कट हो तो तांडव कहलाता है। तांडव के पेरली और बहुरूप ये दो भेद हैं। जिस में अंग बहुत चलैं पर अभिनय थोड़ा हो वह पेरली, इसी की देशी भी संज्ञा है। जहां अभिनय बहुत हो और रूपांतरधारण इत्यादि क्रिया हो वह बहुरूप। लास्य के छुरित और यौवत दो भेद हैं। जहां नायिका-नायक रस पूर्वक भाव परस्पर दिखाते, चुंबन इत्यादि करते नृत्य करैं वह छुरित और जहां नटी वा नटी-वेषधारी सुंदर पुरुष नाचैं वह यौवत। हाथ-पैर सिर-नेत्र का चलाना, मुड़ना, फिरना, भाव, कमर लचकाना, घुंघरू बजाना-गाना, वस्त्र उठाना, और घूमना इस सब नृत्य के अंगों में जिस को अभ्यास न हो और जो सुंदर न हो वह न नाचै। अलागलाग, उरपतिरप, लगडांट, लहाछेह घटबढ़ और सङ्कोचन-प्रसारन ये नृत्य के काम हैं और शिव नृत्य, मकरनृत्य रास नृत्य, कुक्कुट नृत्य, मण्डूकनृत्य, वलाकानृत्य, हंसनृत्य, कर्त्तकनृत्य, मण्डल-नृत्य, युगल-नृत्य, एकहाश-नृत्य, आलातचक्र, कलानृत्य, इत्यादि नृत्य के और अनेक भेद हैं।

संगीत का पांचवा अंग भाव है। निर्विकार चित्त में प्रीतम वा प्रिया के

संयोग वा वियोग के सुख वा दुःख के अनुभव से जो प्रथम विकार हो वह भाव है। उसी का अनुरकरण नृत्य में करना भाव-क्रिया है। हंसना, रोना, उदास होना, प्रसन्न होना, व्याकुल होना, छकना, मत्त होना, बुलाना, प्रणाम करना इत्यादि क्रिया को गीत अर्थ के अनुसार प्रत्यक्ष दिखाना भाव है। भाव के चार भेद हैं, यथा स्वर, नेत्र, मुखाकृत और अंग। स्वर से दुःख, सुख इत्यादि का बोध करना स्वर भाव है। यह बहुत कठिन है क्योंकि गाने के स्वरों का व्यत्यय न होकर भाव प्रगट हों यह कठिन बात है। नेत्र ही से सब बातों का बोध हो और अंग न चलैं, वह नेत्र भाव है। यह भी कठिन है पर तादृश नहीं. परन्तु इस में नेत्र ही से हंसी प्रगट करना वा अनायास आंसू बहाना कठिन काम हैं। मुख की चेष्टा ही से भाव प्रगट करना मुखाकृत भाव है, अर्थात् कोई अंग न हिलै, भौं नेत्र इत्यादि यथा स्थान स्थित रहैं, और भाव चेष्टा से प्रगट हो, यह भी बहुत कठिन है। अंग अर्थात् नेत्र, हाथ इत्यादि अंगों से भाव बताना अंग भाव है। यह औरों की अपेक्षा सहज है। । नृत्य वा गीत में इन में से एक वा दो वा तीन वा चारों साथ ही किए जाते हैं। भाव रसज्ञता जितनी विशेष होगी उतने ही अच्छे होंगे क्योंकि अनुभवगम्य हैं।

संगीत का छठा भेद कोक अर्थात् नायिका, नायक, रसाभास, आलंबन, उद्दीपन, अलंकार, समय, समाज इत्यादि का ज्ञान कोक है। यह साहित्य ग्रन्थों में सविस्तर वर्णित है इस से, यहां नहीं लिखते। इस का जानना संगीत वाले को अवश्य क्योंकि भाव और नृत्य में इस के बिना काम नहीं चलता।

सातवां भेद हस्त है। नाचने गाने वा बताने में हाथ चलाना हस्त है। इस के दो भेद हैं, एक लयाश्रित दूसरा भावाश्रित। प्रायः यह नृत्य और भाव के अन्तर्गत ही सा है, इस से कोई विशेषता नहीं।

पूर्वोक्त सातों अंग की समष्टि का नाम आदि संगीत-दामोदर, संगीत कल्प-तरू, संगीतसार इत्यादि ग्रन्थों से चुनकर और अपनी जानकारी के अनुसार भी ये बातें यहां लिखी गई हैं। इस को लिखकर प्रकाश करने में हमारा कुछ प्रयोजन है। शास्त्र दो प्रकार के होते हैं—एक अदृष्टवाद दूसरे दृष्टवाद। अदृष्टवाद परलोक इत्यादि के मत में मनुष्य को तर्क छोड़कर केवल शास्त्र अवलंबन करना चाहिए। दृष्टवाद में शास्त्रों के और बुद्धि के तथा अपने और दूसरों के अनुभव के अविरुद्ध जो बात हो वह माननी चाहिए। संगीत शास्त्र दृष्टवाद है, इस में शास्त्र के और अपने मत के अविरुद्ध मनुष्य को बरतना उचित है। अब देखिए कि सगीत की क्या दशा हो रही है। कितनी रागिनियों का गाना कौन कहै किसी ने नाम भी नहीं सुना है। कितनी मतभेद से दो दो चार रागों की रागिनी हैं, यह क्या? केवल अंध परंपरा। हम यह पूछते हैं कि प्रथम गाने में चार मत होने ही का

क्या प्रयोजन ? एक भैरव राग सारा संसार एक स्वर-क्रम और रीति से गावै, यदि कहीं मतों के भेद से चारों भैरव में भेद है तो उस में एक से भैरव सिद्ध रक्खो बाकी या तो किसी दूसरे राग में आप ही मिले निकलैंगे, यदि न मिले निकलैं, उन का दूसरा नाम रक्खो । ऐसे ही हज़ार बातैं हैं, कोई बंधा हुआ नियम नहीं । जितने इस विद्या के जानने वाले, अपने अभिमान में मत्त हैं । कोई ऐसा नियम नहीं कि जिस के अनुसार सब चलें । यही कारण है कि राग के पत्थर पिघलने इत्यादि प्रभाव लोप हो गए । हा ! किसी काल में इस शास्त्र का ऐसा कठिन नियम था कि पुराणों में बराबर लिखा है कि ब्रह्मा ने अमुक गंधर्व को ताल से वा स्वर से चूकने से यह शाप दिया, शिवजी ने यह शाप दिया, इंद्र ने यह शाप दिया, वही संगीत शास्त्र अब है कि कोई नियम नहीं । शास्त्र असिल सब डूब गए । कुछ जैनों ने नाश किये, कुछ मुसलमानों ने । मुसलमानों में अकबर और मुहम्मदशाह को इस का ध्यान भी हुआ तो बड़े बड़े गवैये मुसलमान बनाए गए, जिन से हिंदुओं का जी और भी रहा सहा टूट गया । चलिए सब विद्या मिट्टी में मिली । उस में मुख्य कारण यही हुआ कि केवल गुरूमुख-श्रुति, पर यह विद्या रही । किसी ने कभी इस को ऐसी सुगम रीति पर न लिखा कि उसे देखकर वही काम दूसरे कर सकें । धन्य ! राजा यतींद्रमोहन ठाकुर जिन्होंने इस काल में इस विद्या की बड़ी ही वृद्धि की । श्री क्षेत्रमोहन गोस्वामी ने इस विषय में नियम भी बनाए हैं और बाबू कृष्णधन बानुर्जी ने एक सितार-शिक्षा भी छपवाई है । उधर के लोगों ने इस विषय में बहुत कुछ किया है । पर इधर अभी कुछ नहीं हुआ । हमारे काशी के बाबू महेशचंद्र देव ने सितार, बीन और तानपूरा बनाने में जैसे परिश्रम कर के खूंटी, तूमा इत्यादि में नई उपयोगी बात निकाली हैं वैसे ही और सब जानकार लोग मिलकर एक बेर इस लुप्त हुए शास्त्र का भली भांति मंथन कर के इस की एक सनियम उज्वल परिपाटी बना डालैं । नहीं तो यह शास्त्र कुछ दिन में लोप हो जायगा । और हमारे हिंदुस्तानी अमीरों को चाहिए कि वारवधू के मुखचन्द्र के सुन्दरता ही पर इस विद्या की इति श्री न करैं, कुछ आगे भी बढ़ैं । हम ने इस में जो बातैं लिखी हैं उन को सब से खंडन मंडन पूर्वक निर्णय करने के वास्ते यहां प्रकाश करते हैं । जो लोग जानकार हैं वे आनन्द से जो इस में अयो-ग्य हो उस का खंडन करैं, जो बात हमारे समझ में न आई हो उसे समझावैं और जो योग्य हो उस का अनुमोदन करैं । इस विषय में जो कोई पत्र भेजैगा उसे हम बड़े आनन्दपूर्वक प्रकाश करैंगे । आशा है कि हमारा परिश्रम व्यर्थ न जायगा और इस विद्या के रसिक लोग हमारी बिनती के अनुसार इस के उद्धार का उपाय शीघ्र ही करैंगे ।

ख़ुशी

हरबदिल ख्वाह आसूदगी को ख़ुशी कह सकते हैं याने जो हमारे दिल की ख्वाहिश हो वह कोशिश करने से या इत्तिफ़ाक़ियः बग़ैर कोशिश किये बर आवे तो हम को ख़ुशी हासिल होती है ख़ुशी जिन्दगी के फल को कहते हैं अगर ख़ुशी नहीं है तो जिन्दगी हराम है क्योंकि जहां तक ख़याल किया जाता है मालूम होता है कि इस दुनिया में भी तमाम जिन्दगी का नतीजा ख़ुशी है।

इसी ख़ुशी के हम तीन दर्जे क़ायम कर सकते हैं याने आराम, ख़ुशी और लुत्फ़—आराम वह हालत है जिस में तकलीफ़ का एक हिस्सा या बिल्कुल तकलीफ़ रफ़अ हो जावे। ख़ुशी वह हालत है जिस में तकलीफ़ का नाम भी न बाक़ी रहे।

ख़ुशी तीन क़िस्मों में बंटी याने दीनी ख़ुशी, दुनियवी ख़ुशी और ग़लत ख़ुशी।

दीनी ख़ुशी अपने २ मज़हब के उक़दे के मुताबिक़ कुछ २ अलग है मगर नतीज़ा सब का एक ही है याने इतात दुनियवी से छूट कर हमेशः के वास्ते परमेश्वर की क़ुर्बत मयस्सर होनी ही असली ख़ुशी है हम लोगों में परमेश्वर का नाम सत्‌चित आनंद है और हम लोगों के नेक अक़ीदे के मुताबिक परमेश्वर का नाम रूप सब बिल्कुल लतीफ़ है इसी से उस की याद में लुत्फ़ हासिल होता है। उपनिषद में एक जगह सब की ख़ुशी का मुकाबिला किया है। वह लिखते हैं कि ख़ुशी ज़िंदगी का एक जुज़े आज़म है और दुनिया में जितने मख़लूक़ात हैं सब ख़ुशी ही के वास्ते मख़लूक़ हैं इसी सब ख़िलक़त में जानदारों की बनावट और लियाक़त के मुताबिक़ ख़ुशी बंटी हुई है, कीड़ा सिर्फ़ इस बात में ख़ुश होता है कि एक पत्ते पर से दूसरे पत्ते पर जाय, चिड़ियों की ख़ुशी का दर्जा इस से कुछ बढ़ा है याने इधर उधर पर बाज़ करना बोलना बग़ैरः इसी तरह अख़ीर में आदमी की ख़ुशी बनिस्बत और जानवरों के बहुत बढ़ी चढ़ी है। आदमियों में भी बनिस्बत बेवकूफ़ों के समझदारों की ख़ुशी का दर्जः ऊंचा है। आदमियों की ख़ुशी से देवताओं की ख़ुशी बहुत ज्यादः है। इस लंबी चौड़ी तकरीर का खुलासा उन्होंने यह निकाला है कि सब से ज्यादः और लतीफ़ परमेश्वर है उस में कितना लुत्फ़ और ख़ुशी है जो हम लोग नहीं जान सकते इसी से अगर हम लोगों को ख़ुशी और लुत्फ़ की तलाश है तो हम लोगों को उसी का भजन करना चाहिए।

इस के पहले दुनियवी ख़ुशी का बयान किया जाय उस ख़ुशी का बयान आप लोग सुन लीजिए जो अब हम हिंदुओं को ख़ास कर साकिनाने बनारस को मयस्सर है। सब से बड़ी ख़ुशी बेफ़िकरी है।

"अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका यों कहैं, कि सब के दाता राम॥"

ऐसे ही खूब भांग पीना, झन्नाटे इक्के पर सवार हो कर बहरी ओर जाना कभी २ कुछ गाना सुन लेना बरसात के दिनों में अगर फोलनी दाना मयस्सर हो तो क्या बात है। अगर इस खुशी का दर्जा बहुत बढ़ गया तो एक आध सैल हो गई कुछ खाना कुछ पीना कुछ नाच कुछ तमाशा हो गया और अगर यही खुशी 'सिविलाइज्ड' की गई तो उसकी छोटी २ कुमेटियों या वर्ष की दावत से बदल दिया।

इस से मेरा यह मतलब नहीं है कि इन बातों में बिल्कुल खुशी नहीं है बेशक तफरीह में खुशी है मगर उन्हीं लोगों की जो हमेशः बड़ी खुशी की तलाश में रहते हैं और जो दुनियवी खुशी के बयान में हम दिखावेंगे।

जिन की तबीयत तहक़ीक़ात की तरफ रुजूअ है और जो लोग हर शय और हर फे़ल का सबब और नतीज़ा दरयाफ्त करने की ख़्वाहिश रखते हैं और यह भी जानना चाहते हैं कि इस दुनियां में जिंदगी की हालत में इनसान को किस चीज़ की ज्यादः ज़ुरूरत है उन पर यह बात बखूबी रौशन होगी कि इस किस्म के खयालों की तहजीब के कायदों के पैरौ पर रह कर दलीलों से सुलझाने में और बसबूत कामिल इस अख्ल का तसफ़ियः करने में कैसे वक्त दर्पेश होते हैं। चुनांचे जब हम खयाल करते हैं कि दुनियां में हम को किस खास चीज़ की जरूरत है और वह जरूरत लाजमी क्यों है तो दिल में मुख़्तलिफ़ वजूहात के साथ कई किस्म के खयाल पैदा होते हैं और मुखतलिफ़ हाजतों के रफ़अ़ करने की मुखतलिफ सूरतें दरपेश करती हैं मगर इस मौक़अ पर हम रूह की उस खास हाजत का जिक्र करेंगे जिसे जिंदगी का वसूल और अक्ल का नतीजा कहना चाहिये याने खुशी। यह वह चीज़ है जिस के हासिल करने की कोशिश हम पर उतनी ही लाज़िम है जितना उस के तहसील के तरीकों के मालूम करने की भी ज़ुरूरत है इसी से इस लाज़िम मल्ज़ूम ज़ुरूरत की क़ैफ़ियत को हम खुशी के नाम से पुकारते हैं। अब यह सवाल पैदा हुआ कि हमारी जिंदगी के वसूल का यह लतीफ हिस्सा याने खुशी क्या चीज़ है और क्यों कर हासिल हो सकती है इस सवाल का जवाब अकसर बड़े २ आलिमों ने अपने २ तौर पर दिया है जिन सभों को इखतिसार से पहिले बयान कर के तब जो कुछ होगा हम अपनी राय जाहिर करेंगे। मशहूर फिलासफ़र पेली का कौल है कि खुशी दिल की वह हालत है कि जिसमें तअदाद राहत की रंज से ज्यादः बढ़ जाय। खुशी की शुरूअ हालत ख्वाहिश के मुताबिक़ काम शुरूअ करना, बाद अजआं और कामियाब होता है वह काम चाहे किसी किस्म का क्यों न हो मसलन इल्म व हुनर सीखना मुल्क फतह करना बाग लगाना गाना खाना वगैरः वगैरः इसी खुशी के हासिल करने के वास्ते पहिले हम लोगों को चन्द दर-चन्द तकलीफें इन कामों में कामयाब होने को उठानी पड़ती हैं। मुमकिन है कि

बग़ैर खुशी हासिल होने तकलीफ रफ़ा हो जाय मगर जब तकलीफ़ के दूर होने को हम बेशक खुशी कह सकते हैं और इसी सबब से खुशी की बतौर सरसरी के तहक़ीक़ात की जाय तो यह बात साबित होगी कि खुशी उस हालत का नाम है जिस में रंज का हिस्सा राहत से दब गया है। केराट साहब का कौल है कि खुशी हमेशः तकलीफ का नतीजा है और इस की मिसाल मकान बनाने से साफ जाहिर है यह बात हम लोगों की आदत में दाखिल है कि अपनी मौजूदः हालत को कभी नहीं पसंद करते और हमेशः अपनी हालत असली से बढ़ने की कोशिश करते हैं तकलीफ मौजूदः को दबा कर खुशी के हिस्से को बढ़ाया चाहते हैं अगर हमारी खुशी हमेशः क़याम पज़ीर होती तो हम हालत मौजूदः से नहीं घटे हुए होते क्योंकि हम लोग किसी क़िस्म की कोशिश न करते और जिस का नतीजा यह होता कि कोई नई बात न जाहिर होती इसी से गोया उसी कारसाज हक़ीक़ी ने दुनिया की तरक्की के वास्ते यह क़ायदा मुकर्रर किया है कि आदमी पहिले जैसी तकलीफ उठावे पीछे से आराम हो और इसी बुनियाद पर आदमी पहिले जैसी तकलीफ उठावे पीछे से आराम हो और इसी बुनियाद पर आदमी की खासियत भी ऐसी ही बनाई है। हां यह बात बेशक है कि किसी को कम तकलीफ है और किसी को ज्यादः और कोई उसे थोड़ी कोशिश में हासिल करता है और किसी को अपनी उम्र का एक बड़ा हिस्सा उस के हासिल करने में सर्फ करना होता है। इसी को तफरीह हम लोग कहते हैं कि यह आदमी खुश है और यह ज्यादः खुश है इसी सबूतों से कहा जाता है कि खुशी और यही सबब है कि रंज और राहत लाजिम मलजूम हैं। बल्कि इसी से हमेशः यह एक मुअइअन कायदा है कि कोई काम बग़ैर तकलीफ के शुरूअ नहीं होता।

सर बीलियम हमिलटन खुशी की तारीफ़ में फरमाते हैं कि खुशी खुद कोई चीज़ नहीं है बल्कि आदमी की खासियत या आदत को जब कोई रुकावट नहीं होती तो यही हालत खुशी की कहलाती है—

इन आलिमों की राय पर बहस न कर के अब हम खुशी के लफ्ज को भी कुछ बयान किया चाहते है। खुशी एक नाम है जो आराम को याने ख्वाहिशों के पूरे होने की और तकलीफों की हालत को कहते हैं और इस ऊपर के लफ्ज़ी बयान से भी साबित हुआ कि खुशी एक ऐसा लफ्ज है जो हमेशा तकलीफ के मुकाबले में मुस्तअमल होता है।

बहुत लोगों का खयाल है कि खुशी से इल्म से कुछ इलाक़ा नहीं है बल्कि वह एक खसलत जबली है जो इनसान और हैवान दोनों में बराबर होती है। मगर यह बात नहीं है क्योंकि इस किस्म की हैवानी खुशी से आलिम लोगों की खुशी से क्या फर्क़ है यह जिस को कुछ भी शऊर है बखूबी जान सकते हैं और इसी से

कहा जा सकता है कि मिस्ल हैवानों के जो खुशी है वह झूठी खुशी है और जो इस खुशी के दर्जः से बढ़ी हुई है वह खुशी है बल्कि खुदापरस्त लोग इसी वास्ते इन दोनों खुशियों से बढ़कर के एक खुशी ऐसी मानते हैं जिस की कोशिश में दुनियवी खुशियों को भी तर्क कर देना होता है।

यह हर शख्स जानता है कि बार २ इस्तअमाल करने से कैसी भी खुशी क्यों न हो ज़ायः हो जायगी बल्कि ऐसी हालत में उसी खुशी का नाम बदल कर आदत है यही सबब है कि अय्याश लोग अकसर गमगीन देखे गये हैं क्योंकि पहिले जिस खुशी को उन्होंने बड़ी कोशिश से हासिल किया था अब वह उन का रोज मर्रः हो गया और हवस कम न हुई पस जब वह रोज अपनी औक़ात, ताक़त, इज्ज़त और रुपया सर्फ़ करते हैं मगर हज़ नहीं हासिल होता तो ग़मगीन होते हैं। इसी किस्म से खाना, पीना, नाच, रंग वग़ैरह की खुशी भी जल्द ज़ायः हो जाती है मगर हां शिकार वगैरः की खुशी का दर्जः कुछ इस से बड़ा है और इसी तरह वह खुशी जो सनअत सीखने से हासिल होती हैं मसलन रंगराजी, इल्म मुसीक़ा, कारीगरी वगैरः ऊपर बयान की हुई खुशियों से ज्यादः देरपा है क्योंकि गुंजाइश के सबब से यह खुशी जलदी ज़ायः नहीं होती और इसी से जल्द ज़ायः होनेवाली खुशी के तलबगारों को अखीर में इसी खुशी से उकताकर के गोश नशीनी की तलाश होती है।

यही हम कह सकते हैं कि हर शख्स को अपने २ हौसलः और हिम्मत के मुआफ़िक ज्यादः २ खुशी मिलती है इस बयान से मेरा यह मतलब नहीं है कि बड़े मर्तबः के लोगों की गरीबों से ज्यादः खुशी होती है बल्कि उन ग़रीबों को जो कि अपनी हालत में तो गरीब हैं मगर उन के हौसले बहुत बड़े हैं बनिसबत अमीरों के हमेशः ज्यादः खुशी हासिल होती है।

तवारीख से यह बात बखूबी साबित है कि बड़े बड़े फतह करनेवाले पांद-शाह या शाहज़ादे बनिस्बत अवाम के हमेशः ज्यादः तर मुसीबतें झेलते रहे हैं और खुशी से यहां तक महरूम रहे हैं कि उन में से अक्सरों ने खुदकुशी की है और बहुतेरे घर बार छोड़ कर फकीर हो गए हैं फ़ीजमानन शहनशाह रूस पर इस की मिसाल बहुत ठीक घटती है बेशक दुनिया में वह सबसे बड़ा और सब से ज्यादः खुशी से महरूम है। ग़रीब की एक जान हज़ार दुशमन। बल्कि हमारे हाज़रीन में से ज्यादः लोग ऐसे होंगे जो दरहक़ीक़त इस वक्त हमारे जनाब मुअल्ला अल्काब गर्दूं रकाब शहन् शाहे रूस दाम सल्तनतहू से बहुत ज्यादः खुशी होंगे।

इसी से हम कहते हैं कि खुशी से मर्तबः से कुछ वास्ता नहीं खुशी एक नेअ-मते उज़मा है जिसे हर शख स नहा पाता फारसी किताबों में मशहूर किस्सा है कि

एक खुदापरस्त हमेशः परमेश्वर से अपने रंजों की शिकायत किया करता था अल्लाह तअ़ला ने उस की यह शिकायत रफह करने को एक आईनः दिया और फरमाया कि इस आईनः में तू सबका दिल देख और जो इनसान तुझ को तेरी हालत से ज्यादः खुश मालूम हो उस का नाम बतला कि तेरी हालत वैसी ही कर दी जाय। इस शख्स ने एक २ के दिल का इम्तिहान किया और ज्यों २ ज्यादः रुतबे के आदमियों का दिल देखा गया त्यों २ ज्यादः तर तकलीफों से घेरा हुआ पाया यहां तक कि जब बादशाह के दिल के देखने की नौबत आई तब उस आईनः में सिवाय काले दागों के कुछ न बचा और उस ने घबरा कर आईने को दरिया में फेक दिया और अपनी असली हालत पर खुदा का शुक्र किया। इस कहने से मेरा यह मतलब नहीं है कि आदमी अपने हौसलों को पस्त कर दे और कहे पादशाह होना न चाहिए बल्कि हमेशः अपने हौसले को बढ़ाकर कामयाब होता रहे मगर बाद कामयाबी के अपनी हालत ऐसी न परेशान रक्खे जिस से अपनी कोशिशों का सुख भोगने के बदले उसे रात दिन दुख उठाना पड़े हमेशः हुकुमा जब अमीरों से उन के तरद्दुदात की शिकायत करते हैं तो उन को रह्म की नज़र से देखते हैं मगर वे उमरा अपने से छोटे दर्जे वालों को कभी रह्म की नज़र से नहीं देखते बल्कि हिक़ारत की। इस का यही सबब है कि उलमा अपनी कोशिश से कामयाब होकर खुशी के दर्जे को पहुंच गये हैं और किसी किस्म के तरद्दुद बाकी न रहने से वह दूसरों की मदद में अपने औक़ात सर्फ कर सकते हैं बरखि-लाफ़ इस के उमरा अपनी कोशिशों की नाकामयाबी से दूसरों पर हमेशः हसद किया करते हैं। महवे का खास क़ायदा ऊंचा हौसला और बड़ी २ खुशियों में शामिल रहने का खयाल है और यह वह खुशियां हैं जो हर हालत में शामिल रहने का खयाल है और यह वह खुशियां है जो हर हालत में एक सू रहती हैं। और इन खुशियों का नतीजा यह होता है कि आसूदः लोग अपने कौम वतन और दुनिया की तरक्की की तदबीर के हौसले का मौक़अ पाते हैं बरखिलाफ़ इस के हैवानी खुशी के जीयां उमरा आपस से दुशमनी बढ़ाये, हसद फैलाये वग़ैर हज़ जिन्दगी उठाये अपनी जिन्दगी मुफ़्त बरबाद करते हैं।

मेरे ऊपर के बयान से आप लोगों पर जाहिर हो गया कि खुशी इमारत पर मुस्तसना नहीं बल्कि एक खुदादाद चीज़ है अब मैं यह बयान करता हूं कि खुशी किस चीज़ में है। अब इस के हासिल करने की और बाद हू उस के कायम रखने की तदबीर सोचनी जरूर हुई। खुशी हासिल करने का तरीक़ा जानने के लिए सब के पहिले लियाक़त की जरूरत है। बहुत सी ऐसी हालतें हैं जिन में खुशी हासिल करने की कोशिश की जाती हैं मगर उस का नतीजा उलटा होता है और अक्सर रंज के मौकों में यकायक खुशी हासिल हो जाती है इसी से खुशी हासिल

करने की खास तदबीरों का बयान करना बहुत मुश्किल है। सिर्फ अपनी हाजतों को पूरा करना खुशी नहीं कही जा सकती क्योंकि बहुत सी हाजतें ऐसी होती जो महज ग़लत वसूलों पर कायम होती हैं। अकसर उलमा का क़ौल है कि खुशी मुहब्बत में है। दुनिया में खुदा ने मुहब्बत के सज़ावार भाई, जोरू, लड़के, रिश्तःदार और दोस्त वगैरः बहुतेरे बनाए हैं। अक्सर इन लोगों की अदम मौजूदगी में खुशी न हासिल होने से लोग फ़कीर हो जाते हैं या दुनिया में रहते हैं तो परेशान रहते हैं। चन्द लोग दूसरों की हाजत रफ़ा करने को खुशी कहते हैं क्योंकि दूसरे लोग खुशी हासिल करने की जो कोशिश करते हैं उन को अपनी कोशिश में कामयाब बनाकर खुश कर देना गोया उन की खुशी में शरीक होना है।

बाज उलमा खुशी हासिल करने की कोशिश ही को खुशी कहते हैं मगर इस में मुश्किल यह है कि पहिले से उस कोशिश के अखीर नतीजे की कामयाबी को बखूबी जांच लेना चाहिये दूसरे जब तक कि उस काम का अञ्जाम बखूबी न हो जाय बराबर मुसतअदी की भी जुरूरत है। पेलो का क़ौल है कि खुशी जितनी अपने इरादों की मजबूती में है उतनी सिर्फ खयालात और कोशिश में नहीं इस कौल की तसदीक़ बहुत साफ है। जो अपने इरादों पर मजबूत है वह हमेशः अपनी कामयाबी को अपनी आंखों के सामने देखता है और अगर ऐसा शख्स अपना काम पूरा किये हुए भी मर जाय तो उस को वही खुशी हासिल करने के वास्ते काम के पीछे लगे रहना निहायत जुरूर है खाह वह अपने फायदे के वास्ते हों या आमफायदे के वास्ते हों। अक़्लमन्द लोग इसी काम में लगे रहने को दिल्लगी कहते हैं और यह वह दिल्लगी है जो आदमियों को अपने इरादों पर कामयाब कर के खुशी ही नहीं बखशती है बल्कि रुहानी व जिस्मानी सिहत को भी कायम रखती है।

इन में खुशी के चन्द वसीले ऐसे हैं जिन का असर आदमी अपनी मौत के बाद भी छोड़ जा सकता है मसलन् मुल्क की जमाअतों का कायम करना स्कूल और शफाखानों की बुनियाद डालना वगैरः वगैरः।

जाति फायदों की खुशी भी बाज हालत में आदमी के मरने के बाद भी कायम रह सकती है मसलन् अपने खानदान खुर वनोश की मूरत बे खलिश कायम कर जाना। किसी काम की तरफ मजबूती से दिल लगाने में एक फ़ायदा यह भी है कि बीच में छोटी २ तकलीफें जो इत्तिफ़ाक से सरज़द होता है उन को आदमी अपनी होनहार खुशी की धुन में बिल्कुल खयाल में नहीं लाता।

खुशी की एक उमदः हालत यह भी है कि अपनी बुरी आदत को बदल देना वह आदमी कैसा खुश होगा जब वह अपने को बुरी आदत से छूटा हुआ देखेगा।

बहुत से लोग गैर मामूली ख्वाहिशों के पूरे होने को खुशी कहते हैं जैसा कि जो शख्स हमेशः तनहाई में रहता उसे अगर दोस्तों की सुहबत नसीब होती है तो उस को गनीमत जानता है। मगर कोशिश कुनिन्दः को ऐसे मौकअ में बनिस्बत सुस्त लोगों के ऐसे हालत में भी जयादः खुशी हासिल होती है। मसलन् जो फिलासफी की बड़ी २ किताबों के पढ़ने में हमेशः अपना वक्त सर्फ करता है उसे अगर छोटी मोटी कोई क़िस्से की किताब मिल जाय तो वह बड़ी खुशी से पढ़ेगा बरखिलाफ इस के जो हमेशः किस्से कहानियों से जी बहलाता है उस को अगर फिलासफी की किताब दे दी जाय तो उस का जी उलझेगा और वह उसे फेंक देगा।

ग़ैर मामूली खुशी अमीरों पर भी असर करती है मसलन् किसी अमीर की सालाना आमदनी हज़ार रुपया है मगर किसी साल इत्तिफ़ाक़ से दस या बारह आ जावें तो, उस को कैसी खुशी हासिल होगी। यही मिसाल इस बात की दलील है कि अगरचे दौलतमन्दी खुशी को मूजिब है मगर उस में भी तरक्की जयादः खुशी देती है।

खुशी का एक बड़ा भारी सबब तन्दुरुस्ती भी है और यह तन्दुरुस्ती तब दुरुस्त रह सकती है जब आदमी रूहानी या जिस्मानी तकलीफ से बच सकता है। खुशी है वह जिस का बदन बलग़म या रीढ़ या तरबी से नहीं तैयार है। बल्कि किसी किस्म की तकलीफ न होने को आसूदगी से तैयार है। मगर यह खयाल ज़ुरूर है कि यह तन्दुरुस्ती उस किस्म की बे फिक्री से न पैदा हो जिस से कि लगभग कोशिश और हौसले पस्त हो जायं जैसा कि हमारे हज़रात बनारस की खुशी है।

हम पहिले कह चुके हैं कि सच्ची खुशी के लिए लियाकत की ज़ुरूरत है मगर इस लियाकत के साथ दुनियबी तहजीब और दीनी ईमानदारी की भी निहायत ज़ुरूरत है अक्सर लोगों को बहुत सी ऐसी बातों में खुशी हासिल होती है जो दर हक़ीकत ईमान, तहजीब, आकबत, आबरू, बल्कि जान, माल और जिस्मो आराम को भी ग़ारत करने वाले होते हैं। तो क्या हम ऐसी खुशी को भी अस्ली खुशी कहेंगे। मसलन् मूजी को ईजारसानी में, बदकार को बदी में, क़िमारबाज को जुए में और ऐसे ही बहुत सी बातों में खुशी मान ली जाती है जो हिकमतन्, शरहन् और यक़ीनन्, हर सूरत से सिवाय ज़रर के फ़ायदा नहीं पहुंचाती इस सूरत में तो बल्कि यह सोचना लाजिम आता है कि ऐसी खुशियों के नजदीक भी न जाय क्योंकि जब कोई शय तुम्हारी अक्ल पर ग़ालिब आ जाय तो तुम नशे के आलम की तरह अपने हवास पर काबू न रख कर झूठी खुशी की तलाश में जाहिरी लज्जत के धोखे से जहर का प्याला पी जाओगे। हकीकी खुशी वही है जिस का अञ्जाम आग़ाज दोनों खुश है। असली खुशी सुफ़हए दिल से रंज का नाम यक-

कलम हटा देती है और तमाम जिस्म की हवा से खमसः को और जान को ऐसी राहत देती है कि उस हालत महवीयत में उसी सामाने खुशी की निस्बत हर लहज: में दिल नई २ उलफ़तें और नये २ शौक़ पैदा करता है इस कैफियत का ठीक २ जाहिर करना जबान को क़ूव्यत से बाहर है इससे तजरिबःकार लोगों के क़यास ही पर छोड़ दिया जाता है।

पेली ने लिखा है कि खुशी तहजीब वाकीयः जमाअतों की मुतफ़र्रिक़ लोगों में करीब २ बराबर हिस्सों में बटी है और इसी से बुराई करने वाला हमेशः बमुक़ाबलः ईमानदार दुनियवी खुशी से भी महरूम रहता है० खुशी से ग़म को अलाहिदः करने के लिए एक खास किस्म की लियाकत की जरूरत होती है जो हर शख्स में नहीं पाई जाती इसी से खालिस खुशी का लुत्फ हर शख्स को नसीब नहीं होता दुनियां में तकलीफ भी जब अपनी हद को पहुंचती है खुशी का मजा चखाती है। जब आदमी पर हद से ज्यादहः जुल्म होता है या हालत सकरात पहुंचती है तब नई खुशी से बदल जाती है और यही सबब है कि आदमी जितना छोटी २ तकलीफों से तंग आता है उतना बड़ी तकलीफ से नहीं घबराता सच्चे आशिकों की हिजरत की तकलीफ जब हद से ज्याद: बढ़ जाती है तब फिराक़ में वस्ल से ज्याद: मजा मिलता है सुई गड़ने में जो तकलीफ होती है वह बल्कि नहीं बरदाश्त होती मगर जंग में मुतवातिर चोटों को आदमी बे तकलीफ बरदाश्त कर सकता है। अफ़रीक़ः के मशहूर सैयाह डाक्टर ल्यूंगशटन ने लिखा है जब वह बेर के जंगल में फंस गये थे तो उन को मायूसी के साथ एक किस्म की खुशी हुई थी इसी तरह अकसर मौत शहीद के वक्त लोग खुश पाये गये हैं इस का सबब यह है कि जब आदमी की हालत बिल्कुल नाउमैदी को पहुंचाती है तो उस तकलीफ़ का खौफ़ बाक़ी नहीं रहता मसलन् जब तक आदमी की जीस्त की उमैद बिल्कुल मुनक़तअ हो गई फिर उस को किस बात का खौफ़ रहा यही सबब है कि हिंदू शास्त्रकारों ने खौफ़ और रंज की अस्ली हालत को भी एक रस माना है और ज़ाहिर है कि ट्राजिडी यानी ऐसे तमाशे जिन का आखिर हिस्सा बिल्कुल रंज से भरा हो देखने में एक अजीब किस्म का लुत्फ देती है बल्कि ट्राजिडी में जैसी उमदा किताबें लिखी गई हैं वैसी कामेडी में नहीं। जिस तरह रंज की आखरी हालत खुशी से बदल जाती है उसी तरह खुशी के वक्त लोग शिद्दत से रोते हुए पाये गये हैं खुलासा कलाम यह कि इस किस्म की बहुत सी खुशियां दुनिया में हैं जिन को हम खालिस खुशी नहीं कह सकते।

अब हम इस बात पर गौर किया चाहते हैं कि वह अस्ली खुशी हिंदुओं को क्यों नहीं हासिल होती क्योंकि जब हम इसी खुशी को अपनी पूरी बलन्दी की

हद पर हर सूरत से कामिल देखना चाहते हैं तो हमेशः गैर कौमों में पाते हैं इस की जाहिर वजूहात जो मालूम होती है उस में सब से पहिला सबब हिंदुओं के दीनों व दुनियवी तरीकों का आपस में मिल जाना और तनज्जुली के ज़माने के कम बेश फ़ाजिलों का इहकाम शरओं में दखल दर माकूलात करना है जिनके कलाम पर आप अपनी नातज़रिबःकारी से पूरा अमल कर दिया है। इन फुजला ने अपनी कम हिम्मती की वजह से ऐसे कायदे जारी किये जिन से आखिर-कार हम लोगों की यह तर्स के लायक हालत पहुंची कि हम लोग उस खुशी की जो फी ज़माना ग़ैर कौमों को हासिल है कभी ख्वाबोखयाल में भी नहीं ला सकते। इन फिलासफरों ने फिलासफी का इत्र निकाल कर जिन बातों को हमारे आराम के लिए जरूरी बल्कि हमारी नजात का मूजिब ठहराया है वे अगर हम नजर से देखे जावें जिस से हमखुशी को अब असली हालत पर ग़ैर कौमों में बतलाते हैं तो साफ जाहिर होगा कि इन्हीं की तअलीम का यह फल है कि परमेश्वर ने इन बेचारे हिंदुओं को इस सच्ची खुशी से महरूम रख कर इन के हिस्से से अपनी एक दूसरी प्यारी खिलक़त की गोद भर दी है जहां कि हर एक की उम्र का लाभ खुशी से लबालब नजर आता है इन कदीम जमाने के फिला-सफरों के वसूल की बहस बहुत तूल है और इसी तरह उसको सिलसिलेवार दलीलों से रद करने के लिए भी बड़ी गुंजाइश चाहिए इस लिए यहां सिर्फ उन पुराने खयालों का खुलासा दिखलाया जाता है कि किस तरीके पर उन्होंने अपनी उस अनोखी खुशी की बुनयाद कायम की है और वह इस तरक्कीयाफ्तः जमाने के आक़िलों के क़ौलोफ़ेअ़्ल के नजदीक कितनी हेच है।

इन उलमा की खुशी का पहिला तरीक़ा सन्तोष यानी कनाअ़त है। उन्हों ने अपनी पेचीदः इबारत के बेमानी मजमून में जिस का हर फिकरा अब हदीस गिना जाता है आखीर को यह साबित किया है कि खुशी व रञ्ज दोनों गलत और बहम हैं यानी रञ्ज व राहत से अलहदः वह हालत जिसमें अक़्ल, खयाल, हवास और हरकत (शायद सकते की बीमारी की हालत) सब सलफ़ हो जावें वही परमानंद है और वही खुशी का असलुलवसूल और लब्बेलबाब है। आदमी को इस हालत तक पहुंचने के लिये उन लोगों ने चंद कायदे भी ईजाद फरमाये हैं जिनमें अव्वल उन के क़लाम पर बिना हुज्जत यकीन लाना हर्गिज़ हर्गिज दलील और अक्ल को दखल न देना दूसरे उसी गारतगर सन्तोष को इखत्यार करना और खाहिश व हाजतों को दिल में पैदा न होने देना। तीसरे सब कुछ बर-दाश्त कर लेना और रंज और राहत को एक अम्रे तकदीरी समझ कर हम बखुद रहना। चौथे नेक और बद में तमीज न करना और भला बुरा सब को यकसां समझना। पांचवें (मुआ़ज अल्लाह) खालिक़ और मखलूक न समझना।

जाहिर है कि पहिले कायदे पर अमल करने ही से अक्ल पर जवाल आया और फ़ायदः व नुकसान का खयाल जाता रहा उन्हीं आंखों को अपने हाथ से फोड़ कर बहकते २ उस अंधे कुंएं में जा पड़े जिस में परमेश्वर ही हाथ पकड़ कर निकाले तो निकलना मुमकिन है। दूसरे क़ायदे को इखित्यार करते ही नामर्दी छा गई काहिली बढ़ने से हिम्मत बहादुरी और हौसले का नाम ही न बाकी रहा फौरन बे बस हो कर ज़माने के हेर फेर के मुताबिक हमेशः के वास्ते अपने मुल्क को ग़ैर कौम को नज्र कर आप परमानन्द की मूरत बन बैठे। ग़ौर का मुकाम है कि जब ख्वाहिश उस के हासिल होने पर जब तक हम ऐसी नई ख्वाहिश न पैदा करें, जिसके पूरे करने का जरियः पहिले से सोच लिया हो यह जुरूर है कि हम पहिली ख्वाहिश पर कामयाब होने का मजा हासिल करने के लिए आसूदगी इखतियार करें। सिवाय इसके आसूदगी से यह मुराद नहीं है कि हमारी भूख जाती रहे और हम को हर रोज ताज़ा खाना खाने की जरूरत न बाकी रहे जब हम खाना खा चुकते हैं बेशक आसूदगी हासिल करते हैं मगर फिर मेहनत वग़ैरः से भूख बढ़ा कर खाने का नया शौक़ पैदा करते हैं उसी तरह जितना हमारा इल्म बढ़ता जाता है और खुशी के नये नये सामान नजर आते हैं उतना ही हमारी आदमीयत पर फ़र्ज होता है कि अगर हम अपनी हालत का बेहतर होना न पसंद करें तौ भी अपनी जमाअत की हाजत रफ़अ करने के खयाल से उस सामान के मुहैया करने की तदबीर से हम पर कोई सदमा ऐसा सख्त हायल होता है कि जिससे दिल पस्त और बे हौसल हो जाता है और हरगिज़ किसी ख्वाहिश के पैदा करने या उसके बढ़ाने में खुशी नहीं दिखलाता उस वक्त भी अगर इस कंबख्त संतोष का गुजर न हुआ होय तो दूसरों को खुशी पहुंचाने से इन-सान खुशी हासिल कर सकता है। क्योंकि हिकमत से यह साबित है कि खुशी का बदला खुशी और रंज का बदला रञ्ज मिलता है। यह बात जाहिर है कि तरक्की और कनाअत से ज़िद है और जब तरक्की मौक़ूफ़ हुई तो जमाना जुरूर तनज्जुली पहुंचाएगा।

जब हम देखते हैं कि हमारे हर चहार तरफ हर क़ौम के लोग बाज़ी लगा लगा कर और जान लड़ाकर दौड़ रहे हैं और अपनी २ मुस्तअदी और कूवत के जोर से तरक्की के बुक़चे लूट कर मालामाल हुए आते हैं तब किस तरह दिल कुबूल कर सकता है कि हम क़नाअत के टुकड़े तोड़ कर पेट भरें और मुहताजी के जहन्नुम को खुशी से कुबूल करें। अलबत: लाचारी की सूरत में सब्र उस वक्त तक काम दे सकता है कि जब तक हम अपनी हालत बदलने की दूसरी सूरत न पैदा कर सकें। तीसरे कायदे की निसबत यह कहना है कि सख्ती के बरदाश्त करने की आदत उसी कनाअत से दिल बुझ जाने और पित्ता मर जाने के बाद

खुद बखुद पैदा होती है; उस वक्त गैरत जो इन्सान को हैवान से अलैहदः करने वाली चीज़ है गुम हो जाती है और जब यह इन्सान का उम्दः जेवर खो गया तो खुशी का सिर्फ नाम याद रह सकता है। बरदाश्त सिर्फ दुश्मन को ताक़त घटाकर हिमकतें अमली से उस पर गालिब आने का मौक़अ पाने के लिए है न कि हमेशः के लिये गुलामी इखतियार करने को थोड़े कायदे की तअ्लीम में खुशी और रञ्ज का फ़र्क़ ही न बाक़ी रक्खा कि एक के हासिल करने और दूसरे के रफ़अ करने की ज़ुरूरत होती उस अनूठे कारीगर ने अपनी कारीगरी की बारीकी जानने के लिये जो कुछ हमें तमीज बख्शा है उस से हम दम पर दम नये तिलस्मात का भेद जानते जाते हैं जिस से हमारे दिल का अंधेरा खुद बखुद दूर होता है और हमारी आंखों के सामने वह बातें दिखलाई पड़ती हैं जिस के बग़ैर हम किसी चीज़ की पूरी पूरी कद्र नहीं कर सकते। जाहिर है कि जब हम कद्र ही नहीं कर सकते तो हमें न उस के हासिल होने की खाहिश होगी न हासिल होने पर खुशी होगी हर शख्स इस की वजह खुद दरयाफ्त कर सकता है कि तमीज के साथ खुशी की तअदाद बढ़ती है बल्कि मुखतलिफ हुकमा इस बात पर बहस करते हैं और खुशी जानकारी है या अनजान पन एक का कौल है कि इल्म ही खुशी का मुजिब है क्योंकि अपनी खाहिश और उस के पूरे होने की कद्र आदमी इल्म से करता है बरखिलाफ इसके दूसरा आलिम कहता है कि जानकारी ही से खाहिश बढ़ती है और आदमी अपनी हशमत मौजूदः को कम समझता है खैर इस बहस का जवाब और मौकअ पर मौजूद इस वक्त इस कहने से मतलब यही है कि हर हालत में बे तमीज को खुशी की कद्र नहीं मालूम हो सकती क्योंकि वह अपनी गलती नहीं पहचान सकता और इसी से वाकिफ़कारी के फ़ायदों को नहीं उठाता जिस्पर कि खुशी का घटना बढ़ना मौजूद है।

पांचवें क़ायदे की निसबत हम इतना ही कह सकते हैं कि इस शैतानी खयाल से सख्त मुसीबत, इन्तिहा की आजिज़ी और मायूसी की हालत में जब कि किसी सूरत मे तस्कीन नहीं होती और खुशी का नाम भी जबान से नहीं निकल सकता उस वक्त बंदों के वास्ते एक आखरी दरवाजा फ़र्य्याद का जो खुला था वह भी बन्द कर दिया गया तमाम उम्र देखा कि ये कभी दो मुखतलिफ़ ज़ुज़ एक नहीं हुए मगर इन दिल्लगीबाज़ों ने यकीन करा ही दिया कि कोंहार और खिलौना एक ही चीज़ है पर और के तजरिबः और आदमी की बनावट की खाशियत को बख़ूबी मालूम करने से मालूम होता है कि हमारी जिन्दगी का कडुआ प्याला उस की याद के आबहयात के दो चार क़तरे शामिल किये बगैर किसी खालिस खुशी से शीरी किया नहीं जा सकता मगर जब याद और यादकुनिन्दा ही बाकी न रहा तो फ़क़त इस जिन्दगी के नतीजे ही रह गये खैर इस तूल कलामी से कुछ हासिल

नहीं अब सिर्फ़ इतना दिखलाना और बाक़ी है कि उन क़ौमों में जिन को परमेश्वर ने असली खुशी हासिल करने का शऊर और मनसब बख़शा है हिन्दुओं के बरख़िलाफ़ जाहिरा क्या फ़र्क़ है। क़ौमियत का पास अपने तरक़्क़ी की कोशिश बे तकल्लुफ़ी आज़ादी, इल्म और हुनर सीखने का खान्दानी रिवाज, बे हुनरी और काहिली और एहसान उठाने की शर्म, मुस्तअदी, दिलेरी, सिपहगिरी का शौक फ़ुनून की चाह, बे गरज़ दोस्ती और उस की शर्तों की पाबन्दी, तहज़ीब की क़ैद सफ़ाई, कद्रदानी, खुदा का खौफ़ और मज़हब का रस्म और दूरन्देशी के सिवाय खुशी की बुनयाद, औरतों की लियाक़त और इरादे, ऐसी ही बहुत सी बातें हैं जो उन कौमों को खुदा ने बख़शी हैं और हम उन से महरूम हैं। खुशी तो इन सिफतनों की गुलाम है मुमकिन है कि जहां यह सिफ़तें मौजूद हों खुद बखुद बस्तः न हाजिर हो। मगर बरखिलाफ इस के हमारे पास जो सामान हैं रञ्ज के हैं यानी बे इखतियारदीनी और दुनियबी कायदों का एक होना ना तजरिबकार बुज़ुर्गों की बात पर अमल करना मजहब के उन फ़ुजूल उक़ायत की पाबन्दी जिन से दर हक़ीकत मज़हब से कोई इलाक़ा नहीं है अपने हसब व नसब का भूल जाना, हमदर्दी का दिल से गुम होना, तरीक तालीम के वसूलों का पस्त होना, अपनी पाबन्दियों से मुल्क की आबोहवा को बिगाड़ कर तन्दुरुस्ती में फर्क डालना, तकलीफ़ ही को सवाब और आराम का मूजिब समझना, दौलत का हमेशः बाहर जाना और कारके उम्दः वसीलों का जायः होना, मुखतलिफ मज़ाहिब की पाबंदी से दिलों का न होना एक और सब से बड़ी बात उस परमेश्वर का हम लोगों से नाराज़ रहना ऐसी ही बहुत सी बातें है जिन से हम हिन्दुओं को अब ख़ाब में भी खुशी नसीब नहीं है कि जिन में से एक एक तहक़ीक़ात और बयान के वास्ते अलग अलग किताबें लिखी जायं तौ भी काफ़ी न हो।

———

जातीय संगीत।

भारतवर्ष की उन्नति के जो अनेक उपाय महात्मागण आजकल सोच रहे हैं उन में एक और उपाय भी होने की आवश्यकता है। इस विषय के बड़े बड़े लेख और काव्य प्रकाश होते हैं, किंतु वे जन साधारण के दृष्टिगोचर नहीं होते। इस के हेतु मैंने यह सोचा है कि जातिय संगीत की छोटी छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश, गाँव गाँव, में साधारण लोगों में प्रचार की जायं। सब लोग जानते हैं कि जो बात साधारण लोगों में फैलेगी उसी का प्रचार सर्वदैशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना ग्रामगीत शीघ्र फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव होता है उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता। इससे साधारण लोगों के चित्त पर भी इन बातों का अंकुर जमाने को इस प्रकार से जो संगीत फैलाया जाय तो बहुत कुछ संस्कार बदल जाने की आशा है। इसी हेतु मेरी इच्छा है कि मैं ऐसे ऐसे गीतों को संग्रह करूं और उन को छोटी छोटी पुस्तकों में मुद्रित करूं। इस विषय में मैं, जिन को जिन को कुछ भी रचना शक्ति है, उनसे सहायता चाहता हूं कि वे लोग भी इस विषय पर गीत या छंद बनाकर स्वतंत्र प्रकाश करें या मेरे पास भेज दें, मैं उन को प्रकाश करूंगा और सब लोग अपनी मंडली में गानेवालों को यह पुस्तकें दें। जो लोग धनिक हैं वह नियम करैं कि जो गुणी इन गीतों को गावैगा उसी का वे लोग गाना सुनैंगे। स्त्रियों की भी ऐसे ही गीतों पर रुचि बढ़ाई जाय और उन के ऐसे गीतों के गाने को अभिनंदन किया जाय। ऐसी पुस्तकें या बिना मूल्य वितरण की जायं या इनका मूल्य अति स्वल्प रक्खा जाय। जिन लोगों को ग्रामीणों से संबंध है वे गांव में ऐसी पुस्तकें भेज दें। जहां कहीं ऐसे गीत सुनैं उस का अभिनंदन करैं। इस हेतु ऐसे गीत बहुत छोटे छंदों में और साधारण भाषा में बनैं, वरंच गवांरी भाषाओं में और स्त्रियों की भाषा में विशेष हों। कजली, ठुमरी, खेमटा, कँहरवा, अद्धा, चैती, होली, सांझी, लंबे, लावनी, जांते के गीत, बिरहा, चनैनी, गजल इत्यादि ग्राम गीतों में इन का प्रचार हो और सब देश की भाषाओं में इसी अनुसार हो अर्थात् पंजाब में पंजाबी बुंदेलखंड में बुंदेलखंडी, बिहार में बिहारी ऐसे जिनदे शों में जिन भाषा का साधारण प्रचार हो उसी भाषा में ये गीत बनें। उत्साही लोग इस में जो बनाने की शक्ति रखते हैं वे बनावें, जो छपवाने की शक्ति रखते हैं वे छपवा दें और जो प्रचार की शक्ति रखते हैं वे प्रचार करैं। मुझसे जहाँ तक हो सकैगा मैं भी करूंगा। जो गीत आवैंगे उन को मैं यथा शक्ति प्रचार करूँगा। इससे सब लोगों से निवेदन है कि गीतादिक भेजकर मेरी इस विषय में सहायता करैं। और यह

विषय प्रचार के योग्य है कि नहीं और इस का प्रचार सुलभ रीति से कैसे हो सकता है इस विषय में प्रकाश कर के अनुगृहीत करैंगे। मैंने ऐसी पुस्तकों के हेतु नीचे लिखे हुए विषय चुने हैं। इन में और भी जिन विषयों की आवश्यकता हो लोग लिखैं। ऐसे गीतों में रोचक बातें जो स्त्रियों और गंवारों को अच्छी लगैं होनी चाहिए और शृंगार, हास्य आदि रस इस में मिले रहैं जिस में इनका प्रचार सहज में हो जाय।

बाल्य विवाह—इस में स्त्री का बालक पति होने का दुःख फिर परस्पर मन न मिलने का वर्णन, उससे अनेक भावी अमंगल और अप्रीति जनक परिणाम।

जन्मपत्री की विधि—इससे बिना मनमिले स्त्री-पुरुष का विवाह और अशास्त्रता।

बालकों की शिक्षा—इसकी आवश्यकता, प्रणाली, शिष्टाचार शिक्षा, व्यवहार शिक्षा आदि।

बालकों से बर्ताव—इसमें बालकों के योग्य रीति पर बर्ताव करने में उस का नाश होना।

अंगरेजी फैशन—इससे बिगड़कर बालकों का मद्यादि सेवन और स्वधर्म विस्मरण।

स्वधर्म चिंता—इसकी आवश्यकता।

भ्रूण हत्या और शिशु हत्या—इसके प्रचार के कारणउसके मिटाने के उपाय।

फूट और बैर—इसके दुर्गुण इसके कारण भारत की क्या-क्या हानि हुई इस का वर्णन।

मैत्री और ऐक्य—इसके बढ़ने के उपाय, इसके शुभ फल।

बहुजातित्व और बहुभक्तित्व—के दोष इससे परस्पर चित्त का न मिलना, इससे एक दूसरे के सहाय में असमर्थ होना।

योग्यता—अर्थात् वाणी का विस्तार न करके सब कामों के करने की योग्यता पहुँचाना और उदाहरण दिखलाने का विषय।

पूर्व्वज आर्यों की स्तुति—इसमें उनके शौर्य्य, औदार्य्य, सत्य, चातुर्य्य, विद्यादि गुणों का वर्णन।

जन्मभूमि—इससे स्नेह और इसके सुधारने की आवश्यकता का वर्णन।

आलस्य और संतोष—इनकी संसार के विषय में निंदा और इससे हानि।

व्यापार की उन्नति—इसकी आवश्यकता और उपाय।

नशा—इसकी निंदा इत्यादि।

अदालत—इसमें रुपया व्यय करके नाश होना और आपस में न समझने का परिणाम।

हिंदुस्तान की वस्तु हिंदुस्तानियों को व्यवहार करना—इसकी आवश्यकता इसके गुण इसके न होने से हानि का वर्णन।

भारतवर्ष के दुर्भाग्य का वर्णन—करुणा रस संवलित।

ऐसी ही और और विषय जिनमें देश की उन्नति की संभावना हो लिए जायं। यद्यपि यह एक एक विषय एक एक नाटक, उपन्यास वा काव्य आदि के ग्रंथ बनाने के योग्य हैं और इन पर अलग ग्रंथ बनें तो बड़ी ही उत्तम बात है, पर यहां तो इन विषय के छोटे छोटे सरल देशभाषा में गीत और छंदों की आवश्यकता है जो पृथक पुस्तकाकार मुद्रित होकर साधारण जनों में फैलाए जायंगे। मैं आशा करता हूं कि इस विषय की समालोचना करके और पत्रों के संपादक महोदयगण मेरी अवश्य सहायता करेंगे और उत्साही जन ऐसी पुस्तकों का प्रचार करेंगे।

भाषा

(कविवचन सुधा कार्तिक कृष्ण ३० सं० १९२७ वाराणसी नं० ४)

[यह कदाचित् भारतेंदु का है। एक दम शुरू में यह लेख है और नाम नहीं। सम्पादक को छोड़कर अन्य लेखों में लेखक का नाम दिया रहता था। इस से यह अनुमान है फिर भी उस समय की भाषा विवाद की स्थिति का अच्छा नमूना है]

प्रायः लोग कहते हैं कि हिंदी कोई भाषा ही नहीं है। हम को इस बात को सुन कर बड़ा शोच होता है यदि कोई अंग्रेज ऐसा कहता तो हम जानते कि वह अज्ञान है इस देश का समाचार भली भांति नहीं जानता। पर अपने स्वदेशियों को हम क्या कहें। हम नहीं जानते कि उनकी ऐसी हत बुद्धि क्यों हो गई कि वे अपने प्राचीन भाषा का तिरस्कार करते हैं। क्या भारतखंड निवासी महाराज विक्रमादित्य और भोज के समय में भी लखनऊ की सी बोली बोलते थे। एक महाशय लिखते हैं कि "यवन लोगों के आगमन के पूर्व इस देश में प्राकृत भाषा प्रचलित थी परन्तु उस के अनन्तर उस भाषा में विशेष करके अरबी और फारसी शब्द मिश्रित हो गये। अब उस नवीन भाषा को चाहै हिन्दी कहो, हिन्दुस्तानी कहो, बृजभाषा कहो, खड़ी बोली कहो, चाहै उर्दू कहो"। परन्तु वही यह भी कहते हैं कि "मुसलमान लोगों ने अपने आगमनान्तर अपनी फारसी अर्थात् फारस देश की भाषा के सन्मुख प्राकृत का नाम हिन्दी अर्थात् हिन्द की भाषा रक्खा"। प्राचीन रीत्यानुसार चलनेवाले इसी को हिंदी भाषा कहते हैं और इसी की वृद्धि चाहते हैं। परन्तु वे महाशय एक और स्थान में कहते हैं कि "भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसको सम्पूर्ण लोग बे प्रयास समझ जायं" और आप ही ऐसे २ क्लृष्ट शब्द लिखते हैं कि फारसीखाओं के अतिरिक्त और लोगों को यूनानी भाषा जान पड़े। हम नहीं जानते कि वे यहां की भाषा किस को ठहराते हैं। कितने लोग कहते हैं हिन्दी उस भाषा का नाम है जिसमें संस्कृत शब्द विशेष हैं और उर्दू वह भाषा है जिस में फारसी और अरबी शब्दों की—अधिकता हो—हम लोग भी इसी वर्ग के हैं और सदा अपने हिंदी ही की उन्नति चाहते हैं—आप लोग जानते होंगे कि प्रयाग में एक यूनीवर्सिटी अर्थात् प्रधान शिक्षालय नियत कराने के हेतु लोग बड़ा श्रम कर रहे हैं। बहुतेरों ने इस विषय में अपनी अपनी सम्मति प्रकट की है।

परन्तु प्रोग्रेस के सम्पादक को यह बात प्रसन्द नहीं है। इस विषय पर हम लोग अवकाश के समय अधिक ध्यान देंगे ॥

Registered Under Act XX of 1847

श्रीवल्लभीयसर्वस्व

श्री श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु चरणकमलमिलिंदमरंद
'चिंतासंतानहंतारो यत्पादांबुजरेणव: ॥
स्वीयानां तान् निजाचार्यान् प्रणमामि मुहुर्मुहुः'

श्री हरिश्चन्द्र रचित

जिसको हिन्दी भाषा के प्रेमी तथा रसिकजनों के
मनोविलास के लिये क्षत्रिय-पत्रिका सम्पादक
श्री म० कु० बा० रामदीन सिंह ने
प्रकाशित किया।

खड्गविलास प्रेस
पटना—"खड्गविलास" प्रेस—बांकीपुर
साहबप्रसादसिंह ने मुद्रित किया
१८६२

श्रीवल्लभीयसर्वस्व

श्री श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु चरण कमलमिलिंदमरंद

'चिंतासंतानहंतारो यत्पादांबुजरेणव: ॥
स्वीयानां तान् निजाचार्यान् प्रणमामि मुहुर्मुहुः

सर्वस्वपंचकप्रणेता तदीयनामांकित अनन्य
वीर वैष्णव श्री हरिश्चन्द्र
रचित।

पटना—"खड्गविलास" प्रेस—बांकीपुर।
साहबप्रसादसिंह ने मुद्रित किया।
१८८८

श्री वल्लभीयसर्वस्व।

दक्षिण में तैलङ्ग देश में आंध्र प्रान्त में आकवीडु जिला में खम्मम काक-रिवल्लि ग्राम में यजुर्वेद तैत्तरीय शाखा भारद्वाज गोत्र में महादेव पाल के वंश के ब्राह्मण रहते थे। इसी वंश में रामनारायण भट्ट के पुत्र यज्ञनारायण सोमयागी हुए। ये वेद के अवतार थे इन पर वेद पुरुष अत्यन्त ही प्रसन्न रहते थे। जब इन को वेद में कोई संदेह होता तब स्नान कर के वेद पुरुष का ध्यान करते और वेद पुरुष प्रत्यक्ष हो कर संदेह नाश कर देते।

एक बेर मायावादियों ने हंसी से इन से कहा कि आप वेद के अवतार हो तो बकरे से वेद पढ़वावो तब यज्ञनारायण जी ने बकरे की ओर देख कर कहा "मौलु-लाय त्वं वेदानुच्चारय" इतना सुनते ही वह बकरा वेद पाठ करने लगा। ऐसे ही दक्षिण में उनने अनेक चमत्कार दिखाये। ये श्री रामानुजाचार्य्य मत के बड़े पण्डित थे।

जब यज्ञनारायण जी ने पहला सोमयाग किया तब अग्निकुण्ड में से यह शब्द सुन पड़ा कि ऐसे सौ सोमयाग के पीछे भगवान का अवतार होता है। बतीस सोमयाग कर के ये देवलोक पधारे।

इनके पुत्र गङ्गाधर भट्ट सोमयागी साक्षात शिवजी के अवतार थे जिन्हों ने अवभृत स्नान करती समय लोगों को प्रत्यक्ष अपने केश में से जल धारा निकलती दिखाई। अट्ठाइस सोमयाग कर के ये देवलोक गये।

इनके पुत्र गणपति सोमयागी थे, काशी में पण्डितों की सभा में इन्हों ने गणेश की भांति दरशन दिया और इसी से सभा में इनका प्रथम पूजन होता था; एक बेर सब प्रसिद्ध नगरों में जाकर शास्त्र का दिग्विजय किया था। तीस यज्ञ कर के ये देवलोक सिधारे।

इनकी तीन स्त्री थीं उन में ज्येष्ट स्त्री के ज्येष्ट पुत्र वल्लभ भट्ट साक्षात सूर्य्य के अवतार थे क्यों कि एकबार उन्हों ने यज्ञ करते करते सायंकाल की समय प्रहर दिन चढ़े के सूर्य्य की भांति दर्शन दिया था पांच यज्ञ कर के ये भी देवलोक गये।

इनके पुत्र लक्ष्मण भट्ट जी बड़े विद्वान् साक्षात अक्षर ब्रह्म शेष जी के अवतार हुए। इन की छोटी ही अवस्था में इन के पिता का परलोक हुआ था इस्से इनके मातामह ने लालन पालन कर के इन को विद्या पढ़ाया था। इनकी स्त्री देवकी जी का अवतार श्री—इल्लमागारू जी थीं। इनके तीन पुत्र हुए। बड़े भाई का नाम नारायण भट्ट उपनाम रामकृष्ण भट्ट। ये कुछ दिन पीछे संन्यासी

हो गये तब केशवपुरी नाम पड़ा। यह ऐसे सिद्ध थे कि खड़ाऊं पहिने गङ्गा पर स्थल की भांति चलते थे। मझले श्री महाप्रभुजी और छोटे रामचन्द्र भट्टजी। ये महाभारी पण्डित थे वेदान्त, मीमांसा, व्याकरण काव्य और साहित्य बहुत अच्छा जानते थे। लक्ष्मण भट्ट जी के मातुल वशिष्ट गोत्र के ब्राह्मण अपुत्र होने के कारण इन्हें अपने घर ले गये थे। कृष्ण कुतूहल गोपाल लीला महाकाव्य इत्यादि कई ग्रन्थ इन्हों ने बनाये हैं। ये श्री महाभूप जी के विद्या में शिष्य थे और प्रायः अयोध्या में रहते थे। बादी ऐसे भारी थे कि प्रायः उस काल के सब पण्डितों को जीता था यहां तक कि इसी बाद के लाग पर इन को विष दे दिया।

लक्ष्मण जी के पूर्व पुरुषों ने पञ्चानबे सोमयाग किये थे सो इन्हों ने पांच और कर के सौ पूरे किये। अन्त के सोमयज्ञ का आरम्भ चैत सुदी ६ सोमवार पुष्य नक्षत्र अभिजित योग में संवत् १५३२ में किया। जब यज्ञ समाप्त हुआ तो कुण्ड से यह अलौकिक वाणी सुन पड़ी कि तुम्हारे कुल में पूर्ण पुरुषोत्तम का प्रागट्य होगा, यह बानी सुनते ही यज्ञ में सब को बड़ा आनन्द हुआ और लक्ष्मण भट्ट जी ने उसी समय काशी में सवा लक्ष ब्राह्मण भोजन का सङ्कल्प किया। उसी समय में संयोग से दक्षिण में कुछ यवनों का उपद्रव भी हुआ इसमें लक्ष्मण भट्ट जी कुटुम्ब को ले कर और और बहुत सा द्रव्य साथ ले कर काशी की ओर चले।

विदित हो कि श्री लक्ष्मण भट्ट जी संवत् १५३२ के चैत्र के अंत में बहुत सा द्रव्य ले कर काशी चले और कांकरवार से सात मञ्जिल पर भृङ्ग सार्थक तीर्थ में जहां सर्वतोभद्र कुण्ड में राजा वरुण ने अपने यज्ञ का अवभृतस्नान किया है तीन दिन तक रहे। वहां वैसाख वदी ११ की अर्द्धरात्र को श्री ठाकुर जी ने श्री स्वामिनी जी सहित दर्शन दिया और आज्ञा किया कि जब तुम काशी से लौट कर चम्पारण्य आवोगे तब तुम्हारे यहां हमारा प्रागट्य होगा यह आज्ञा कर के एक उपरना, एक तुलसी की माला, एक कंठी, दे कर श्री मुख से कहा कि जब बालक हो तब उस को यह उपरना उढ़ा देना, यह कंठी माला पहना देना और यह बीड़ा जन्म घोटी में पिला देना। इतना सुनते ही जब लक्ष्मण भट्ट जी नींद से चौंक पड़े तो इन वस्तुओं के सिवा और वहां कुछ न देखा।

लक्ष्मण भट्ट जी भीमरथी, उज्जैन, पुष्कर इत्यादि तीर्थ होते हुए प्रयाग आये। वहां भारद्वाज ऋषि के आश्रम में आकाशवाणी हुई कि तुम हमारे गोत्र में धन्य हो जिस के घर साक्षात पूर्ण पुरुषोत्तम का प्रागट्य होगा।

प्रयाग से भट्ट जी काशी आये। वहां गंगा स्नान काशी विश्वेश्वर का दर्शन कर के एक स्थान ले कर उतरे और वेद का पारायण अग्निहोत्र और ब्राह्मण भोजन प्रारंभ किया और थोड़े दिनों में सवा लाख ब्राह्मण भोजन समाप्त किया। इसी समय में दिल्ली के यवन राज्य में मुगलों और पठानों के विरोध के कारण

बड़ा उपद्रव उठा और भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर प्रान्त में चारों ओर हल चल पड़ गई। लोग नगर छोड़ २ कर इधर उधर चले गये और लक्ष्मण भट्ट जी के लोग भी काशी कुटुम्ब लेकर दक्षिण की ओर चले सो जब चम्पारण्य पहुंचे तब शके १४०० संवत् १५३५ वैसाख सुदी ११ रविवार को श्री इल्लमगारू जी का सात महीने का गर्भ श्राव हुआ सो माता जी ने केले के पत्ते में वह गर्भ लपेट कर शमी के खोढ़रे में रख दिया। यहां से ये लोग चोड़ा नगर में गये और वहां सुना कि देशोपद्रव सब शांत हो गया यहां एक रात्रि निवास कर के जब लक्ष्मण भट्ट जी फिर काशी की ओर फिरे तो उसी शमी के वृक्ष के नीचे चालीस हाथ लंबे चौड़े अग्नि कुण्ड में बालक खेलता देखा। श्री इल्लमगारू जी के स्तन से दूध की धारा उस समय निकली सो श्री महाप्रभु जी के मुखारविंद में पड़ी। तब श्री लक्ष्मण भट्ट जी ने वेदमन्त्र से और माता जी ने अपनी भाषा में अग्नि और वरुण की स्तुति किया और अग्नि ने इल्लमगारू को मार्ग दिया। माता जी ने बड़े आनंद और वात्सल्य से पुत्र को गोद में उठा लिया। उस समय आकाश से पुष्प वृष्टि हुई और देवताओं ने प्रत्यक्ष हो कर जै जै कार किया। सब के चित्त में अकस्मात नन्द महोत्सव के आनन्द का आविर्भाव हुआ।

श्री लक्ष्मण भट्ट जी बालक को लेकर काशी आए और श्री ठाकुरजी की आज्ञा प्रमाण कन्ठी, माला, उपरना और बीड़ा श्री महाप्रभु जी को दिया। तैत्तरीय शाखा के अनुसार नामकरणादिक सब संस्कार बड़े आनन्द से हुए और जब श्री इल्लमगारूजी गङ्गा पूजने को गईं तब श्री गङ्गा जी ने माता जी की गोद ही में श्री महाप्रभु जी का चरण स्पर्श किया और स्त्रियों सहित माता जी के बरदान मांगने पर जल में से शब्द सुन पड़ा कि तुम्हारा पुत्र सब बादियों को जीतैगा।

अथ जन्मपत्री।

स्वस्ति श्री मन्नृपति विक्रमार्क राज्याब्दे १५३५ शाके १४०० वैसाखे मासे कृष्णपक्षे तिथौ १० रविवासरे घ० १६ प० १४ परत्र ११ तिथौ धनिष्ठा नक्षत्रे घ० ३८ प० ४६ शुभयोगे घ० ३८ प० २ ववकर्णे श्री सूर्य्योदयात् इष्ट घ० ३७ प० ४२ वृश्चिक लग्नोदये श्री लक्ष्मण भट्ट पत्नी पुत्ररत्नमजीजनत्।
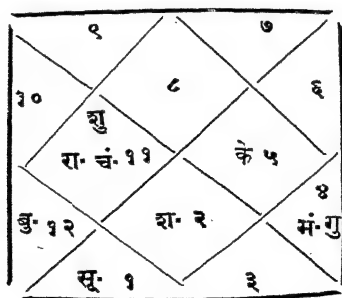
सूर्य्य ०।२।२।२।११ लग्न ७।१०।३१ दिनमान ३०।१८ रात्रिमान २६। ३२। एक बार श्री इल्लमगारू जी को व्रजयात्रा की इच्छा हुई और आपने अपने पति से निवेदन किया कि कृपापूर्वक व्रज चलिये परन्तु भट्ट जी ने कहा कि पुत्र का यज्ञोपवीत कर के चलेंगे। यद्यपि इल्लमगारू जी ने पति की आज्ञा का तुरन्त उत्तर नहीं दिया तथापि व्रजयात्रा की आपकी बड़ी ही इच्छा थी यहां तक कि एक बेर श्री महाप्रभु जी को गोद में लिये आप बैठी थीं सो व्रज का स्मरण कर के उन के नेत्रों में जल भर आया। सर्वान्तरजामी श्री महाप्रभु जी ने माता की इच्छा पूर्ण करने को जम्हाई लिया और मुखारविन्द में चौरासी कोस व्रज का दर्शन कराया। श्री इल्लमगारू जी को यह देख कर बड़ा ही आश्चर्य्य हुआ और आपने लक्ष्मण भट्ट जी से सब वृत्तान्त कहा। भट्ट जी ने कहा कि एक बेर हम अग्निशाला में भूमि पर शयन करते थे तब अग्नि ने स्वप्न में हम से आज्ञा किया कि तुम इस बालक के विषय में संदेह मत करना सो यह बालक अलौकिक साक्षात् नारायण का स्वरूप है।

एक बेर श्री विश्वनाथ जी ने यह विचार किया कि श्री ठाकुर जी ने हम को तो माया मत फैलाने की आज्ञा दिया है और आप अपने संप्रदाय फैलाने को क्यों प्रगट हुए हैं इस से एक बेर दर्शन तो करना चाहिये कि आपने कैसा वेष लिया है और क्या इच्छा है। यह विचार कर योगी बन कर एक सोने का बघनहां हाथ में लेकर श्री लक्ष्मण भट्ट जी के द्वार पर आये। श्री महाप्रभु जी उस समय अत्यन्त रुदन करने लगे और कोई प्रकार से चुप न हों। तब लक्ष्मण भट्ट जी ने अपने पास बैठें हुये ज्योतिषियों से पूछा कि आज कल बालक के ग्रह कैसे हैं ब्राह्मणों ने उत्तर दिया कि ग्रह तो अच्छे हैं परन्तु एक बघनहां इस के गले में पड़ा रहे तो अच्छा है। श्री लक्ष्मण भट्ट जी ने अपने शिष्यों को आज्ञा किया कि अभी बघनहां मोल ले कर सोने से मढ़ाकर पोहवा लाओ शिष्य लोग जैसे ही बाहर निकले वैसे ही देखा कि एक योगी बघनहां लिये खड़ा है। बड़े हर्ष से शिष्य लोग योगी को भीतर ले गये। श्री महादेव जी ने श्री महाप्रभु जी को कठुला पहना कर पूछा "भगवान कोयं वेषः" श्री महाप्रभु जी ने उसी क्षण उत्तर दिया 'सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति" यह सुन कर सब लोगों को बड़ा आश्चर्य्य हुआ कि इतने छोटे बालक के मुख से शब्द स्पष्ट और फिर संस्कृत कैसे निकला। किसी ने कहा योगी बड़े सिद्ध हैं किसी ने कहा नहीं बालक ही बड़ा प्रतापी है। उस पीछे श्री महादेव जी कई बेर योगी के वेष में खिलौना लेकर प्रायः मिलने को आते थे।

संवत् १५४० चैत्र बदी ६ अर्थात् श्री रामनवमी इतवार को लक्ष्मण भट्ट जी ने वेद विधि से आप का यज्ञोपवीत किया सोरोंजी नामक प्रसिद्ध बाराह क्षेत्र

में केशवानन्द नाम के एक बड़े सिद्ध योगी वैष्णव संप्रदाय के थे सो जब श्री महाप्रभु जी का चम्पारण्य में प्रागट्य हुआ उसी समय उन्हों ने अपने शिष्यों से कहा कि इस समय पृथ्वी पर कहीं पुरुषोत्तम का अवतार हुआ है उन के सेवकों में से कृष्णदास मेघन नामक एक सेवक थे सो वह गुरु का बचन सुनते ही यह विचार कर के घूमने निकले कि जो पुरुषोत्तम का प्रागट्य कहीं हुआ होगा दरशन ही होंगे। और जो हम को नाम लेकर पुकारेगा उसी को हम पुरुषोत्तम जानेंगे यह कृष्णदास मेघन फिरते फिरते श्री लक्ष्मण भट्ट जी के घर गये तो उन को देखते ही महाप्रभु जी ने आज्ञा किया "कृष्णदास तू आयो" इन्हों ने दण्डवत कर के उत्तर दिया "जै मैं आयो" और एक अंगूठी श्री महाप्रभु जी के यज्ञोपवीत भिक्षा में दी और तब ये आजन्म श्री प्रभु जी के साथ ही रहे।

उपवीत धारण करने के पहले और पीछे जब आप खेलते थे तो ब्राह्मण के लड़कों को शिष्य बनाते और आप गुरु बन कर उपदेश करते।

लक्ष्मण भट्ट जी के घर के पास सगुनदास नामक ढाढ़ी रहते थे उन को श्री महाप्रभु जी के दर्शन साक्षात पूर्ण पुरुषोत्तम के होय इस्से उन का नेम था कि नित्य आप का दर्शन कर के तब जल पीते। तो जब श्री महाप्रभु जी चरणारविंद से चलने लगे तब आप उन के घर पधार कर दर्शन देते सो एक दिन श्री लक्ष्मण भट्ट जी ने आप से आज्ञा किया कि शूद्र के घर आप मत पधारा करो इस पर श्री महाप्रभु जी ने यह वाक्य पढ़ा "स्त्रियो वैश्या तथा शूद्रा तेपि याति पराङ्गति" यह सुन कर लक्ष्मण भट जी ने श्री महाप्रभु जी को सगुनदास जी के यहां जाने की आज्ञा दिया।

यज्ञोपवीत के पीछे श्री महाप्रभु जी को लक्ष्मण भट्ट जी घर ही में वेद पढ़ाते थे परन्तु आप की बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी इस हेतु असाढ़ सुदी २ पुष्यार्क योग में माध्वानन्द स्वामी के यहां लक्ष्मण भट्ट जी ने आप को पढ़ने को बैठाया सो चार ही महीने में चारों वेद, छवो शास्त्र पढ़ कर सब को बड़ा आश्चर्य उत्पन्न किया, गुरुदक्षिणा में माध्वानन्द स्वामी ने श्री ठाकुर जी की सेवा मांगी तब आप ने आज्ञा किया कि जब श्री नाथ जी को प्रगट करेंगे तब आप को सेवा देंगे। इन्हीं को और ग्रन्थों में माधवेन्द्र पुरी कर के लिखा है और ये मध्व सांप्रदाय के आचार्य्य थे। और विद्याविलास भटाचार्य्य से आप ने न्याय पातञ्जल और काव्य पढ़ा। श्री महाप्रभु जी की विद्या देख कर के लक्ष्मण भट्ट जी को फिर सन्देह हुआ परन्तु श्री ठाकुरजी ने स्वप्न पुनर्दर्शन दे कर वह सन्देह निवृत्ति कर दिया। हुआ यही माधवेन्द्रपुरी श्री कृष्ण चैतन्य के मन्त्र गुरू हैं और इसी कारण श्री महाप्रभु जी और श्री कृष्ण चैतन्य से मित्र भाव था और आप ने उन को श्री गोवर्द्धन की कन्दरा से ला कर कृष्ण प्रेमामृत ग्रन्थ दिया था और ऐसे ही निम्बार्क

सम्प्रदाय के आचार्य्य केशव काश्मीरी जी से भी आप का बड़ा संग रहता था। विदित हो कि चैतन्य सम्प्रदाय के ग्रन्थ वृहद्गौर गणोद्देश दीपिका ने श्री महाप्रभु जी को चौसठ महानुभावों की गिनती में अनन्त संहिता के ७५वें अध्याय के प्रमाण से श्री शुकदेव जी का अवतार लिखा है।

एक समय श्री लक्ष्मण भट्ट जी ने मायावादी सन्यासियों को अपने घर भोजन को बुलाया था सो श्री महाप्रभु जी ने ऐसा शास्त्रार्थ उठाया जिस्से मायावाद का खण्डन न होय तब लक्ष्मण भट्ट जी ने कहा जो अपने घर आवे उस का अपमान नहीं करना इस्से आप ने उन से शास्त्रार्थ नहीं किया पर वैष्णव धर्म प्रचार की आप को ऐसी उत्कंठा थी काशी में जहां शास्त्रार्थ होता वहां आप जाते और वैष्णव मत का मण्डन और अन्य मत का खण्डन करते यहां तक कि लक्ष्मण भट्ट जी के पास लोग उरहना देने आते कि आप के पुत्र ने भरी सभा में हमारा अपमान किया, तब लक्ष्मण भट्ट जी आप को निषेध करते तब जिन पण्डितों से आप निषेध करते उन पण्डितों से शास्त्रार्थ न करते उस काल में विश्वनाथ के सभामण्डप में पण्डितों की सभा नित्य होती थी और वे लोग एक बात पर निर्णय कर के तब उठते थे। सो श्री महाप्रभु जी उस सभा स्थान की भीति पर एक श्लोक नित्य लिख आते और जब पण्डित लोग उस का एक दिन में निर्णय करते तो दूसरे दिन दूसरे श्लोक से उन का सब खण्डित हो जाता ऐसे ही तीस दिन तक आपने यह खेल खेला और उसी से पत्रावलम्बन ग्रन्थ बन गया। एक प्रसंग यह भी है कि आप से बहुत से पण्डित शास्त्रार्थ करने को आते थे और समय बहुत थोड़ा था इस लिए आप ने पत्रावलम्बन ग्रन्थ कर के बिश्वेसर के द्वार पर चिपका दिया था, और नगर में चारों ओर और विश्वनाथ के द्वार पर भी डगडुगी फेर दी थी कि जिस को हम से शास्त्रार्थ करना हो वह पहले जा कर वह पत्र देख ले। यह सुन कर जो पण्डित वह पत्र देखने जाते वह सब अपने प्रश्ण का उत्तर पा कर चले जाते और इसी से पत्रावलम्बन ग्रन्थ बना।

श्री लक्ष्मण जी को श्री महाप्रभु जी के इस घोर शास्त्रार्थ करने से बड़ा क्षोभ हुआ और अपने वात्सल्य भाव से यह सोचा कि ऐसा न हो कि द्वेष कर के जादू से कोई पण्डित हमारे पुत्र को मार डाले यह विचार कर आप ने देश जाने का मनोरथ किया क्यों कि, बारह वर्ष की काशी में रहने की आप की प्रतिज्ञा भी पूरी हो गई थी। यह सब बात विचार कर आप सकुटुम्ब काशी से दक्षिण की ओर चले।

वहां से सात मंजिल पर यह सुन कर कि विष्णुस्वामी संप्रदाय के कोई पण्डित लक्ष्मण भट्ट जी अपने पुत्र सहित काशी में अनेक पण्डितों को जीत कर यहां आते हैं, बहुत से पण्डित मिल कर एक साथ लक्ष्मण भट्ट जी के डेरे पर शास्त्रार्थ

करने गये और जब श्री महाप्रभु जी ने उन को शास्त्रार्थ में जीता तब लक्ष्मण भट्ट जी ने प्रसन्न हो कर कहा कि बरदान मांगो तब आप ने दो बरदान मांगे प्रथम तो यह कि आप हम को शास्त्रार्थ करने जाने से रोको मत और दूसरे यह कि शास्त्रार्थ में कोई हमारा तेज पराभव न कर सके। लक्ष्मण भट्ट जी ने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक दोनों बरदान दिए.।

लक्ष्मण भट्ट जी साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम के धाम अक्षर ब्रह्म शेष जी के स्वरूप हैं, इस से आप को त्रिकाल का ज्ञान है सो जब आपने अपना प्रयाण समय निकट जाना तब कांकरवार से बड़े पुत्र राम कृष्ण भट्ट जी को बाला जी में बुलाया और वहीं आपने डेरा किया पुत्रों को अनेक शिक्षा देकर राम कृष्ण भट्ट जी को श्री यज्ञनारायण के समय के श्री रामचन्द्र जी पधराय दिए और कहा कि देश में जाकर सब गांव और घर आदि पर अधिकार और वेल्लिनाटितैलङ्ग जाति की प्रथा और अपने कुल अनुसार सब धर्म पालन करो। ऐसे ही श्री यज्ञनारायण भट्ट के समय के एक शालिग्राम जी और मदनमोहन जी श्री महाप्रभु जी को देकर कहा कि आप आचार्य्य होकर पृथ्वी में दिग्विजय कर के वैष्णव मत प्रचार करो और छोटे पुत्र रामचन्द्र जी को जिनका काशी में जन्म हुआ था अपने मातामह को सब स्थावर जङ्गम सपत्ति दिया * और श्री महाप्रभु जी के ग्यारह वर्ष की अवस्था में लक्ष्मण बाला जी का शृङ्गार करते करते शरीर समेत उन के स्वरूप में लय हो गए। उन के पुत्रों ने लक्ष्मण भट्ट जी के वस्त्र का लौकिक संस्कार बड़ी धूम धाम से किया और श्री महाप्रभु जी ने एक तक यथाशास्त्र विहित सब रीति का बरताव किया।

काशी में वैष्णव तन्त्र, शैव तन्त्र, कौमारिल प्राभाकर मोङ्गल इत्यादि मत के ग्रन्थ और शैव, पाशुपत, कालामुख, अघोर, ये चार शैव संप्रदाय के ग्रन्थ नहीं

---

* ये रामचन्द्र भट्ट बड़े पण्डित थे! गोपाल लीला महाकाव्य, कृष्ण कुतूहल और शृंगार वेदान्त ये तीन ग्रन्थ इन के मिलते हैं। अयोध्या में ये रहते थे और श्री महाप्रभु जी को विद्या गुरू कर के मानते थे वैष्णव दीक्षा श्री महाप्रभु जी से इन्हों ने पाई थी कि नहीं इस में संदेह है। और राम कृष्ण भट्ट जी कुछ दिन पीछे सन्यासी होकर केशव पुरी नाम से खड़ाऊं पहन कर जल पर चलने वाले बड़े सिद्ध विख्यात हुए। इन लोगों के समकाल के प्रसिद्ध पण्डित ये थे, मध्व मत में व्यासतीर्थ, निम्बार्क मत में केशव भट्ट, रामानुज मत में ताताचार्य्य और व्यङ्कटाध्वरि, शंकर मत में आनंद गिरि, स्मार्त्तों में वा अन्य मत में मुकुंदानंद केवलानंद माधवानंद, बरदान के महन्त हस्त शृङ्गार और रङ्गनाथ जी के महन्त आनन्दराम।

मिलते थे इस हेत दक्षिण के सरस्वती भण्डार में जाकर इन ग्रन्थों को आपने अवलोकन किया और वेद की ३६ शाखा की संहिता ब्राह्मण इत्यादिक कण्ठाग्र किया। फिर जब इल्लमगारू जी पति के हेत विलाप करतीं तब आप को दुख होता इस्से श्री बाला जी ने स्वप्न में इल्लमगारू जी को विलाप करने का निषेध किया।

जब आप को पृथ्वी परिक्रमा की इच्छा हुई तब मातृचरण को अपने मामा के पास पहुंचाने को आप विद्या नगर पधारे और मार्ग में अपने अन्तरङ्ग दामोदर दासजी को सेवक किया।

विद्या नगर में राजा * कृष्णदेव के यहां आचार्य्य के मामा रगनाथ विद्या भूषण दानाध्यक्ष थे श्री महाप्रभु जी अपने मामा के घर उतरे और वहीं यह सुना कि राजा कृष्णदेव की सभा में आज कल नित्त मत मतांतर का बाद होता है यह सुन कर के आपने इच्छा किया की हम भी चलेंगे दूसरे दिन प्रातःकाल स्नान

---

* राजा कृष्णदेव की बंसपरम्परा यों है। पाण्डु बंस में चन्द्र बीज राजा के दो पुत्र थे बड़ा मेरु छोटा नन्दि नन्दि को भूतनन्दि उसको नन्दिल। नन्दिल के दो पुत्र शेशनन्दि और यशोनन्दि। इन दोनों को चौदह पुत्र थे जिनको अमित्र और दुर्मित्र नामक दो भाई राजाओं ने जीत लिया। इन में से सात भाई दक्षिण गये जिन में से नन्दिराज ने नन्दपुर वा रंगोला बसाया (१०३० ई०) उन के बंश में, फिर चालुक्य राज (१०७६ ई०), विजयराज जिन्होंने विजय नगर बसाया (१११८), विमलराज (११५८), नरसिंघ देव जो बड़ा प्रसिद्ध हुआ (११८०), रामदेव (१२४६) और भूपराज (१२७४) भूपराज अपुत्र था इससे इसने अपने निकटस्थ गोत्रज बीर बुक्कराय को गोद लिया। बीर बुक्कराय (१३२४) की सभा में सायन के बड़े भाई माधवाचार्य्य (विद्यारण्य) बड़े पण्डित थे और इन्हों ने वेदों पर भाष्य किया है और अनेक ग्रन्थ बनाये हैं। वीर बुक्कराय की सभा में कई बिलायत के लोग आये थे। इन के हरिहर राय (१३६३) उन के देवराज (१३६७) विजय राज (१४१४), और उनके पुण्डरदेव (१४२८)। पुण्डरदेव को श्री रङ्गराज ने जीत कर अपने पुत्र रामचन्द्र राय को (१४५०) राजा बनाया। उन के नृसिंह राय (१४७३), फिर बीर नृसिंह राय (१४९०) उन के अच्युतराय और उन के पुत्र कृष्णदेव राय० राजा कृष्णदेव ने सं० १५७० तक (१५२४ ई०) राज्य किया और गुजरात जय किया और मुसलमानों से लड़े। राजा कृष्णदेव के सेनापति नार्ग नायक ने मथुरा जीत कर राज्य स्थापन किया जो १६ पीढ़ी तक रहा। इन के रामराज हुए जो निजामशाह और इमदादुल मुल्क की लड़ाई में मारे गए उन के पीछे

संध्या होम कर के ब्रह्मचारी का भेष कर आप राजा के सभा में पधारे। इन का दर्शन पाते ही सब सभा तेजोहत हो गई और राजा कृष्णदेवराय ने बड़े आदर से इन को बैठाया। तब आपने राजा से सभा का वृत्तान्त पूछा राजा ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि आज छ महीने से सब मत मतान्तर के पण्डितों से यहां शास्त्रार्थ हो रहा है सो माया मतवालों को अब तक किसी ने जीता नहीं है। यह सुन कर आप ने पण्डितों से प्रश्न किया और शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। चौदह दिन तक तत्व विचार में। बारह दिन स्थानवदादेश इस सूत्र से आरम्भ हो कर व्याकरण में। और एक दिन जैन बौद्ध शास्त्र विचार में इस तरह सब मिलाकर सत्ताइस दिन शास्त्रार्थ हुआ और जितने वादी सभा में उपस्थित थे सब निरुत्तर हुए। तब राजा ने सब पण्डितों से जयपत्र लिखवा कर उन पर अपनी मुहर करके उनको दिया और सब पण्डितों और मत के आचार्यों ने मिल कर आचार्य्य पदवी से महाप्रभु जी को पुकारा। राजा कृष्ण देव ने कनकाभिषेक से आप की पूजा किया और सपरिवार शरण आकर सेवक हुआ।* इस अभिषेक के सोने को श्री महाप्रभु जी ने दीन

श्री रङ्गराज, त्रिमल्लराज, बीरसंघ पतिराज द्वितीय श्री रङ्गराज, रामदेवराय, व्यङ्कटपतिराय, द्वितीय–तृमधराय, द्वितीय रामदेवराय और द्वितीय व्यङ्कटपतिराय हुए। द्वितीय व्यङ्कट मुगलों से हार कर चन्द्रदेवगिरि में बसे। इन के पुत्र रामराय उन को हरिदास (१६९३), चक्रदास (१७०४), त्रिम्मदास (१७२१) रामराय (१७३४), गोपालराव, व्यङ्कटपति त्रिमल्लराय, बीर व्यङ्कटपति और रामदेव राय क्रम से राजा हुए। इस वंश के अन्तिम राजा रामदेव राय जिनको सं० १८७५ (१८२६) ई० में टीपू सुलतान ने मार कर राज्य नाश कर दिया।

* विद्या नगर के, कृष्णगढ़ के और नवानगर के राजा उसी काल से इस मत के सेवक होते आते हैं किंतु विद्या नगर का वंश अब नहीं रहा उस काल में दक्षिण प्रान्त के सब राज्य बने हुए थे। विद्यानगर जाने के पूर्व आप हेमाचल गोआ इत्यादि होते हुए चोड़ा गये थे। चोड़ा के राजा ने एक म्यान और दो प्यादा साथ देकर आचार्य्य को विद्यानगर पहुंचवाया था। यहां पर एक बात और जानने के योग्य है कि श्री महाप्रभु जी विद्यानगर की सभा में श्री विष्णुस्वामी की गद्दी पर विराजे। इसी समय श्री बिल्वमङ्गल जी ने श्री विष्णुस्वामि के रहस्य और मतभेद सब आप को देख तिलक किया। यह भी जनश्रुति है कि श्री महाप्रभु जी ने सभा में योग बल से अपना कमंडलु फेंका जो सूर्य्य का सा सभा में प्रकाश किया। तदनन्तर आप सभा में गये।

ब्राह्मणों को बांट दिया और अनेक ब्राह्मण के लड़कों के यज्ञोपवीत और लड़कियों के विवाह और अनेक का ऋण शोधन इस से हुआ। इस सुवर्ण के सिवा एक थाली भर कर मुहर राजा ने आपको भेंट किया था जिस में से सात मुहर आप ने अङ्गीकार कर के उसका श्री नाथ जी का नूपुर बनाया। फिर राजा को और वहां के अनेक ब्राह्मणों वृहस्पति सब बाजपेय आदि यज्ञ और अनेक महादान कराया उस से जो द्रव्य एकत्र हुआ उस का तीन भाग किया। एक भाग से श्री विट्ठल नाथ जी की कटि मेखला बनी दूसरे भाग से पिता का ऋण शोधन किया और तीसरे भाग को करणीय यज्ञ के व्यय निर्वाहार्थ माता को सौंप दिया। और अनेक दिन तक ज्ञान भक्ति वैराग्य यज्ञादि धर्म्म का उपदेश करते आप विद्या नगर में विराजे।

कुछ दिन तक विद्यानगर में निवास करने के उपरान्त माता से आज्ञा लेकर पृथ्वी परिक्रमा करने को संवत् १५४८ वैशाख बदी २ को आप नगर से बाहर चले। उस समय ब्रह्मचर्य्य व्रत के कारण सीआ हुआ वस्त्र नहीं पहरते थे इस से धोती उपरना पहन कर दंड कमंडल छत्र और पादुका धारण किए हुए आप चलते थे। (इसी ब्रह्मचर्य्य के दंड धारण पर भ्रम से बहुत से मूर्ख आक्षेप करते हैं कि श्री बल्लभाचार्य्य पहले दंडी थे फिर गृहस्थ हुए) दामोदरदास और कृष्णदास ये दो सेवक आप के साथ थे। पहले भीमरथी के तट पर पण्डरपुर में आए वहां सप्ताह परायण कर के बैठक स्थापित किया। (आगे जिस तीर्थ के वर्णन में पा० बै० स्था० यह संकेत देखो वहां समझो कि परायण कर के बैठक स्थान किया) फिर नासिक त्रांबक पञ्चवटी गोदावरी तीर्थ में आये वहां त्र्याह पा० बै० स्था० वहां से उज्जयिनी में आये वहां सिप्रा और अङ्कपात कुण्ड (जिस में भगवान जब सान्दीपनी जी के यहां पढ़ते थे तब पटिया धोते थे) में स्नान कर के महाकालेश्वर का दर्शन कर के नगर से बाहर एक पीपल की डाल गाड़ कर उस पर कमण्डलु का जल आप ने छिड़का जिस से वह तत्क्षणात् एक वृक्ष हो गया और उस के नीचे सप्ताह पा० बै० स्था० (यह पीपल का वृक्ष अद्यापि वर्तमान है) वहां से पुष्कर जी की यात्रा कर आप ब्रज की ८४ कोस की परिक्रमा करने हेतु संवत् १५४८ के भाद्र पद कृष्णाष्टमी अर्थात् जन्माष्टमी के दिन श्री गोकुल में पधारे। तब श्री नाथ जी को यमुना जल में क्रीड़ा करते देख आप भी उन के समीप जाने लगे, तब तो श्री नाथ जी गिरिराज ऊपर आए वहां भी आप उन के पीछे पीछे गये, इसी से श्री भगवान ने प्रसन्न हो यह बरदान दिया कि "यावत जमुना जी में गंगा जल रहेगा तावत् तुमारी सम्प्रदाय अचल रहेगी" ऐसा कह कर श्री नाथ जी अन्तरध्यान हो गए। तब आप जिस मार्ग से पूर्व में

गए थे पूर्व गत मार्ग से आ अपने व्याकुल शिष्यों से मिल कर आसन पर आए। तदनन्तर श्री आचार्य्य जी महाप्रभु जी व्रज की यात्रा करने चले, और उस का निर्णय कर के अनुक्रम से वर्णन किया है। और जिस स्थल में आप ने श्री मद्भागवत का पारायण कर बैठकें नियत की हैं जो अद्य पर्यन्त प्रसिद्ध हैं उस जगे ऐसा * चिन्ह किया है।

———

चन्द्रास्त

अर्थात्

श्री मान कवि शिरोमणि भारत भूषण भारतेन्दु
श्री हरिश्चन्द्र का सत्यलोक गमन ।

अद्य निराधाराऽभूद्दिवं गते श्री हरिश्चन्द्रे ।
भारतधरा विशेषादभाग्यरूपा महोदयाग्रेन्द्रे ॥

अतिशय दुःखित
व्यास रामशङ्कर शर्म्मा लिखित

अमीरसिंह द्वारा बनारस हरिप्रकाश यंत्रालय में
मुद्रित हुआ०

१८८५
बिना मूल्य बंटता है ०

अनर्थ ! अनर्थ !! अनर्थ !!!
सबसे अधिक अनर्थ०

आज हम को इस के प्रकाशित करने में अत्यन्त शोक होता है और कलेजा मुंह को आता है कि हम लोगों के प्रेमास्पद, भारत के सच्चे हितैषी और आर्यों के शुभचिन्तक श्रीमान भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी कल मंगल की अमंगल रात्रि में ९ बज के ४५ मिनट पर इस अनित्य संसार से विरक्त हो और हम लोगों को छोड़ कर परमपद को प्राप्त हुए ० उन की इस अकाल मृत्यु से जो असीम दुःख हुआ उसे हम किसी भांति से प्रकट नहीं कर सकते क्यों कि यह वह दुसह दुःख है कि जिसके वर्णन करने से हमारी छाती तो फटती ही है वरञ्च लेखनी का हृदय भी विदीर्ण होता जाता है और वह सहस्र धारा से अश्रुपात करती है ०

हा ! जिस प्राण प्यारे हरिश्चन्द्र के साथ सदा विहार करते थे और जिसके चन्द्रमुख दर्शन मात्र से हृदय कुमुद विकसित होता था उसे आज हम लोग देखने

को भी तरसते हैं ० जिसके भरोसे पर हम लोग निश्चिन्त बैठे रहते थे और पूरा विश्वास रखते थे वही आज हमको धोखा दे गया ० हा ! जिस हरिश्चन्द्र को हम अपना समझते थे उसको हमारी सुध तक न रही ० हरिश्चन्द्र ! तुम तो बड़े कोमल स्वभाव के थे परन्तु इस समय तुम इतने कठोर क्यों हो गये ? तुम को तो राह चलते भी किसी का रोना अच्छा नहीं लगता था सो अब सारे भारतवर्ष का रोना कैसे सह सकोगे ० प्यारे ! कहो तो, दया जो सदा छाया सी तुम्हारे साथ रही सो इस समय कहां गई ० प्रेम जो तुम्हारा एकमात्र व्रत था उसे इस बेला कहां रख छोड़ा है जो तुम्हारे सच्चे प्रेमी विलला रहे हैं ० हे देशाभिमानी हरिश्चन्द्र ! तुम्हारा देशाभिमान किधर गया जो तुम अपने देश की पूरी उन्नति किये बिना इसे अनाथ छोड़ कर चल दिये ० तुम्हारा हिन्दी का आग्रह क्या हुआ, अभी तो वह दिन भी नहीं आये थे जो हिन्दी का भली भांति प्रचार हो गया होता, फिर आप को इतनी जल्दी क्या थी जो इसका साथ ऐसी अधूरी अवस्था में छोड़ा ० हे परमेश्वर, तूने आज क्या किया, तेरे यहां कमी क्या थी जो तूने हमारी महानिधि छीन ली ० जो कहो कि वह तुम्हारे भक्त थे तो क्या न्याय यही है कि अपने सुख के लिये भक्त के भक्तों को दुख दो ० अरे मौत निगोड़ी तुझे मौत भी न आई जो मेरे प्यारे का प्राण छोड़ती ० अरे दुर्दैव, क्या तेरा पराक्रम यही जो हतभाग्य भारत को यह दिन दिखलाया ० हाय ! आज हमारे भारतवर्ष का सौभाग्य सूर्य अस्त हो गया, काशी का मानस्तम्भ टूट गया और हिन्दुओं का बल जाता रहा ० यह एक ऐसा आकस्मिक वज्रपात हुआ कि जिस के आघात से सब का हृदय चूर्ण हो गया ० हा ! अब ऐसा कौन है जो अपने बन्धुओं को अपने देश की भलाई करने की राह बतलावैगा और तन, मन, धन से उनमें सुमति और अच्छे उपदेशों के फैलाने का यत्न करैगा ० अभागिनी हिन्दी के भण्डार को अपने उत्तमोत्तम लेख द्वारा कौन पुष्ट करेगा और साधारण लोगों में विद्या की रुचि बढ़ाने के लिये नाना प्रकार के सामाजिक लेख लिख कर उन का उत्साह कौन बढ़ावैगा ० अपनी सुधामयी वाणी से हम लोगों की आशा बेलि कौन बढ़ावैगा ० और हा ! काव्याऽमृत पान करा के हमारी आत्मा को कौन पुष्ट करैगा ० मेरे प्राणप्यारे ! अवसर पड़ने पर हमारे आर्य धर्म की रक्षा करने के लिये कौन आगे होगा और दीनोद्धार की श्रद्धा किसको होगी ० यों तो आर्य जाति को जब कोई संकट उपस्थित होता था तो वे तुम्हारे समीप दौड़े जाते थे पर अब किस की शरण जायंगे ० शोक का विषय है कि तुमने इन में से एक पर भी ध्यान न दिया और हम लोगों को निरवलम्ब छोड़ गये ० प्रियतम हरिश्चन्द्र ! आज तुम्हारे न रहने ही से काशी में उदासी छा रही है और सब लोगों का अंतःकरण परम दुःखित हो रहा है ० तुम को वह मोहन मन्त्र याद था कि जिससे सारे संसार को अपने

वश में कर लिया था ० पर हा ! आज एक तुम्हारे चले जाने से सारा भारतवर्ष ही नहीं, किन्तु यूरोप, अमेरिका इत्यादि के लोग भी शोकग्रस्त होंगे यद्यपि तुम कहने को इस संसार में नहीं हो, परन्तु तुम्हारी वह अक्षय कीर्ति है कि जो इस संसार में उस समय तक बनी रहैगी कि जब लौं हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों का लोप न होगा ० प्यारे ! तुम तो वहां भी ऐसे ही आदर को प्राप्त होंगे पर बिला मौत हम लोग मारे गये ० अस्तु ! परमेश्वर की जो इच्छा ० आप की आत्मा को सुख तथा अखंड स्वर्गवास हो, पर देखना अपने दीन मित्र तथा गरीब भारतवर्ष को भूलना मत ० अब सिवा इस के रह क्या गया है कि हम लोग उन के उपकारों को याद कर के आंसू बहावैं, इस लिये यहां पर आज थोड़ा सा उन का चरित प्रकाशित करता हूं, चित्त स्वस्थ होने पर पूरा जीवन-चरित छापूंगा क्यों कि वह स्वयं भविष्य वाणी कर गये हैं कि "कहैंगे सबै ही नैन नीर भरि २ पाछैं प्यारे हरिश्चन्द्र की कहानी रह जायंगी ०"

मानमन्दिर
७।१।८५ } प्यारे के वियोग से नितान्त दुखी
व्यास रामशङ्कर शर्म्मा

———

"संक्षिप्त जीवनी"

श्रीमान् कविचूड़ामणि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने सन् १८५० ई० के सितम्बर मास की ९ वीं तारीख को जन्म ग्रहण किया था ० जब वह ५ वर्ष के थे तो उन की पूज्य माता जी वो ९ वर्ष के हुए तो महामान्य पिता जी का स्वर्गवास हुआ, जिससे उन को माता पिता का सुख बहुत ही कम देखने में आया ० उन को शिक्षा बालक पन से दी गई थी और उन्हों ने कई वर्ष लों कालेज में अंग्रेजी तथा हिन्दी पढ़ी थी ० संस्कृत, फारसी, बंगला, महाराष्ट्री इत्यादि अनेक भाषाओं में बाबू साहिब ने घर पर निज परिश्रम किया था ० इस समय बाबू साहिब तैलङ्ग तथा तामील भाषा को छोड़ कर भारत की सब देश भाषा के पण्डित थे ० बाबू साहब की विद्वत्ता, बहुज्ञता, नीतिज्ञता, पाण्डित्य तथा चमत्कारिणी बुद्धि का हाल सब पर विदित है कहने की कोई आवश्यकता नहीं ० इन की बुद्धि का चमत्कार देख कर लोगों को आश्चर्य्य होता था कि इतनी अल्प अवस्था में यह सर्वज्ञता ! कविता की रुचि बाबू साहिब को बाल्यावस्था ही से थी, उन की उस समय की कविता पढ़ने से कि जब वह बहुत छोटे थे बड़ा आश्चर्य्य होता है और इस समय की तो कहना ही क्या है, मूर्तिमान आशुकवि कालिदास थे ० जैसी कविता इन की सरस और प्रिय होती थी वैसी आज दिन किसी की नहीं होती ० कविता सब भाषा की करते थे, पर भाषा की कविता में अद्वितीय थे ० उन के जीवन का बहुमूल्य समय सदा लिखने पढ़ने में जाता था ० कोई काल ऐसा नहीं था कि उन के पास कलम, दावात, और कागज न रहता रहा हो ० १९ वर्ष की अवस्था में कविवचनसुधा पत्र निकाला था, जो आज तक चला जाता है ० इस के उपरान्त तो क्रमशः अनेक पत्र पत्रिकाएं और सैकड़ों पुस्तक लिख डाले जो युग युगान्तर तक संसार में उन का नाम जैसा का तैसा बनाये रक्खैंगे ० २० वर्ष की अवस्था अर्थात् सन् ७० में बाबू साहिब आनरेरी मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुए और सन् ७४ तक रहे वो उसी के लगभग ६ वर्ष लों म्यूनिस्पल कमिश्नर भी थे ० साधारण लोगों में विद्या फैलाने के लिए सन् १८६७ ई० में जब कि बाबू साहिब की अवस्था केवल १७ वर्ष की थी चौखम्भा स्कूल, जो अब तक उन की कीर्ति ध्वजा है, स्थापित किया, जिस के छात्र आज दिन एम० ए० बी० ए० बड़ी २ तनखाह के नौकर हैं ० लोगों के संस्कार सुधारने तथा हिन्दी की उन्नति के लिये हिन्दी डिबेटिंगक्लब, अनाथरक्षिणी, तदीय समाज, काव्य समाज इत्यादि सभायें संस्थापित कीं और उन के सभापति रहे ० भारतवर्ष के प्रायः सब प्रतिष्ठित समाज तथा सभाओं में से किसी के प्रेसीडेन्ट सेक्रिटरी किसी के मेम्बर रहे लोगों के उपकारार्थ

अनेक बार देश देशान्तरों में व्याख्यान दिये ० उन की वक्तृता सरस और सारग्राहिणी होती थी ० उन के लेख तथा वक्तृत्व से देशगौरव झलकता था ० विद्या का सम्मान जैसा बाबू साहिब करते थे वैसा करना आज कल कठिन है, ऐसा कोई ने भी विद्वान न होगा जिस ने इन से आदर सत्कार न पाया हो ० यहाँ के पण्डितों ने अपना २ हस्ताक्षर कर के बाबू साहिब को प्रशंसा पत्र दिया था उस में उन लोगों ने स्पष्ट लिखा है कि—

"सब सज्जन के मान को कारन इक हरिचन्द ।
जिमि सुभाव दिन रैन के कारन नित हरि चन्द ॥"

बाबू साहिब दानियों में कर्ण थे, इतना ही कहना बहुत है० उनसे हजारों मनुष्य का कल्याण होता रहा ० विद्योन्नति के लिये भी उन्हों ने बहुत व्यय किया ० ५००) रु० तो उन्हों ने पं० परमानन्द जी को शतसई की संस्कृत टीका का दिया था और इसी प्रकार से कालिज, वो स्कूलों में उचित पारितोषिक बांटे हैं ० जब २ बंगाल, बम्बई, वो मदरास में स्त्रियां परिक्षोत्तीर्ण हुई हैं तब २ बाबू साहिब ने उनके उत्साह बढ़ाने के लिये बनारसी साड़ियां भेजी थीं० जिनमें से कई एक को श्री मती लेडी रिपन ने प्रसन्नता पूर्वक अपने हाथ से बांटा था० बाबू साहब ने देशोपकार के लिये "नेशनल फंड, होमयोपैथिक डिस्पेंसरी, गुजरात वो जौनपुर रिलीफ फंड, सेलर्ज होम, प्रिंस आव् वेल्स हास्पिटल और लैब्रेरी" इत्यादि की सहायता में समय समय पर चन्दा दिये हैं ० गरीब दुखियों की बराबर सहायता करते रहे ०

गुणग्राहक भी एक ही थे, गुणियों के गुण से प्रसन्न होकर उन को यथेष्ट द्रव्य देते थे, तात्पर्य यह कि जहां तक बना दिया देने से हाथ नहीं रोका ०

देशहितैषियों में पहले इन्हीं के नाम पर अंगुली पड़ती है क्यों कि यह वह हितैषी थे कि जिन्हों ने अपने देश गौरव के स्थापित रखने के लिये अपना धन, मान प्रतिष्ठा एक ओर रख दी थी और सदा उस के सुधारने का उपाय सोचते रहे ० उनको अपने देशवासियों पर कितनी प्रीति थी यह बात उनके भारतजननी वो भारतदुर्दशा इत्यादि ग्रन्थों के पढ़ने ही से विदित हो सकती है ० उन के लेखों से उनकी हितैषिता और देश का सच्चा प्रेम झलकता था ०

यद्यपि बहुत लोगों ने उन को गवर्मेन्ट का डिस्लायल (अशुभचिन्तक) मान रक्खा था, यह उन का भ्रम था,हम मुक्त कण्ठ से कह सकते हैं कि वह परम राजभक्त थे ० यदि ऐसा न होता तो उन्हें क्या पड़ी थी कि जब प्रिंस आव् वेल्स आये थे तो वह बड़ा उत्सव और अनेक भाषा के छन्दों में बना कर स्वागत ग्रन्थ (मानसोपायन) उन के अर्पण करते ० ड्यूक आव् एडिन्बरा जिस समय यहां पधारे थे बाबू साहिब ने उन के साथ उस समय वह राजभक्ति प्रकट की कि जिससे ड्यूक उन पर ऐसे प्रसन्न हुए कि जब तक काशी में रहे उन पर विशेष स्नेह

रक्खा० सुमनोञ्जलि उन के अर्पण किया था जिस के प्रति अक्षर से अनुराग टपकता है० महाराणी की प्रशंसा में मनोमुकुल माला बनाई ० मिस्र युद्ध के विजय पर प्रकाश्य सभा की, वो विजयिनीविजयबैजयंती बना कर पूर्ण अनुराग सहित भक्ति प्रकाशित की ० महाराणी के बचने पर सन् ८२ में चौकाघाट के बगीचे में भारी उत्सव किया था और महाराणी जन्म दिवस तथा राजराजेश्वरी की उपाधि लेने के दिन प्रायः बाबू साहिब उत्सव करते रहे ० ड्यूक आव् अलबनी की अकाल मृत्यु पर सभा करके महाशोक किया था० जब २ देश हितैषी लार्ड रिपन आये उन को स्वागत कविता देकर आनन्दित हुए ० सन् ७२ में म्यो मेमोरियल सिरीज में १५००) रु० दिये ० यह सब लायल्टी नहीं तो क्या है ?

बाबू साहिब भारतवर्ष के एड्यूकेशन कमीशन (विद्या समाज) के सभ्य तो हुए ही थे परंतु इन का गुण वह था कि विलायत में जो नेशनल एंथेम (जातीय गीत) के भारत की सब भाषाओं में अनुवाद करने के लिये महाराणी की ओर से एक कमेटी हुई थी उस के मेम्बर भी थे और उन के सेक्रिटरी ने जो पत्र लिखा था उस में उसने बाबू साहिब की प्रशंसा लिख कर स्पष्ट लिखा था कि "मुझ को विश्वास है कि आप की कविता सब से उत्तम होगी" और अन्त में ऐसा ही हुआ० क्यों नहीं जब की भारती जिह्वा पर थी ० सच पूछिये तो कविता का महत्व उन्हीं के साथ गया ० बाबू साहिब की विद्वत्ता और बहुज्ञता की प्रशंसा केवल भारतीय पत्रों ने नहीं की वरञ्च विलायत के प्रसिद्ध पत्र ओवरलेण्ड, इण्डियन, और होममेल्स इत्यादिक अनेक पत्रों ने की है० उन की बहुदर्शिता के विषय एशियाटिक सोसाइटी के प्रधान डाक्तर राजेन्द्रलाल मित्र, एम० ए० शेरिंग, श्रीमान पण्डितवर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर प्रभृति महाशयों के अपने २ ग्रन्थों में बड़ी प्रशंसा की है ० श्रीयुत विद्यासागर जीने अपने अभिज्ञान शाकुन्तल की भूमिका में बाबू साहिब को परम अमायिक, देशबन्धु, धार्मिक, और सुहृद इत्यादि बहुत कुछ लिखा है ० बाबू साहिब अजातशत्रु थे इस में लेश मात्र भी सन्देह नहीं और उन का शील ऐसा अपूर्व था कि साधारणों की क्या कथा भारत-वर्ष के प्रधान २ लोग भी इन पर पूरा स्नेह रखते थे ० हा ! जिस समय ये लोग यह अनर्थकारी घोर सम्बाद सुनेंगे उन को कितना कष्ट होगा ०

बाबू साहिब को अपने देश के कल्याण का सदा ध्यान रहा करता था ० उन्हों ने गोवध उठा देने के लिये दिल्ली दर्बार के समय ६०००० हस्ताक्षर करा के लार्ड लिटन के पास भेजा था ० हिन्दी के लिये सदा जोर देते गये और अपनी एज्यूकेशन कमीशन की साक्षी में यहां तक जोर दिया कि लोग फड़क उठते हैं ० अपने लेख तथा काव्य से लोगों को उन्नति के अखाड़े में आने के लिये सदा यत्नवान रहे ० साधारण की ममता इनमें इतनी थी कि माधोराव के धरहरे पर लोहे के छड़

लगवा दिये कि जिससे गिरने का भय छूट गया ० इनकमटैक्स के समय जब लाट साहिब यहां आये थे तो दीपदान की बेला दो नावों पर एक पर "OH TAX" और दूसरी पर "स्वागत स्वागत धन्य प्रभु श्री सर विलियम म्योर। टैक्स छुड़ावहु सबन को विनय करत कर जोर ॥" लिखा था ० उस के उपरान्त टिकस उठ गया लोग कहते हैं कि इसी से उठा ० चाहे जो हो इसमें सन्देह नहीं कि वह अन्त तक देश के लिये हाय २ करते रहे ०

सन् १८८० ई० के २७ सितम्बर के सारसुधानिधि पत्र में हमने बाबू साहिब को भारतेन्दु की पदवी देने के लिये एक प्रस्ताव छपवाया था और उस के छप जाने पर भारतवर्ष के हिन्दी समाचारपत्रों ने उस पर अपनी सम्मति प्रकट की और सब पत्र के सम्पादक तथा गुणग्राही विद्वान लोगों ने मिल उन को "भारतेन्दु" की पदवी दी, तबसे वह भारतेन्दु लिखे जाते थे ०

बाबू साहिब का धर्म्म वैष्णव था ० श्रीवल्लभीय ० वह धर्म्म के बड़े पक्के थे, पर आडम्बर से दूर रहते थे ० उन के सिद्धान्त में परम धर्म्म भगवत्प्रेम था ० मत वा धर्म्म विश्वासमूलक मानते थे प्रमाणमूलक नहीं ० सत्य, अहिंसा, दया, शील, नम्रता आदि चारित्र्य को भी धर्म्म मानते थे, वह सब जगत को ब्रह्ममय और सत्य मानते थे ०

बाबू साहिब ने बहुत सा द्रव्य व्यय किया, परन्तु कुछ शोच न था ० कदाचित् शोच होता भी था तो दो अवसर पर, एक जब किसी निज आश्रित को या किसी शुद्ध सज्जन को बिना द्रव्य कष्ट पाते देखते थे, दूसरे जब कोई छोटे मोटे काम देशोपकारी द्रव्याभाव से रुक जाते थे ०

हा ! जिस समय हमको बाबू साहिब की यह करुणा की बात याद आ जाती है तो प्राण कंठ में आता है ० वह प्रायः कहते थे कि "अभी तक मेरे पास पूर्व्ववत बहुत धन होता तो मैं चार काम करता ० (१) श्री ठाकुर जी को बगीचे में पधरा कर धूम धाम से षट्ऋतु का मनोरथ करता (२) विलायत, फरासीस, और अमेरिका जाता (३) अपने उद्योग से एक शुद्ध हिन्दी की यूनिवर्सिटी स्थापन करता ० (हायरे ! हतभागिनी हिन्दी अब तेरा इतना ध्यान किसको रहेगा) (४) एक शिल्प कला का पश्चिमोत्तर देश में कालिज करता "०

हाय ! क्या आज दिन उन बड़े २ धनिक मित्रों में से कोई भी मित्र का दम भरने वाला ऐसा सच्चा मित्र है जो उन के इन मनोरथों में से एक को भी उन के नाम पर पूरा करके उनकी आत्मा को सुखी करै • हायरे ! हतभाग्य पश्चिमोत्तर देश, तेरा इतना भारी सहायक उठ गया, अब भी तुझसे उसके लिये

कुछ बन पड़ैगा या नहीं ? जब कि बंगाल और बम्बई प्रदेश में साधारण हितैषियों के स्मारक चिन्ह के लिये लाखों बात की बात में इकट्ठे हो जाते हैं ॥

बाबू साहिब के खास पसन्द की चीजें राग, वाद्य, रसिक समागम, चित्र, देश २ और काल २ की विचित्र वस्तु और भांति २ की पुस्तक थीं ०

काव्य उन को जयदेव जी, देव कवि, श्री नागरीदास जी, श्री सूरदास जी, और आनन्दघन जी का अति प्रिय था उर्दू में वजीर और अनीस का ० वह अनीस को अच्छा कवि समझते थे ०

सन्तति बाबू साहिब को तीन हुई ०दो पुत्र एक कन्या पुत्र दोनों जाते रहे, कन्या है, विवाह हो गया ०

बाबू साहिब कई बार बीमार हुए थे, पर भाग्य अच्छे थे इस लिये अच्छे होते गये ० सन् १८८२ ई० में जब श्री मन्महाराणा साहिब उदयपुर से मिलकर जाड़े के दिनों में लौटे तो आते समय रास्ते ही में बीमार पड़े ० बनारस पहुँचने के साथ ही श्वास रोग से पीड़ित हुए ० रोग दिन २ अधिक होता गया महीनों में शरीर अच्छा हुआ० लोगों ने ईश्वर को धन्यवाद दिया ० यद्यपि देखने में कुछ रोज तक मालूम न पड़ा पर भीतर रोग बना रहा और जड़ से नहीं गया० बीच में दो एक बार उभड़ आया, पर शान्त हो गया था ० इधर दो महीने से फिर श्वास चलता था, कभी २ ज्वर का आवेश भी हो आता था ० औषधि होती रही शरीर कृशित तो हो चला था पर ऐसा नहीं था कि जिससे किसी काम में हानि होती, श्वास अधिक हो चला क्षयी के चिन्ह पैदा हुए ० एका एक दूसरी जनवरी से बीमारी बढ़ने लगी० दवा, इलाज सब कुछ होता था पर रोग बढ़ता ही जाता था ० छठीं तारीख को प्रातः काल के समय जब ऊपर से हाल पूछने के लिये मजदूरिन आई तो आपने कहा कि जाकर कह दो कि हमारे जीवन के नाटक का प्रोग्राम नित्य नया २ छप रहा है, पहिले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खांसी की सीन हो चुकी, देखैं लास्ट नाइट कब होती है० उसी दिन दोपहर से श्वास वेग से आने लगा कफ में रुधिर आ गया० डाक्तर वैद्य अनेक मौजूद थे और औषधि भी परामर्श के साथ करते थे परंतु "मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों २ दवा की ०" प्रति क्षण में बाबू साहिब डाक्तर और वैद्यों से नींद आने और कफ के दूर होने की प्रार्थना करते थे, पर करैं क्या काल दुष्ट तो सिरपर खड़ा था, कोई जाने क्या ० अन्ततोगत्वा बात करते ही करते पौने १० बजे रात को भयङ्कर दृश्य आ उपस्थित हुआ ० अन्त तक श्रीकृष्ण का ध्यान बना रहा० देहावसान समय में श्रीकृष्ण ! श्रीराधाकृष्ण ! हे राम ! आते हैं मुख देखलाओ" कहा, और कोई दोहा पढ़ा जिसमें से श्रीकृष्ण...सहित स्वामिनी..." इतना धीरे स्वर से स्पष्ट सुनाई दिया ० देखते

ही देखते प्यारे हरिश्चन्द्र जी हम लोगों की आखों से दूर हुए ० चन्द्रमुख कुम्हिला कर चारों ओर अन्धकार हो गया ० सारे घर में मातम छा गया, गली २ में हाहाकार मचा, और सब काशी वासियों का कलेजा फटने लगा लेखनी अब नहीं आगे बढ़ती बाबू साहिब चरणपादुका पर················

हा काल की गति भी क्या ही कुटिल होती है ० चाञ्चक काल निद्रा ने भारतेन्दु को अपने वश में कर लिया कि जिसमें सब के सब जहां तहां पाहन सेखड़े रह गये ० वाह रे दुष्ट काल ! तूने इतना समय भी नहीं दिया जो बाबू साहिब अपने परम प्रिय अनुज बाबू गोकुलचन्द्र जी वो बाबू राधाकृष्ण जी तथा अन्य आत्मीयों से एक बार भी अपने मन की बात भी कहने पाते और हमको जिसे उस समय यह भयङ्कर दृश्य देखना पड़ा था, इतना अवसर भी न मिला कि अन्तिम सम्भाषण कर लेते ० हा ! हम अपने इस कलंक को कैसे दूर करैं ० वह मोहनी मूर्ति भुलाये से नहीं भूलती पर करैं क्या ? बाबू साहिब की अवस्था कुल ३४ वर्ष, ३ महीने ७ दिन १७ घं० ७ मि० और ४८ से० की थी० पर निर्दयी काल से कुछ वश नहीं ०

इति०